जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क—५

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति में आयोजित]

पंचम गणधर भगवत्सुधर्म-स्वामि-प्रणीत अष्टम अंग

अन्तकृद्दशासूत्र

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

सन्निधि □
उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्वामी श्रीव्रजलालजी महाराज

संयोजक तथा प्रधान सम्पादक □
युवाचार्य श्रीमिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादन—विवेचन—सम्पादन □
बा. ब्र. जैन साध्वी दिव्यप्रभा,
एम. ए., पी-एच. डी.
[आचार्यसम्राट् श्रीआनन्दऋषिजी म. की सुशिष्या और
महासती श्रीउज्ज्वलकुमारीजी की अन्तेवासिनी]

प्रकाशक □
श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर, राजस्थान

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्रीदेवेन्द्र मुनि शास्त्री
श्रीरतन मुनि
पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्रीविनयकुमार 'भीम'
श्रीमहेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाणसंवत् २५०८
विक्रम सं. २०३८
ई. सन् १९८१

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय, अजमेर

☐ मूल्य : २५) रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Eighth Anga

ANTAGADA-DASĀO

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

Proximity
Up-pravartaka Shasansevi Rev. Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Sadhwi Divyaprabha
M. A., Ph. D.

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachadra Bharill

☐ **Managing Editor**
Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**
Munisri Vinaykumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinkar'

☐ **Date of Publication**
Vir-nirvana Samvat 2508
Vikram Samvat 2038, May 1981

☐ **Publishers**
Sri Agam Prakashana Samiti
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305901

☐ **Printer**
Satish Shukla
Vedic Yantralaya, Ajmer

☐ **Price : Rs. 25**

समर्पण

जो प्रकृष्ट प्रतिभा से विभूषित थे,
संयम जिनका सर्वस्व था, जिन्होंने
अपनी आगमानुस्यूत धर्मदेशना से
रूढ़ परम्पराओं में चैतन्य का संचार
किया, धर्म के विराट् स्वरूप का
बोध कराया, जिनका व्यक्तित्व
अनूठा था, जो अष्टविध गणिसम्पदा
से सम्पन्न थे, उन युगप्रवर्त्तक
ज्योतिर्धर, स्व० आचार्यवर्य
श्रीजवाहरलालजी महाराज के
कर-कमलों में
सादर सविनय

—मधुकर मुनि

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachadra Bharill

☐ **Managing Editor**
Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**
Munisri Vinaykumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinkar'

☐ **Date of Publication**
Vir-nirvana Samvat 2508
Vikram Samvat 2038, May 1981

☐ **Publishers**
Sri Agam Prakashana Samiti
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305901

☐ **Printer**
Satish Shukla
Vedic Yantralaya, Ajmer

☐ **Price : Rs. 25**

समर्पण

जो प्रकृष्ट प्रतिभा से विभूषित थे,
संयम जिनका सर्वस्व था, जिन्होंने
अपनी आगमानुस्यूत धर्मदेशना से
रूढ़ परम्पराओं में चैतन्य का संचार
किया, धर्म के विराट् स्वरूप का
बोध कराया, जिनका व्यक्तित्व
अनूठा था, जो अष्टविध गणिसम्पदा
से सम्पन्न थे, उन युगप्रवर्त्तक
ज्योतिर्धर, स्व० आचार्यवर्य
श्रीजवाहरलालजी महाराज के
कर-कमलों में
सादर सविनय

—मधुकर मुनि

प्रकाशकीय

आगमप्रकाशन समिति द्वारा जिस द्रुत गति से आगमों का प्रकाशन हो रहा है, आशा है उससे आगम-प्रेमी महानुभावों तथा हमारे अर्थसहायक सज्जनों को अवश्य सन्तोष होगा। आचारांग (प्रथम तथा द्वितीय भाग), उपासकदशांग और ज्ञाताधर्मकथांग के पश्चात् 'अन्तगडदसांग' पाठकों के कर-कमलों में पहुंचाया जा रहा है। इसके तत्काल बाद ही 'अनुत्तरोववाइय' भी पहुंचने वाला है। इसका मुद्रण लगभग समाप्त हो गया है और शीघ्र ही वह तैयार हो जाएगा। सूत्रकृतांग और स्थानांगसूत्र मुद्रण के लिए प्रेस में दिये जा रहे हैं। समवायांग का अनुवाद हो चुका है, और संशोधन हो रहा है। भगवती और प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद हो रहा है। प्रश्नव्याकरण एवं औपपातिक सूत्र का सम्पादन लगभग पूर्ण होने में है।

उल्लेख करते हुए अतीव प्रसन्नता होती है कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के इस पावन अनुष्ठान का समाज के ज्ञानप्रेमी सज्जनों ने अच्छा अनुमोदन किया है और विद्वद्वर्ग ने भी इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। अब तक प्राप्त सम्मतियों से—जिनमें से कुछ मुद्रित हो चुकी हैं, यह स्पष्ट है।

अन्तगडसूत्र का अनुवाद सुविख्यात विदुषी उज्ज्वलकीर्ति स्व० महासती श्रीउज्ज्वलकुमारीजी की सुशिष्या तथा आचार्यसम्राट् राष्ट्रसन्त श्रद्धेय श्री आनन्दऋषिजी म० की आज्ञानुवर्तिनी विदुषी महासती श्रीदिव्यप्रभाजी ने किया है। महासतीजी एम. ए. और पी-एच. डी. पदवियों से विभूषित हैं। आपकी मातृभाषा गुजराती है, फिर भी हिन्दी भाषा में यह अनुवाद प्रस्तुत करके आपने हमें जो अमूल्य सहयोग दिया है, उसके लिए आभार प्रकट करने के लिए शब्द पर्याप्त नहीं हैं। ग्रन्थमाला के सम्पादक पं. श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने अनुवाद को परिमार्जित किया है, फिर भी यदि गुजराती भाषा की अस्पष्ट झलक कहीं दिखाई दे तो भी मूल आगम के आशय को स्पष्ट करने में कहीं कुछ भी न्यूनता नहीं आने पाई है। पर्याप्त परिश्रम करके महासती जी ने इस संस्करण को सर्वजनभोग्य और सुन्दर बनाने का सफल प्रयास किया है। परिशिष्ट देने से शोध करने वाले विद्यार्थियों के लिए भी यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। हम आशा करते हैं कि अन्य विदुषी महासतियां भी साध्वी श्रीदिव्यप्रभाजी का अनुकरण करके आगे आएँगी और इस पवित्र आयोजन में हमें सहयोग प्रदान करेंगी।

हमारे समाज के विख्यात विद्वान् तथा मनीषी साहित्यकार श्रीदेवेन्द्र मुनिजी शास्त्री ने इस आगम की प्रस्तावना लिखी है। प्रस्तावना में आगम का सांगोपांग निदर्शन करा दिया गया है। प्रारम्भ से ही आपका विशिष्ट सहयोग हमें प्राप्त रहा है और पूर्ण विश्वास है कि वह भविष्य में भी प्राप्त रहेगा।

श्रमणसंघ के युवाचार्य सर्वतोभद्र पण्डितप्रवर श्री मधुकर मुनिजी म. के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं जिनके दिशानिर्देशन में यह प्रकाशनकार्य हो रहा है, जो प्रस्तुत प्रकाशन के प्रधान सम्पादक हैं और जिनकी दूरदर्शिता और जिनवाणीप्रेम के कारण ही हमें भी इस सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

भगवद्वाणी के प्रचार-प्रसार के इस सात्त्विक अनुष्ठान में अपने सहयोगियों के भी हम कृतज्ञ हैं। अ. भा. स्था. जैन कॉन्फरेंस के तथा इस समिति के अध्यक्ष विवेकमूर्त्ति श्रावकवर्य सेठ मोहनमलजी सा. चोरड़िया, सेठ श्रीकंवरलाल जी बैताला, श्री मूलचन्द जी सुराणा, श्री दौलतराज जी पारख, श्री गुमानमल जी चोरड़िया, स्थानीय कोषाध्यक्ष श्री रतनचन्द जी मोदी तथा स्थानीय मंत्री श्रीमान् चांदमल जी विनायकिया, पं. शोभाचन्द्र जी भारिल्ल तथा श्रीसुजानमल जी सेठिया आदि का सहयोग विभिन्न रूपों में हमें प्राप्त हो रहा है। इन सबके हम आभारी हैं।

पुखराज शीशोदिया
कार्यवाहक अध्यक्ष

जतनराज महता
प्रधानमन्त्री

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

आगमप्रकाशन समिति द्वारा जिस द्रुत गति से आगमों का प्रकाशन हो रहा है, आशा है उससे आगम-प्रेमी महानुभावों तथा हमारे अर्थसहायक सज्जनों को अवश्य सन्तोष होगा। आचारांग (प्रथम तथा द्वितीय भाग), उपासकदशांग और ज्ञाताधर्मकथांग के पश्चात् 'अन्तगडदसांग' पाठकों के कर-कमलों में पहुंचाया जा रहा है। इसके तत्काल बाद ही 'अनुत्तरोववाइय' भी पहुंचने वाला है। इसका मुद्रण लगभग समाप्त हो गया है और शीघ्र ही वह तैयार हो जाएगा। सूत्रकृतांग और स्थानांगसूत्र मुद्रण के लिए प्रेस में दिये जा रहे हैं। समवायांग का अनुवाद हो चुका है, और संशोधन हो रहा है। भगवती और प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद हो रहा है। प्रश्नव्याकरण एवं औपपातिक सूत्र का सम्पादन लगभग पूर्ण होने में है।

उल्लेख करते हुए अतीव प्रसन्नता होती है कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के इस पावन अनुष्ठान का समाज के ज्ञानप्रेमी सज्जनों ने अच्छा अनुमोदन किया है और विद्वद्वर्ग ने भी इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। अब तक प्राप्त सम्मतियों से—जिनमें से कुछ मुद्रित हो चुकी हैं, यह स्पष्ट है।

अन्तगडसूत्र का अनुवाद सुविख्यात विदुषी उज्ज्वलकीर्ति स्व० महासती श्रीउज्ज्वलकुमारीजी की सुशिष्या तथा आचार्यसम्राट् राष्ट्रसन्त श्रद्धेय श्री आनन्दऋषिजी म० की आज्ञानुवर्त्तिनी विदुषी महासती श्रीदिव्यप्रभाजी ने किया है। महासतीजी एम. ए. और पी-एच. डी. पदवियों से विभूषित हैं। आपकी मातृभाषा गुजराती है, फिर भी हिन्दी भाषा में यह अनुवाद प्रस्तुत करके आपने हमें जो अमूल्य सहयोग दिया है, उसके लिए आभार प्रकट करने के लिए शब्द पर्याप्त नहीं हैं। ग्रन्थमाला के सम्पादक पं. श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने अनुवाद को परिमार्जित किया है, फिर भी यदि गुजराती भाषा की अस्पष्ट झलक कहीं दिखाई दे तो भी मूल आगम के आशय को स्पष्ट करने में कहीं कुछ भी न्यूनता नहीं आने पाई है। पर्याप्त परिश्रम करके महासती जी ने इस संस्करण को सर्वजनभोग्य और सुन्दर बनाने का सफल प्रयास किया है। परिशिष्ट देने से शोध करने वाले विद्यार्थियों के लिए भी यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। हम आशा करते हैं कि अन्य विदुषी महासतियां भी साध्वी श्रीदिव्यप्रभाजी का अनुकरण करके आगे आएँगी और इस पवित्र आयोजन में हमें सहयोग प्रदान करेंगी।

हमारे समाज के विख्यात विद्वान् तथा मनीषी साहित्यकार श्रीदेवेन्द्र मुनिजी शास्त्री ने इस आगम की प्रस्तावना लिखी है। प्रस्तावना में आगम का सांगोपांग निदर्शन करा दिया गया है। प्रारम्भ से ही आपका विशिष्ट सहयोग हमें प्राप्त रहा है और पूर्ण विश्वास है कि वह भविष्य में भी प्राप्त रहेगा।

श्रमणसंघ के युवाचार्य सर्वतोभद्र पण्डितप्रवर श्री मधुकर मुनिजी म. के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं जिनके दिशानिर्देशन में यह प्रकाशनकार्य हो रहा है, जो प्रस्तुत प्रकाशन के प्रधान सम्पादक हैं और जिनकी दूरदर्शिता और जिनवाणीप्रेम के कारण ही हमें भी इस सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

भगवद्वाणी के प्रचार-प्रसार के इस सात्त्विक अनुष्ठान में अपने सहयोगियों के भी हम कृतज्ञ हैं। अ. भा. स्था. जैन कॉन्फरेंस के तथा इस समिति के अध्यक्ष विवेकमूर्त्ति श्रावकवर्य सेठ मोहनमलजी सा. चोरड़िया, सेठ श्रीकंवरलाल जी बैताला, श्री मूलचन्द जी सुराणा, श्री दौलतराज जी पारख, श्री गुमानमल जी चोरड़िया, स्थानीय कोषाध्यक्ष श्री रतनचन्द जी मोदी तथा स्थानीय मंत्री श्रीमान् चांदमल जी विनायकिया, पं. शोभाचन्द्र जी भारिल्ल तथा श्रीसुजानमल जी सेठिया आदि का सहयोग विभिन्न रूपों में हमें प्राप्त हो रहा है। इन सबके हम आभारी हैं।

पुखराज शीशोदिया — कार्यवाहक अध्यक्ष

जतनराज महता — प्रधानमन्त्री

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

आमुख

जैनधर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार सर्वज्ञ की वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् आत्मद्रष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्व का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। परमहितकर निःश्रेयस का यथार्थ उपदेश कर सकते हैं।

सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध 'आगम' शास्त्र या सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उसे सूत्र रूप में ग्रथित करके व्यवस्थित 'आगम' का रूप दे देते हैं।

आज जिसे हम 'आगम' नाम से अभिहित करते हैं, प्राचीन समय में वे 'गणिपिटक' कहलाते थे। 'गणिपिटक' में समग्र द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। पश्चाद्वर्ती काल में इसके अंग, उपांग, मूल आदि अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, तब आगमों को स्मृति के आधार पर या गुरु परम्परा से सुरक्षित रखा जाता था। भगवान् महावीर के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक 'आगम' स्मृतिपरम्परा पर ही चले आये थे। स्मृति-दुर्बलता, गुरु-परम्परा का विच्छेद तथा अन्य अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगम-ज्ञान लुप्त होता गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोस्पद मात्र ही रह गया। तब देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने श्रमणों का सम्मेलन बुलाकर स्मृतिदोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को—जिनवाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपिबद्ध करने का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनवाणी को पुस्तकारूढ करके आने वाली पीढ़ी पर अवर्णनीय उपकार किया। यह जैन धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की धारा को प्रवहमान रखने का अद्भुत उपक्रम था। आगमों का यह प्रथम सम्पादन वीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकारूढ होने के बाद जैन आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु कालदोष, बाहरी आक्रमण, आन्तरिक मतभेद, विग्रह, स्मृति-दुर्बलता एवं प्रमाद आदि कारणों से आगमज्ञान की शुद्ध धारा, अर्थ-बोध की सम्यक् गुरुपरम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ, पद तथा गूढ अर्थ छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। जो आगम लिखे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते थे। उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणों से आगमज्ञान की धारा संकुचित होती गयी।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह ने एक क्रांतिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थ-ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद पुनः उसमें भी व्यवधान आ गए। साम्प्रदायिक द्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा लिपिकारों की भाषाविषयक अल्पज्ञता आगमों की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गए।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम मुद्रण की परम्परा चली तो पाठकों को कुछ हुई। आगमों की प्राचीन टीकाएँ, चूर्णि व निर्युक्ति जब प्रकाशित हुई तथा उनके आधार पर आगमों का

स्पष्ट स्वरूप मुद्रित होकर पाठकों को सुलभ हुआ तो आगमज्ञान का पठन-पाठन स्वभावत: बढ़ा, सैकड़ों जिज्ञासुओं में आगम स्वाध्याय की प्रवृत्ति जगी व जैनेतर देशी-विदेशी विद्वान् भी आगमों का अनुशीलन करने लगे।

आगमों के प्रकाशन सम्पादन मुद्रण के कार्य में जिन विद्वानों तथा मनीषी श्रमणों ने ऐतिहासिक कार्य किया, पर्याप्त सामग्री के अभाव में आज उन सबका नामोल्लेखन कर पाना कठिन है। फिर भी मैं स्थानकवासी परम्परा के कुछ महान् मुनियों का नाम ग्रहण अवश्य ही करूँगा।

पूज्य श्रीअमोलक ऋषि जी महाराज स्थानकवासी परम्परा के वे महान् साहसी व दृढसंकल्पवली मुनि थे, जिन्होंने अल्प साधनों के बल पर भी पूरे बत्तीस सूत्रों को हिन्दी में अनूदित करके जन-जन को सुलभ बना दिया। पूरी बत्तीसी का सम्पादन प्रकाशन एक ऐतिहासिक कार्य था, जिससे सम्पूर्ण स्थानकवासी व तेरापंथी समाज उपकृत हुआ।

गुरुदेव पूज्य स्वामी श्री जोरावरमल जी महाराज का एक संकल्प—

मैं जब गुरुदेव स्व० स्वामी श्री जोरावरमल जी महाराज के तत्त्वावधान में आगमों का अध्ययन कर रहा था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर गुरुदेव मुझे अध्ययन कराते थे। उनको देखकर गुरुदेव को लगता था कि यह संस्करण यद्यपि काफी श्रमसाध्य हैं, एवं अब तक उपलब्ध संस्करणों में काफी शुद्ध भी हैं, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं। मूल पाठ में एवं उसकी वृत्ति में कहीं-कहीं अन्तर भी है, कहीं वृत्ति बहुत संक्षिप्त है।

गुरुदेव स्वामी श्रीजोरावरमल जी महाराज स्वयं जैन सूत्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी मेधा बड़ी-व्युत्पन्न व तर्कणा-प्रधान थी। आगमसाहित्य की यह स्थिति देखकर उन्हें बहुत पीड़ा होती और कई बार उन्होंने व्यक्त भी किया कि आगमों का शुद्ध, सुन्दर व सर्वोपयोगी प्रकाशन हो तो बहुत कल्याण होगा। कुछ परिस्थितियों के कारण उनका संकल्प मात्र भावना तक सीमित रहा।

इसी बीच आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज, पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज आदि विद्वान् मुनियों ने आगमों की सुन्दर व्याख्याएँ व टीकाएँ लिखकर अथवा अपने तत्त्वाधान में लिखवाकर इस कमी को पूरा किया है।

वर्तमान में तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य श्रीतुलसी ने भी यह भगीरथ प्रयत्न प्रारम्भ किया है और अच्छे स्तर से उनका आगमकार्य चल रहा है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' आगमों की वक्तव्यता को अनुयोगों में वर्गीकृत करने का मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के विद्वान् श्रमण स्व० मुनि श्रीपुण्यविजय जी ने आगमसम्पादन की दिशा में बहुत ही व्यवस्थित व उत्तम कोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री जम्बूविजय जी के तत्त्वावधान में यह सुन्दर प्रयत्न चल रहा है।

उक्त सभी कार्यों का विहंगम-अवलोकन करने के बाद मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज कहीं तो आगमों का मूल मात्र प्रकाशित हो रहा है और कहीं आगमों की विशाल व्याख्याएँ की जा रही है। एक, पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। मध्यम मार्ग का अनुसरण कर आगमवाणी का भावोद्घाटन करने वाला ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जो सुबोध भी हो, सरल भी हो, संक्षिप्त हो, पर सारपूर्ण हो।

गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। उसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ४-५ वर्ष पूर्व इस विषय में चिन्तन प्रारम्भ किया। सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि० स० २०३६ वैसाख शुक्ला १० महावीर कैवल्यदिवस को दृढ निर्णय करके आगमबत्तीसी का सम्पादन विवेचन कार्य प्रारम्भ कर दिया और अब पाठकों के हाथों में आगम ग्रन्थ, क्रमश: पहुंच रहे हैं, इसकी मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।

आगमसम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुण्य-स्मृति में आयोजित किया गया है। आज उनका पुण्यस्मरण मेरे मन को उल्लसित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरुभ्राता पूज्य स्वामी श्री हजारीमल जी महाराज की प्रेरणाएँ—उनकी आगमभक्ति तथा आगम सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएँ, मेरा सम्बल बनी हैं। अतः मैं उन दोनों स्वर्गीय आत्माओं की पुण्यस्मृति में विभोर हूं।

शासनसेवी स्वामीजी श्री ब्रजलाल जी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साहसंवर्द्धन, सेवाभावी शिष्यमुनि विनयकुमार व महेन्द्र मुनि का साहचर्य-बल, सेवासहयोग तथा महासती श्री कानकुंवर जी, महासती श्री झणकार कुंवरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमरावकुंवर जी 'अर्चना'—की विनम्र प्रेरणाएँ मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने में सहायक रही हैं।

मुझे दृढ विश्वास है कि आगमवाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत्नसाध्य कार्य सम्पन्न करने में मुझे सभी सहयोगियों, श्रावकों व विद्वानों का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुँचने में गतिशील बना रहूंगा।

इसी आशा के साथ……

—मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

- [ ] अध्यक्ष

   सेठ श्री मोहनमलजी सा. चोरड़िया

- [ ] कार्यवाहक अध्यक्ष

   सेठ श्री पुखराजजी सा. शीशोदिया

- [ ] उपाध्यक्ष

   श्री कंवरलालजी बैताला
   श्री दौलतरामजी पारख
   श्री भंवरलालजी श्रीश्रीमाल
   श्री रतनचन्दजी चोरड़िया

- [ ] महामंत्री

   श्री जतनराजजी महता

- [ ] मंत्री

   श्री ज्ञानराजजी मूथा
   श्री चाँदमलजी विनायकिया

- [ ] कोषाध्यक्ष

   श्री गुमानमलजी चोरड़िया (मद्रास)
   श्री रतनचन्दजी मोदी (ब्यावर)

- [ ] सदस्यगण

   श्री मूलचन्दजी सुराणा
   श्री सायरचन्दजी चोरड़िया
   श्री जेठमलजी चोरड़िया
   श्री मोहनसिंहजी लोढा
   श्री बादलचन्द जी मेहता
   श्री मांगीलालजी सुराणा
   श्री माणकचन्दजी बैताला
   श्री भंवरलालजी गोठी
   श्री भंवरलालजी मूथा
   श्री प्रकाशचन्दजी जैन (परामर्शदाता)

सम्पादकीय

परम उपकारी परमात्मा महावीर को शत शत वन्दन। जिनके पावन स्पर्शमात्र से साधक आत्मा के कोटि कोटि जन्म के बन्धन टूट गये, जो अनेकों साधक आत्माओं के संसार का अन्त कर अनन्त सिद्धात्माओं की परमार्थ ज्योति में ज्योतिर्मय बनाने का सफल प्रयास कर मुक्ति का अमर वरदान बन गये और साथ ही संसार के अन्य आत्माओं की सिद्धि हेतु उनकी उलझन भरी व्यथाओं को दूर कर अपूर्व गौरव गाथाओं का प्राणदान बन गये। परंपरा-प्राप्त इस अनुदान का अनुपान करवा के पावन बनानेवाला यह अंतगडदशांग सूत्र द्वादशांगी में आठवां अंग सूत्र है।

नामकरण

अन्तकृत्ः—

प्रस्तुत अंग का नाम 'अन्तकृत्+दशा+अंग+सूत्र है, क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ में उन नव्वे महापुरुषों का जीवनवृत्त संगृहीत किया गया है जिन्होंने संयम-साधना एवं तप-साधना द्वारा आठ प्रकार के कर्मों पर विजय प्राप्त करके एवं चौरासी लाख जीव-योनियों में आवागमन से मुक्ति पाकर जीवन के अन्तिम क्षणों में मोक्ष-सुख की प्राप्ति की। इस प्रकार जीवन-मरण के चक्र का अन्त कर देने वाले महापुरुषों के जीवनवृत्त के वर्णन देने के कारण इस शास्त्र के नाम का प्रथम अवयव "अन्तकृत्" है।

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

☐ अध्यक्ष
सेठ श्री मोहनमलजी सा. चोरड़िया

☐ कार्यवाहक अध्यक्ष
सेठ श्री पुखराजजी सा. शीशोदिया

☐ उपाध्यक्ष
श्री कंवरलालजी बैताला
श्री दौलतरामजी पारख
श्री भंवरलालजी श्रीश्रीमाल
श्री रतनचन्दजी चोरड़िया

☐ महामंत्री
श्री जतनराजजी महता

☐ मंत्री
श्री ज्ञानराजजी मूथा
श्री चाँदमलजी विनायकिया

☐ कोषाध्यक्ष
श्री गुमानमलजी चोरड़िया (मद्रास)
श्री रतनचन्दजी मोदी (ब्यावर)

☐ सदस्यगण
श्री मूलचन्दजी सुराणा
श्री सायरचन्दजी चोरड़िया
श्री जेठमलजी चोरड़िया
श्री मोहनसिंहजी लोढा
श्री बादलचन्द जी मेहता
श्री मांगीलालजी सुराणा
श्री माणकचन्दजी बैताला
श्री भंवरलालजी गोठी
श्री भंवरलालजी मूथा
श्री प्रकाशचन्दजी जैन (परामर्शदाता)

सम्पादकीय

परम उपकारी परमात्मा महावीर को शत शत वन्दन। जिनके पावन स्पर्शमात्र से साधक आत्मा के कोटि कोटि जन्म के बन्धन टूट गये, जो अनेकों साधक आत्माओं के संसार का अन्त कर अनन्त सिद्धात्माओं की परमार्थ ज्योति में ज्योतिर्मय बनाने का सफल प्रयास कर मुक्ति का अमर वरदान बन गये और साथ ही संसार के अन्य आत्माओं की सिद्धि हेतु उनकी उलझन भरी व्यथाओं को दूर कर अपूर्व गौरव गाथाओं का प्राणदान बन गये। परंपरा-प्राप्त इस अनुदान का अनुपान करवा के पावन बनानेवाला यह अंतगडदशांग सूत्र द्वादशांगी में आठवां अंग सूत्र है।

नामकरण

अन्तकृत्:—

प्रस्तुत अंग का नाम 'अन्तकृत्+दशा+अंग+सूत्र है, क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ में उन नव्वे महापुरुषों का जीवनवृत्त संगृहीत किया गया है जिन्होंने संयम-साधना एवं तप-साधना द्वारा आठ प्रकार के कर्मों पर विजय प्राप्त करके एवं चौरासी लाख जीव-योनियों में आवागमन से मुक्ति पाकर जीवन के अन्तिम क्षणों में मोक्ष-पद की प्राप्ति की। इस प्रकार जीवन-मरण के चक्र का अन्त कर देने वाले महापुरुषों के जीवनवृत्त के वर्णन को ही प्रधानता देने के कारण इस शास्त्र के नाम का प्रथम अवयव "अन्तकृत्" है।

दशा:—

दशा नामक दूसरा अवयव 'दशा' शब्द है। जैन संस्कृति में दशा शब्द के दो रूढ अर्थ हैं :—

(१) जीवन की भोगावस्था से योगावस्था की ओर गमन 'दशा' कहलाता है, दूसरे शब्दों में शुद्ध अवस्था की ओर निरन्तर प्रगति ही "दशा" है।

प्रस्तुत सूत्र में प्रत्येक अन्तकृत् साधक निरन्तर शुद्धावस्था की ओर गमन करता है अतः इस ग्रन्थ में अन्तकृत् साधकों की दशा के वर्णन की ही प्रधानता होने से "अन्तकृत् दशा" कहा गया है।

(२) जिस आगम में दश अध्ययन हों उस आगम को भी 'दशा' कहा जाता है।

प्रस्तुत आगम में आठ वर्ग हैं। इनमें से प्रथम (आदि) चतुर्थ, पंचम (मध्य) और आठवें वर्ग (अन्त) में दस-दस अध्ययन हैं। इस प्रकार आदि, मध्य और अन्त में दस-दस अध्ययन होने के कारण भी प्रस्तुत आगम को "अन्तकृत् दशा" नाम दिया गया है।

अंग:—

तीर्थङ्करों ने जो उपदेश दिए हैं उनके दो अंग थे—शब्द और अर्थ। तीर्थकरों के पट्टशिष्य उन दो अंगों में से एक अंग अर्थ को ही ग्रहण कर पाते हैं, अतः भगवान् की वाणी का अंग होने से आगमों को अंग भी कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी भगवान् महावीर की वाणी का अर्थतः अंग है, अतः इसके नाम का तीसरा भाग "अंग" है।

सूत्र:—

क्योंकि समस्त जैनागम शब्द की अपेक्षा अल्प और अर्थ की अपेक्षा विशाल हैं, अतः समस्त आगमों को सूत्र कहा गया है। इसीलिये प्रस्तुत आगम के नामकरण का चौथा अवयव 'सूत्र' में रूप के रखा गया है।

इस प्रकार चार अवयवों को मिलाकर प्रस्तुत शास्त्र का नामकरण 'अन्तकृद्दशांगसूत्र' किया गया है।

इस के नाम की सार्थकता स्वयं इसके अध्ययन से विदित हो जाती है। यद्यपि मोक्षगामी पुरुषों की गौरव गाथा तो अन्य शास्त्रों में भी प्राप्त होती है, पर इस शास्त्र में केवल उन्हीं संत सतियों के जीवन-परिचय हैं जिन्होंने इसी भव से जन्म-जरा-मरण रूप भवचक्र का अंत कर दिया अथवा अष्ट विध कर्मों का अन्त कर जो सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गए। सदा के लिए संसार लीला का अन्त करने वाले 'अंतगड' जीवों की साधना-दशा का वर्णन करने से ही इसका 'अंत-गडदसाओ' नाम रक्खा गया है।

इसके पठन, पाठन और मनन से हर भव्य जीव को अन्तक्रिया की प्रेरणा मिलती है, अतः यह परम कल्याणकारी ग्रन्थ है। उपासकदशा में एक भव से मोक्ष जाने वाले श्रमणोपासकों का वर्णन है, किन्तु इस आठवें अंग 'अन्तकृत् दशा' में उसी जन्म में सिद्ध गति प्राप्त करने वाले उत्तम श्रमणों का वर्णन है। अतः परम-मंगलमय है और इसीलिये लोकजीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

अन्तकृद्दशांग सूत्र में इस प्रकार के भव्य जीवों की दशा का वर्णन किया गया है जो अन्तिम श्वासोच्छ्वास में निर्वाण-पद प्राप्त कर सके हैं, (किन्तु आयुष्य-कर्म के शेष न होने से केवलज्ञान और केवल-दर्शन से देखे हुए पदार्थों को प्रदर्शित नहीं कर सके, इसी कारण से उन्हें 'अन्तकृत् केवली' कहा गया है।)

परिचयः—

समवायांग में इस आगम के दस अध्ययन और सात वर्ग कहे हैं।[1] नन्दीसूत्र में आठ वर्गों का उल्लेख है किन्तु दश अध्ययनों का उल्लेख नहीं है।[2] आचार्य अभयदेव ने समवायांग वृत्ति में दोनों आगमों के कथन में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं। इस दृष्टि से समवायांग सूत्र में दश अध्ययन और अन्य वर्गों की दृष्टि से सात वर्ग कहे हैं। नन्दीसूत्र में अध्ययनों का उल्लेख नहीं किया है, केवल आठ वर्ग बतलाये है।[3] परन्तु इस सामंजस्य का अन्त तक निर्वाह किस प्रकार हो सकता है? क्योंकि समवायांग में अन्तकृद्दशा के शिक्षाकाल (उद्देशनकाल) दश कहे गये हैं जबकि नन्दीसूत्र में उनकी संख्या आठ बताई गई है। समवायांग की वृत्ति में आचार्य अभयदेव ने लिखा है कि उद्देशनकालों के अन्तर का अभिप्राय हमें ज्ञात नहीं है।[4]

आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने नंदीचूर्णि में[5] और आचार्य हरिभद्र ने नंदिवृत्ति में[6] लिखा है कि प्रथम वर्ग के दश अध्ययन होने से प्रस्तुत आगम का नाम अंतगडदसाओ है। चूर्णि में दशा का अर्थ अवस्था भी किया है।[7] समवायांग में दश अध्ययनों का निर्देश है किन्तु उनके नाम का निर्देश नहीं है। जैसे नमि, मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, जमालि, भगाली, किंकष, चिल्वक्क और फाल अंवडपुत्र।[8]

तत्वार्थसूत्र के राजवार्तिक में एवं अंगपण्णत्ती में कुछ पाठभेद के साथ दश नाम प्राप्त होते हैं। जैसे नमि, मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, यमलोक, वलीक, कंवल, पाल और अंबष्ठपुत्र।[9] उसमें लिखा है कि प्रस्तुत आगम में प्रत्येक तीर्थंकरों के समय में होने वाले दश-दश अन्तकृत् केवलियों का वर्णन है।[10]

जयधवला में भी इस बात का समर्थन किया है।[11] नंदीसूत्र में न तो दश अध्ययनों का उल्लेख है और न उनके नामों का ही निर्देश है। समवायांग और तत्त्वार्थवार्तिक में जिन नामों का निर्देश हुआ है वह वर्तमान

१. दस अज्झयणा सत्त वग्गा। —समवायांग प्रकीर्णक, समवाय सूत्र ९६.
२. अट्ठ वग्गा—नंदीसूत्र ८८.
३. दस अज्झयण त्ति प्रथमवर्गापेक्षयैव घटन्ते, नन्द्यां तथैव व्याख्यातत्वात् यच्चेह पठ्यते 'सत्त वग्ग' त्ति तत् प्रथमवर्गादन्यवर्गापेक्षया यतोऽष्टौ वर्गाः, नन्द्यामपि तथा पठितत्वात् —समवायांगवृत्ति पत्र ११२.
४. ततो भणितं-अट्ठ उद्देसणकाला इत्यादि, इह च दश उद्देशनकाला अधीयन्ते इति नास्याभिप्राय-मवगच्छामः। —समवायांगवृत्ति, पत्र ११२.
५. पढमवग्गे दश अज्झयणा त्ति तस्सक्खतो अंतगडदस त्ति—नंदिसूत्र चूर्णिसहित पृ. ६८.
६. प्रथमवर्गे दशाध्ययनानि इति तत्संख्यया अन्तकृद्दशा इति—नंदिसूत्रवृत्तिसहित, पृ. ८३.
७. दसत्ति-अवत्था—नंदीसूत्र, चूर्णिसहित पृ. ६८.
८. ठाणं, १०/११३.
९. तत्वार्थवार्तिक १/२०, पृ. ७३।
१०. (क)…… ……इत्येते दश वर्धमानतीर्थकरतीर्थ, एवमृषभादीनां त्रयोविंशतेस्तीर्थेष्वन्येऽन्ये च दश दशानगारा दश दश दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य कृत्स्नकर्मक्षयादन्तकृतः दश अस्यां वर्ण्यन्ते इति अन्तकृद्दशा। —तत्त्वार्थवार्तिक १।२०, पृ. ७३.

(ख) अंगपण्णत्ती, ५१.
११. अंतयडदसा णाम अंगं चउव्विहोवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण णिव्वाणं गदे सुदंसणादि दस-दस साहू तित्थं पविण्णेदि। —कसायपाहुड, भा. १, पृ. १३०.

अन्तकृद्दशांग में नहीं है। नंदीसूत्र में वर्तमान में उपलब्ध प्रस्तुत आगम के स्वरूप का वर्णन है। इस समय अन्तकृतद्दशांग में आठ वर्ग हैं और प्रथम वर्ग के दश अध्ययन हैं। किन्तु इनके नाम स्थानांग, राजवार्त्तिक व अंगपण्णत्ती से पृथक् हैं। जैसे—गौतम, समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु। स्थानांगवृत्ति में आचार्य अभयदेव ने इसे वाचनान्तर लिखा है।[1] इससे यह ज्ञात होता है कि वह समवायांग में वर्णित वाचना से पृथक् है।

प्रस्तुत आगम में एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, ९० अध्ययन, ८ उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल और परिमित वाचनाएँ हैं। इसमें अनुयोगद्वार, वेढा, श्लोक, निर्युक्तियाँ, संग्रहणियाँ एवं प्रतिपत्तियाँ संख्यात संख्यात हैं। इसमें पद संख्यात और अक्षर संख्यात हजार बताये गये हैं। वर्तमान में प्रस्तुत अंग ९०० श्लोकपरिमाण हैं।

इसके आठ वर्ग हैं और एक ही श्रुतस्कन्ध है। प्रत्येक वर्ग के पृथक्-पृथक् अध्ययन हैं। जैसे कि—

पहले और दूसरे वर्ग में दस-दस अध्ययन रखे गए हैं, तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन हैं, चतुर्थ और पंचम वर्ग के भी दस-दस अध्ययन हैं, छठे वर्ग के सोलह अध्ययन हैं, सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन और आठवें वर्ग के दस अध्ययन हैं, किन्तु प्रत्येक अध्ययन के उपोद्घात में इस विषय को स्पष्ट किया गया है कि 'अमुक अध्ययन का तो अर्थ श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार से वर्णन किया है, तो इस अध्ययन का क्या अर्थ बताया है?' इस प्रकार की शंका के समाधान में श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामी के प्रति प्रस्तुत अध्ययन का अर्थ वर्णन करने लग जाते हैं, अतः यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत होने से सर्वथा मान्य है।

यद्यपि अन्तकृद्दशांग सूत्र में भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी के ही समय में होनेवाले जीवों की संक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया है, तथापि अन्य तीर्थंकरों के शासन में होनेवाले अन्तकृत् केवलियों की भी जीवन-चर्या इसी प्रकार जान लेनी चाहिए। कारण कि—द्वादशांगीवाणी शब्द से पौरुषेय है और अर्थ से अपौरुषेय है।

यह शास्त्र भव्य प्राणियों के लिये मोक्ष-पथ का प्रदर्शक है, अतः इसका प्रत्येक अध्ययन मनन करने योग्य है। यद्यपि काल-दोष से प्रस्तुत शास्त्र श्लोक-संख्या में तथा पद-संख्या में अल्प सा रहा गया है, तथापि इसका प्रत्येक पद अनेक अर्थों का प्रदर्शक है, यह विषय अनुभव से ही गम्य हो सकेगा, विधिपूर्वक किया हुआ इसका अध्ययन निर्वाण-पथ का अवश्य प्रदर्शक होगा।

गणधर श्रीसुधर्मा स्वामीजी की वाचना का यह आठवां अंग है। भव्य जीवों के बोध के लिये ही इसमें कतिपय जीवों की संक्षिप्त जीवन-चर्या का दिग्दर्शन कराया गया है।

प्रस्तुत आगम की भाषा :—

मागधी मगध देश की बोली थी, उसे साहित्यिक रूप देने के लिये उसमें कुछ विशेष शब्दों का एवं प्रान्तीय बोलियों का मिश्रण भी हो गया, अतः आगम-भाषा को अर्धमागधी कहा जाने लगा। आगमकार कहते हैं कि अर्धमागधी तीर्थंकरों, गणधरों और देवों की प्रिय भाषा है, हो भी क्यों न? लोक-भाषा की सर्वप्रियता सर्वमान्य ही तो है। लोकोपकार के लिये लोकभाषा का प्रयोग अनिवार्य भी तो है। प्रस्तुत आगम की भाषा भी अर्धमागधी है।

---

१. ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयामः।

—स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८३.

शैली

प्रस्तुत आगम की रचना कथात्मक शैली में की गई है, इस शैली को प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली में 'कथानुयोग' कहा जाता है। इस शैली में "तेणं कालेणं तेणं समएणं" इस शब्दावली से कथा का आरम्भ किया जाता है। आगमों में ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अनुत्तरौपपातिक, विपाकसूत्र और अन्तकृद्दशांग सूत्र का इसी शैली में निर्माण किया गया है।

अर्धमागधी भाषा में शब्दों के दो रूप उपलब्ध होते हैं—परिवसति, परिवसइ, रायवण्णतो, रायवण्णओ, एगवीसाते, एगवीसाए। इस आगम में प्राय: स्वरान्तरूप ग्रहण करने की शैली को अपनाया गया है।

आगमों में प्राय: संक्षिप्तीकरण की शैली को अपनाते हुए शब्दान्त में बिन्दुयोजना द्वारा अथवा अंक-योजना द्वारा अवशिष्ट पाठ को व्यक्त करने की प्राचीन शैली प्रचलित है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में इसी शैली को अपनाया गया था, किन्तु श्री अमोलक ऋषिजी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में पूर्णपाठ देने की शैली को स्वीकार किया गया है। इस शैली की वाचना में अत्यन्त सुविधा रहती है। इसी सुविधा को लक्ष्य में रखते हुए मूल पाठ को पूर्णरूपेण न्यस्त करने की शैली हमें भी अपनानी पड़ी है।

इस सूत्र में यथास्थान अनेक तपों का वर्णन प्राप्त होता है, अष्टम वर्ग में विशेष रूप से तपों के स्वरूप एवं पद्धतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन तपों के अनेकविध स्थापनायन्त्र प्राप्त होते हैं। हमने उन समस्त स्थापना-यन्त्रों को कलात्मक रूप देकर आकर्षक बनाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की वर्णनशैली अत्यंत व्यवस्थित है। इसमें प्रत्येक साधक के नगर, उद्यान, चैत्य-व्यंतरायतन, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक एवं परलोक की ऋद्धि, पाणिग्रहण और प्रीतिदान, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षाकाल, श्रुतग्रहण, तपोपधान, संलेखना और अन्त क्रिया का उल्लेख किया गया है।

'अन्तगडदशा' में वर्णित साधक पात्रों के परिचय से प्रकट होता है कि श्रमण भगवान् महावीर के शासन में विभिन्न जाति एवं श्रेणी के व्यक्तियों को साधना में समान अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ बीसियों राजपुत्र-राजरानी और गाथापति साधनापथ में चरण से चरण मिला कर चल रहे थे, दूसरी ओर वहीं कतिपय उपेक्षित वर्गवाले क्षुद्र जातीय भी ससम्मान इस साधनाक्षेत्र में आकर समान रूप से आगे बढ़ रहे थे। वय की दृष्टि से अतिमुक्त जैसे बाल मुनि और गजसुकुमार जैसे राज-प्रासाद के दुलारे गिने जाने वाले भी इस क्षेत्र में उतर कर सिद्धि प्राप्त कर गये।

अन्तगडदसा सूत्र के मनन से ज्ञात होता है कि गौतम आदि, १८ मुनियों के समान १२ भिक्षु प्रतिमा एवं गुणरत्न-संवत्सर तप की साधना से भी साधक कर्म-क्षय कर मुक्ति लेता है। प्राप्त कर अनीकसेनादि मुनि १४ पूर्व के ज्ञान में रमण करते हुए सामान्य बेले २ की तपस्या से कर्म क्षय कर मुक्ति के अधिकारी बन गए। अर्जुनमाली ने उपशम भाव-क्षमा की प्रधानता से केवल छह मास बेले २ की तपस्या कर सिद्धि प्राप्त कर ली। दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार ने ज्ञान-पूर्वक गुण-रत्न तप की साधना से सिद्धि मिलाई और गजसुकुमाल ने बिना शास्त्र पढ़े और लम्बे समय तक साधना एवं तपस्या किए बिना ही केवल एक शुद्ध ध्यान के बल से ही सिद्धि प्राप्त करली। इसके प्रकट होता है कि ध्यान भी एक बड़ा तप है। काली आदि रानियों ने संयम लेकर कठोर साधना की और लम्बे समय से सिद्धि मिलाई। इस प्रकार कोई सामान्य तप से, कोई कठोर तप से, कोई क्षमा की प्रधानता से तो कोई अन्य केवल आत्मध्यान की अग्नि में कर्मों को झोंक कर सिद्धि के अधिकारी बन गए।

अन्तकृद्दशांग में नहीं है। नंदीसूत्र में वर्तमान में उपलब्ध प्रस्तुत आगम के स्वरूप का वर्णन है। इस समय अन्तकृतदृशांग में आठ वर्ग हैं और प्रथम वर्ग के दश अध्ययन हैं। किन्तु इनके नाम स्थानांग, राजवार्त्तिक व अंगपण्णत्ती से पृथक् हैं। जैसे—गौतम, समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु। स्थानांगवृत्ति में आचार्य अभयदेव ने इसे वाचनान्तर लिखा है।[1] इससे यह ज्ञात होता है कि वह समवायांग में वर्णित वाचना से पृथक् है।

प्रस्तुत आगम में एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, ९० अध्ययन, ८ उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल और परिमित वाचनाएँ हैं। इसमें अनुयोगद्वार, वेढा, श्लोक, निर्युक्तियाँ, संग्रहणियाँ एवं प्रतिपत्तियाँ संख्यात संख्यात है। इसमें पद संख्यात और अक्षर संख्यात हजार बताये गये हैं। वर्तमान में प्रस्तुत अंग ९०० श्लोकपरिमाण हैं।

इसके आठ वर्ग हैं और एक ही श्रुतस्कन्ध है। प्रत्येक वर्ग के पृथक्-पृथक् अध्ययन हैं। जैसे कि—

पहले और दूसरे वर्ग में दस-दस अध्ययन रखे गए हैं, तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन हैं, चतुर्थ और पंचम वर्ग के भी दस-दस अध्ययन हैं, छठे वर्ग के सोलह अध्ययन हैं, सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन और आठवें वर्ग के दस अध्ययन हैं, किन्तु प्रत्येक अध्ययन के उपोद्घात में इस विषय को स्पष्ट किया गया है कि 'अमुक अध्ययन का तो अर्थ श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार से वर्णन किया है, तो इस अध्ययन का क्या अर्थ बताया है?' इस प्रकार की शंका के समाधान में श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामी के प्रति प्रस्तुत अध्ययन का अर्थ वर्णन करने लग जाते हैं, अतः यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत होने से सर्वथा मान्य है।

यद्यपि अन्तकृद्दशांग सूत्र में भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी के ही समय में होनेवाले जीवों की संक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया है, तथापि अन्य तीर्थकरों के शासन में होनेवाले अन्तकृत् केवलियों की भी जीवन-चर्या इसी प्रकार जान लेनी चाहिए। कारण कि—द्वादशांगीवाणी शब्द से पौरुषेय है और अर्थ से अपौरुषेय है।

यह शास्त्र भव्य प्राणियों के लिये मोक्ष-पथ का प्रदर्शक है, अतः इसका प्रत्येक अध्ययन मनन करने योग्य है। यद्यपि काल-दोष से प्रस्तुत शास्त्र श्लोक-संख्या में तथा पद-संख्या में अल्प सा रहा गया है, तथापि इसका प्रत्येक पद अनेक अर्थों का प्रदर्शक है, यह विषय अनुभव से ही गम्य हो सकेगा, विधिपूर्वक किया हुआ इसका अध्ययन निर्वाण-पथ का अवश्य प्रदर्शक होगा।

गणधर श्रीसुधर्मा स्वामीजी की वाचना का यह आठवां अंग है। भव्य जीवों के बोध के लिये ही इसमें कतिपय जीवों की संक्षिप्त जीवन-चर्या का दिग्दर्शन कराया गया है।

प्रस्तुत आगम की भाषा :—

मागधी मगध देश की बोली थी, उसे साहित्यिक रूप देने के लिये उसमें कुछ विशेष शब्दों का एवं प्रान्तीय बोलियों का मिश्रण भी हो गया, अतः आगम-भाषा को अर्धमागधी कहा जाने लगा। आगमकार कहते हैं कि अर्धमागधी तीर्थकरों, गणधरों और देवों की प्रिय भाषा है, हो भी क्यों न? लोक-भाषा की सर्वप्रियता सर्वमान्य ही तो है। लोकोपकार के लिये लोकभाषा का प्रयोग अनिवार्य भी तो है। प्रस्तुत आगम की भाषा भी अर्धमागधी है।

---

१. ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयामः।

—स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८३.

अन्तकृद्दशांग में नहीं है। नंदीसूत्र में वर्तमान में उपलब्ध प्रस्तुत आगम के स्वरूप का वर्णन है। इस समय अन्तकृतद्दशांग में आठ वर्ग हैं और प्रथम वर्ग के दश अध्ययन हैं। किन्तु उनके नाम स्थानांग, राजवार्त्तिक व अंगपण्णत्ती से पृथक् हैं। जैसे—गौतम, समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु। स्थानांगवृत्ति में आचार्य अभयदेव ने इसे वाचनान्तर लिखा है।[1] इससे यह ज्ञात होता है कि वह समवायांग में वर्णित वाचना से पृथक् है।

प्रस्तुत आगम में एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, ९० अध्ययन, ८ उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल और परिमित वाचनाएँ हैं। इसमें अनुयोगद्वार, वेढा, श्लोक, निर्युक्तियाँ, संग्रहणियाँ एवं प्रतिपत्तियाँ संख्यात संख्यात हैं। इसमें पद संख्यात और अक्षर संख्यात हजार बताये गये हैं। वर्तमान में प्रस्तुत अंग ९०० श्लोकपरिमाण हैं।

इसके आठ वर्ग हैं और एक ही श्रुतस्कन्ध है। प्रत्येक वर्ग के पृथक्-पृथक् अध्ययन हैं। जैसे कि—

पहले और दूसरे वर्ग में दस-दस अध्ययन रखे गए हैं, तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन हैं, चतुर्थ और पंचम वर्ग के भी दस-दस अध्ययन हैं, छठे वर्ग के सोलह अध्ययन हैं, सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन और आठवें वर्ग के दस अध्ययन हैं, किन्तु प्रत्येक अध्ययन के उपोद्घात में इस विषय को स्पष्ट किया गया है कि 'अमुक अध्ययन का तो अर्थ श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार से वर्णन किया है, तो इस अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?' इस प्रकार की शंका के समाधान में श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामी के प्रति प्रस्तुत अध्ययन का अर्थ वर्णन करने लग जाते हैं, अतः यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत होने से सर्वथा मान्य है।

यद्यपि अन्तकृद्दशांग सूत्र में भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी के ही समय में होनेवाले जीवों की संक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया है, तथापि अन्य तीर्थंकरों के शासन में होनेवाले अन्तकृत् केवलियों की भी जीवन-चर्या इसी प्रकार जान लेनी चाहिए। कारण कि—द्वादशांगीवाणी शब्द से पौरुषेय है और अर्थ से अपौरुषेय है।

यह शास्त्र भव्य प्राणियों के लिये मोक्ष-पथ का प्रदर्शक है, अतः इसका प्रत्येक अध्ययन मनन करने योग्य है। यद्यपि काल-दोष से प्रस्तुत शास्त्र श्लोक-संख्या में तथा पद-संख्या में अल्प सा रहा गया है, तथापि इसका प्रत्येक पद अनेक अर्थों का प्रदर्शक है, यह विषय अनुभव से ही गम्य हो सकेगा, विधिपूर्वक किया हुआ इसका अध्ययन निर्वाण-पथ का अवश्य प्रदर्शक होगा।

गणधर श्रीसुधर्मा स्वामीजी की वाचना का यह आठवां अंग है। भव्य जीवों के बोध के लिये ही इसमें कतिपय जीवों की संक्षिप्त जीवन-चर्या का दिग्दर्शन कराया गया है।

प्रस्तुत आगम की भाषा :—

मागधी मगध देश की बोली थी, उसे साहित्यिक रूप देने के लिये उसमें कुछ विशेष शब्दों का एवं प्रान्तीय बोलियों का मिश्रण भी हो गया, अतः आगम-भाषा को अर्धमागधी कहा जाने लगा। आगमकार कहते हैं कि अर्धमागधी तीर्थंकरों, गणधरों और देवों की प्रिय भाषा है, हो भी क्यों न ? लोक-भाषा की सर्वप्रियता सर्वमान्य ही तो है। लोकोपकार के लिये लोकभाषा का प्रयोग अनिवार्य भी तो है। प्रस्तुत आगम की भाषा भी अर्धमागधी है।

---

१. ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयामः।

—स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८३.

शैली

प्रस्तुत आगम की रचना कथात्मक शैली में की गई है, इस शैली को प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली में 'कथानुयोग' कहा जाता है। इस शैली में "तेणं कालेणं तेणं समएणं" इस शब्दावली से कथा का आरम्भ किया जाता है। आगमों में ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अनुत्तरोपपातिक, विपाकसूत्र और अन्तकृद्दशांग सूत्र का इसी शैली में निर्माण किया गया है।

अर्धमागधी भाषा में शब्दों के दो रूप उपलब्ध होते हैं—परिवसति, परिवसइ, रायवण्णतो, रायवण्णओ, एगवीसाते, एगवीसाए। इस आगम में प्रायः स्वरान्तरूप ग्रहण करने की शैली को अपनाया गया है।

आगमों में प्रायः संक्षिप्तीकरण की शैली को अपनाते हुए शब्दान्त में बिन्दुयोजना द्वारा अथवा अंक-योजना द्वारा अवशिष्ट पाठ को व्यक्त करने की प्राचीन शैली प्रचलित है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में इसी शैली को अपनाया गया था, किन्तु श्री अमोलक ऋषिजी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में पूर्णपाठ देने की शैली को स्वीकार किया गया है। इस शैली की वाचना में अत्यन्त सुविधा रहती है। इसी सुविधा को लक्ष्य में रखते हुए मूल पाठ को पूर्णरूपेण न्यस्त करने की शैली हमें भी अपनानी पड़ी है।

इस सूत्र में यथास्थान अनेक तपों का वर्णन प्राप्त होता है, अष्टम वर्ग में विशेष रूप से तपों के स्वरूप एवं पद्धतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन तपों के अनेकविध स्थापनायन्त्र प्राप्त होते हैं। हमने उन समस्त स्थापना-यन्त्रों को कलात्मक रूप देकर आकर्षक बनाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की वर्णनशैली अत्यंत व्यवस्थित है। इसमें प्रत्येक साधक के नगर, उद्यान, चैत्य-व्यंतरायतन, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक एवं परलोक की ऋद्धि, पाणिग्रहण और प्रीतिदान, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षाकाल, श्रुतग्रहण, तपोपधान, संलेखना और अन्त क्रिया का उल्लेख किया गया है।

'अन्तगडदशा' में वर्णित साधक पात्रों के परिचय से प्रकट होता है कि श्रमण भगवान् महावीर के शासन में विभिन्न जाति एवं श्रेणी के व्यक्तियों को साधना में समान अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ बीसियों राजपुत्र-राजरानी और गाथापति साधनापथ में चरण से चरण मिला कर चल रहे थे, दूसरी ओर वहीं कतिपय उपेक्षित वर्गवाले क्षुद्र जातीय भी ससम्मान इस साधनाक्षेत्र में आकर समान रूप से आगे बढ़ रहे थे। वय की दृष्टि से अतिमुक्त जैसे बाल मुनि और गजसुकुमार जैसे राज-प्रासाद के दुलारे गिने जाने वाले भी इस क्षेत्र में उतर कर सिद्धि प्राप्त कर गये।

अन्तगडदसा सूत्र के मनन से ज्ञात होता है कि गौतम आदि, १८ मुनियों के समान १२ भिक्षु प्रतिमा एवं गुणरत्न-संवत्सर तप की साधना से भी साधक कर्म-क्षय कर मुक्ति लेता है। प्राप्त कर अनीकसेनादि मुनि १४ पूर्व के ज्ञान में रमण करते हुए सामान्य बेले २ की तपस्या से कर्म क्षय कर मुक्ति के अधिकारी बन गए। अर्जुनमाली ने उपशम भाव-क्षमा की प्रधानता से केवल छह मास बेले २ की तपस्या कर सिद्धि प्राप्त कर ली। दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार ने ज्ञान-पूर्वक गुण-रत्न तप की साधना से सिद्धि मिलाई और गजसुकुमाल ने बिना शास्त्र पढ़े और लम्बे समय तक साधना एवं तपस्या किए बिना ही केवल एक शुद्ध ध्यान के बल से ही सिद्धि प्राप्त करली। इसके प्रकट होता है कि ध्यान भी एक बड़ा तप है। काली आदि रानियों ने संयम लेकर कठोर साधना की और लम्बे समय से सिद्धि मिलाई। इस प्रकार कोई सामान्य तप से, कोई कठोर तप से, कोई क्षमा की प्रधानता से तो कोई अन्य केवल आत्मध्यान की अग्नि में कर्मों को झोंक कर सिद्धि के अधिकारी बन गए।

अन्तकृत्-केवली : एक विहंगम दृष्टि :—

अध्ययन :—

इस शास्त्र के तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययन हैं। गजसुकुमार के अतिरिक्त शेष बारह अध्ययनों में जितने चरितनायक हैं, वे सब चौदह पूर्वों के ज्ञानी होकर कैवल्य को पानेवाले हुए हैं। चौथे वर्ग के सभी चरितनायक द्वादशांगी वाणी का अध्ययन करके अन्तकृत् हुए हैं। गजसुकुमार अनगार किसी भी शास्त्र का अध्ययन किए बिना ही अंतकृत् हुए हैं। शेप सभी ग्यारह अंगों का अध्ययन करके अंतकृत् हुए।

दीक्षा :—

दीर्घकालिक दीक्षा पर्यायवाले एक अतिमुक्त कुमार हुए हैं, जो कि अन्य चरितनायकों की अपेक्षा अधिक काल तक संयम पाल कर अंतकृत् हुए हैं।

अतिमुक्तकुमार एक ऐसे चरितनायक हुए हैं जिन्होंने यौवनकाल से पूर्व ही प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

गजसुकुमार एक ऐसे चरित-नायक हैं जो प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर कुछ घंटों में ही कर्म-क्षय कर अंतकृत् हुए हैं। अन्य कोई भी साधक इतनी स्वल्पायु में अंतकृत् नहीं हो पाया।

छह मास की दीक्षा पर्याय और पंद्रह दिनों का संथारा अर्जुन अनगार को प्राप्त हुआ, शेप सभी चरित-नायक वर्षों की दीक्षा पर्याय और मासिक संथारेवाले हुए हैं।

जीवन :—

दो चरितनायक आबाल ब्रह्मचारी हुए हैं, शेप सभी चरितनायक भोग से निवृत्ति पाकर योगवृत्ति ग्रहण करके अंतकृत् हुए हैं।

दो नरेश अन्तकृत् हुए हैं, शेष सभी राजकुमार युवराज तथा महारानियाँ अन्तकृत् हुए हैं।

गजसुकुमार और अर्जुन अनगार को परिषह सहने का काम पड़ा, अन्य अनगारों को नहीं।

एक अर्जुन अनगार के अतिरिक्त शेप सभी चरित-नायक राजकुल और श्रेष्ठी कुल में उत्पन्न अन्तकृत हुए हैं।

स्थान :—

अनगारों में एक गजसुकुमार का निर्वाण श्मशान भूमि में हुआ है, शेप सभी अनगार शत्रुंजय और विपुलगिरि पर संथारे के साथ निर्वाण प्राप्त करते हैं।

सभी साध्वियां उपाश्रय में ही अन्तकृत् हुईं।

नर-नारी :—

पांचवें, सातवें और आठवें अध्ययन में तेतीस राजरानियों के जीवन-चरित हैं जो कि अंतकृत् हुए हैं।

शासन :—

अरिष्टनेमि भगवान् के शासन में तेतीस अनगार अन्तकृत् केवली हुए और महावीर भगवान् के शासन में सोलह अनगार अन्तकृत् केवली हुए।

भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में दस महारानियाँ दीक्षित होकर अंतकृत् हुईं और भगवान् महावीर के शासन में तेतीस महारानियाँ दीक्षित होकर अंतकृत् हुईं।

भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में यक्षिणी नाम की साध्वी प्रवर्तिनी हुई और भगवान् महावीर के शासन में आर्या चन्दनबाला प्रवर्तिनी साध्वी थी।

शिक्षाएं :—

इस सूत्र के अध्ययन से मुमुक्षुजनों को ऐसी अनेक अमूल्य शिक्षाओं का लाभ हो सकता है जिनके द्वारा उनका जीवन आदर्श रूप हो जाता है। जैसे—

१. धैर्य और दृढ़ विश्वास गजसुकुमार की तरह होना चाहिए।
२. सहनशक्ति अर्जुन-माली के समान होनी चाहिए।
३. श्रावक लोगों को सुदर्शन श्रमणोपासक का अनुकरण करना चाहिए, जिसका आत्मतेज देव भी सहन नहीं कर सका।
४. धर्मविश्वास कृष्ण वासुदेव की भांति होना चाहिए।
५. प्रश्नोत्तर की शैली अतिमुक्त कुमार के समान होनी चाहिए।
६. त्यागवृत्ति कृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियों की भांति होनी चाहिए।
७. तपश्चर्या महाराजा श्रेणिक की दस देवियों की भांति होनी चाहिए जो आठवें वर्ग में सविस्तार वर्णित है। इस प्रकार यह शास्त्र अनेक शिक्षाओं से अलंकृत हो रहा है। जो भव्य प्राणी उक्त शिक्षाओं को धारण कर लेता है उसका मनुष्य-जीवन सार्थक और जनता में आदर्श रूप बन जाता है।

उपकार :—

यद्यपि इस शास्त्र के समुचित सम्पादन में मैं असमर्थ थी तथापि पूज्य गुरुदेव अनुयोगप्रवर्तक श्री कन्हैयालालजी (कमलमुनिजी) म. सा. की पावन कृपा से, शास्त्र विशारद माणेक कुंवरजी म. सा. के शुभाशीष से, पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल की आग्रहपूरित प्रेरणा से, परम पूज्य आगम-प्रभाकर आत्मारामजी म. सा. की श्रुतसहायता से और भगिनी साध्वी बा. ब्र. मुक्तिप्रभाजी म. सा, बा. ब्र. दर्शनप्रभाजी म. सा. और बा. ब्र. अनुपमाजी के परम सहयोग से श्रमणसंघ के युवाचार्य विद्वद्रत्न मुनि श्री मधुकरजी म. सा. द्वारा आयोजित इस पवित्र अनुष्ठान में किंचित् योगदान करने में समर्थ हो गई।

अतः इन सर्व महाविभूतियों और महानुभावों की महती कृपा, भावना प्रेरणा से पावन बनी हुई मैं मेरे और प्रिय पाठकों के संसार का अंत करनेवाली पावनी दशा की अभ्यर्थना के साथ विराम लेती हूँ और प्रमादवश बुद्धिदोष या अज्ञानवश हुई त्रुटियों हेतु श्रुतदेवताओं की और सर्व श्रुतधरों की क्षमा चाहती हूँ।

अर्हद्वत्सला
साध्वी दिव्यप्रभा

१९८०
जैन उपाश्रय
जमनादास मेहता मार्ग, तीनबत्ती
वालकेश्वर–६

प्रस्तावना

अन्तकृद्दशा : एक अध्ययन

अतीत के सुनहरे इतिहास के पृष्ठों का जब हम गहराई से अनुशीलन-परिशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक-काल से ही भारतीय तत्त्वचिन्तन दो धाराओं में प्रवाहित है, जिसे हम ब्राह्मण संस्कृति और श्रमण संस्कृति के नाम से जानते-पहचानते हैं। दोनों ही संस्कृतियों का उद्‌गमस्थल भारत ही रहा है। यहां की पावन-पुण्य धरा पर दोनों ही संस्कृतियां फलती और फूलती रही हैं। दोनों ही संस्कृतियां साथ में रहीं इसलिये एक संस्कृति की विचारधारा का दूसरी संस्कृति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, सहज है। दोनों ही संस्कृतियों की मौलिक विचारधाराओं में अनेक समानताएं होने पर भी दोनों में भिन्नताएं भी हैं। ब्राह्मण संस्कृति के मूलभूत चिन्तन का स्रोत 'वेद' है। जैन परम्परा के चिन्तन का आद्य स्रोत "आगम" है। वेद 'श्रुति' के नाम से विश्रुत है तो आगम "श्रुत" के नाम से ! श्रुति और श्रुत शब्द में अर्थ की दृष्टि से अत्यधिक साम्य है। दोनों का सम्बन्ध "श्रवण" से है। जो सुनने में आया वह श्रुत है।[1] और वही भाववाचक श्रवण श्रुति है। केवल शब्द श्रवण करना ही श्रुति और श्रुत का अभीष्ट अर्थ नहीं है। उसका तात्पर्यार्थ है—जो वास्तविक हो, प्रमाणभूत हो, जन-जन के मंगल की उदात्त विचारधारा को लिये हुए हो, जो आप्त पुरुषों व सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग महापुरुषों के द्वारा कथित हो वह आगम है, श्रुत है, श्रुति है। साधारण-व्यक्ति जो राग-द्वेष से संत्रस्त है, उसके वचन श्रुत और श्रुति की कोटि में नहीं आते हैं। आचार्य वादिदेव ने आगम की परिभाषा करते हुए लिखा है—आप्त वचनों से आविर्भूत होने वाला अर्थ-संवेदन ही "आगम" है।[2]

---

१. क. श्रूयते स्मेति श्रुतम्। —तत्त्वार्थराजवार्तिक।
   ख. श्रूयते आत्मना तदिति श्रुतं शब्दः। —विशेषावश्यकभाष्य मलधारीयावृत्ति।

२. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः—प्रमाणनयतत्त्वालोक ४।१—२।

जैन परम्परा में अर्हत् के द्वारा कथित, गणधर, प्रत्येकबुद्ध या स्थविर द्वारा ग्रथित वाङ्मय को प्रमाणभूत माना है।[3] इसलिए आगम वाङ्मय के कर्तृत्व का श्रेय महनीय महर्षियों को है। अङ्ग साहित्य के उद्गाता स्वयं तीर्थंकर हैं और सूत्रबद्ध रचना करने वाले प्रज्ञापुरुष गणधर हैं। अंगबाह्य साहित्य की रचना के मूल आधार तीर्थंकर हैं और सूत्रित करने वाले हैं चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी, और प्रत्येकबुद्ध आचार्य।[4] आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार में गणधरकथित, प्रत्येकबुद्ध कथित और अभिन्नदशपूर्वीकथित सूत्रों को प्रमाणभूत माना है।[5]

इस दृष्टि से हम इस सत्य तक पहुंचते हैं कि वर्तमान उपलब्ध अंगप्रविष्ट साहित्य के उद्गाता स्वयं तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं और रचयिता हैं, उनके अनन्तर शिष्य गणधर सुधर्मा। अंगबाह्य साहित्य में कर्तृत्व की दृष्टि से कितने ही आगम स्थविरों के द्वारा रचित हैं और कितने ही आगम द्वादशांगों से निर्यूढ़ यानी उद्धृत हैं।

वर्तमान में जो अंगसाहित्य उपलब्ध है वह गणधर सुधर्मा की रचना है, जो भगवान् महावीर के समकालीन हैं। इसलिये वर्तमान अंग-साहित्य का रचनाकाल ई. पू. छट्ठी शताब्दी सिद्ध होता है। अंग बाह्य साहित्य की रचना एक व्यक्ति की नहीं है, अतः उन सभी का एक काल नहीं हो सकता। दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यंभव ने की है तो प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता श्यामाचार्य हैं। छेदसूत्रों के रचयिता चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहु हैं तो नन्दीसूत्र के रचयिता देववाचक हैं। आधुनिक कुछ पाश्चात्य चिन्तक जैन आगमों का रचनाकाल देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण का काल मानते हैं, जिनका समय महावीर निर्वाण के पश्चात् ९८० अथवा ९९३वाँ वर्ष है। पर उन का यह मानना उचित नहीं है। देवर्द्धि गणि ने आगमों को लिपिबद्ध किया था, किन्तु आगम तो प्राचीन ही हैं। कितने ही विज्ञगण लेखन-काल को और रचना-काल को एक दूसरे में मिला देते हैं और आगमों के लेखन-काल को आगमों का रचना-काल मान बैठते हैं!

पहले श्रुत साहित्य लिखा नहीं जाता था। लिखने का निषेध होने से वह कण्ठस्थ रूप में ही चल रहा था।[6] चिरकाल तक वह कण्ठस्थ रहा जिससे श्रुतवचनों में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने तीव्र गति से ह्रास की ओर बहती हुयी श्रुत-स्रोतस्विनी को पुस्तकारूढ़ कर रोक दिया।[7] उस के

---

३. अर्हत्प्रोक्तं गणधरदृब्धं प्रत्येकबुद्धदृब्धं च। स्थविरग्रथितं च तथा प्रमाणभूतं त्रिधासूत्रम्।

४. द्रोणसूरि, ओघनिर्यु. पृ. ३.

५. सुत्तं गणधरकथिदं, तहेव पत्तेयबुद्धकथिदं च।
सुदकेवलिणा कथिदं अभिण्णदशपुव्विकथिदं च॥ मूलाचार ५,८०.

६. क. दशवैकालिकसूत्रचूर्णि-पृष्ठ-२१.
ख. निशीथभाष्य—४००४
ग. सूत्रकृतांग-शीलांकाचार्य वृत्ति पत्र ३३६.
घ. स्थानांग, अभयदेव वृत्ति प्रारम्भ।

७. क. वलहिपुरम्मि नयरे, देवड्ढिपमुहेण समणसंघेण।
पुत्थइ आगमु लिहिओ नवसय असीआओ वीराओ॥
अर्थात् ईस्वी ४५३, मतान्तर से ई. ४६६, एक प्राचीन गाथा।
ख. कल्पसूत्र—देवेन्द्र मुनि शास्त्री, महावीर अधिकार।

पश्चात् कुछ अपवादों को छोड़कर श्रुत साहित्य में परिवर्तन नहीं हुआ। वर्तमान में जो आगमसाहित्य उपलब्ध है, उसके संरक्षण का श्रेय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को है। यह साधिकार कहा जा सकता है कि वर्तमान में उपलब्ध आगम-साहित्य की मौलिकता असंदिग्ध है। कुछ स्थलों पर भले ही पाठ प्रक्षिप्त व परिवर्तित हुए हों, किन्तु उससे आगमों की प्रामाणिकता में कोई अन्तर नहीं आता।

अन्तकृद्दशा यह आठवां अंग सूत्र है। प्रस्तुत अंग में जन्म मरण की परम्परा का अन्त करने वाले विशिष्ट पवित्र-चरित्रात्माओं का वर्णन है और उसके दश अध्ययन होने से इस का नाम अन्तकृद्दशा है। समवायांग सूत्र में प्रस्तुत आगम के दश अध्ययन और सात वर्ग बताये हैं।[८] आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र में आठ वर्गों का उल्लेख किया है पर दश अध्ययनों का नहीं।[९] आचार्य अभयदेव ने समवायांग वृत्ति में दोनों ही उपर्युक्त आगमों के कथन में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं, इस दृष्टि से समवायांग सूत्र में दश अध्ययन और अन्य वर्गों की अपेक्षा से सात वर्ग कहे हैं। नन्दीसूत्रकार ने अध्ययनों का कोई उल्लेख न कर केवल आठ वर्ग बताये हैं।[१०] पर प्रश्न यह है कि प्रस्तुत सामंजस्य का निर्वाह अन्त तक किस प्रकार हो सकता है? क्योंकि समवायांग में ही अन्तकृद्दशा के शिक्षाकाल (उद्देशनकाल) दश कहे हैं जबकि नन्दी सूत्र में उनकी संख्या आठ बताई है। आचार्य अभयदेव ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि हमें उद्देशनकालों के अन्तर का अभिप्राय ज्ञात नहीं है।[११]

आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने नन्दी चूर्णि में[१२] और आचार्य हरिभद्र ने नन्दीवृत्ति[१३] में लिखा है कि प्रथम वर्ग के दश अध्ययन होने से इस आगम का नाम 'अन्तगडदशाओ' है। चूर्णिकार ने दशा का अर्थ अवस्था किया है।[१४] यह स्मरण रखना होगा कि समवायांग में दश अध्ययनों का निर्देश तो है पर उन अध्ययनों के नामों का संकेत नहीं है। स्थानाङ्ग में दश अध्ययनों के नाम इस प्रकार बताये हैं—नमि, मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, जमालि, भगाली, किंकष, चिल्वक्क, और फाल अंबडपुत्र।[१५]

आचार्य अकलंक ने राजवार्तिक[१६] में और आचार्य शुभचन्द्र ने अंगपण्णत्ति[१७] ग्रन्थ में कुछ पाठभेद के साथ दश नाम दिये हैं। वे इस प्रकार हैं— नमि, मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, यमलोक, वलीक, कंवल, पाल और अंबष्टपुत्र। इसमें यह भी लिखा है कि प्रस्तुत आगम में हर एक तीर्थंकरों के समय में होने वाले दश-दश अन्तकृत् केवलियों का वर्णन है। इस कथन का समर्थन जयधवलाकार वीरसेन और जयसेन ने भी किया है।[१८]

---

८. समवायांग प्रकीर्णक समवाय ९६.

९, नन्दी सूत्र ८८.

१०. समवायांगवृत्ति पत्र ११२.

११, समवायांगवृत्ति पत्र ११२.

१२. नन्दीसूत्र चूर्णिसहित पत्र ६८.

१३. नन्दी सूत्र वृत्ति सहित पत्र ८३.

१४. नन्दी सूत्र चूर्णिसहित पृ. ६८.

१५. स्थानाङ्ग १०। ११३.

१६. तत्त्वार्थराजवार्तिक १। २० पृ. ७३.

१७. अंगपण्णत्ती ५१.

१८. कसायपाहुड, भाग १, पृ. १३०.

नन्दीसूत्र में न तो दश अध्ययनों का उल्लेख है और न उनके नामों का ही निर्देश है। समवायांग और तत्त्वार्थ-राजवार्तिक में जिन अध्ययनों के नामों का निर्देश है वे अध्ययन वर्तमान में उपलब्ध अन्तकृद्दशांग में नहीं हैं। नन्दीसूत्र में वही वर्णन है जो वर्तमान में अंतकृद्दशा में उपलब्ध है। इससे यह सिद्ध है कि वर्तमान में अन्तकृद्दशा का जो रूप प्राप्त है वह आचार्य देववाचक के समय से पूर्व का है। वर्तमान में अन्तकृद्दशा में आठ वर्ग हैं और प्रथम वर्ग के दश अध्ययन हैं किन्तु जो नाम स्थानाङ्ग तत्त्वार्थराजवार्तिक व अंगपण्णत्ति में आये हैं उनसे पृथक् हैं। जैसे गौतम, समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु। आचार्य अभयदेव ने स्थानाङ्ग वृत्ति में इसे वाचनान्तर कहा है।[१९] इससे यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि वर्तमान में उपलब्ध अन्तकृद्दशा समवायांग में वर्णित वाचना से अलग है। कितने ही विज्ञों ने यह भी कल्पना की है कि पहले इस आगम में उपासकदशा की तरह दश ही अध्ययन होंगे, जिस तरह उपासकदशा में दश श्रमणोपासकों का वर्णन है इसी तरह प्रस्तुत आगम में भी दश अर्हतों की कथाएं आई होंगी।

अन्तकृद्दशा में एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, ९० अध्ययन, आठ उद्देशनकाल, आठ समुद्देशन काल और परिमित वाचनाएं हैं। इस में अनुयोगद्वार, वेढा, श्लोक, निर्युक्तियां, संग्रहणियां एवं प्रतिपत्तियां संख्यात, संख्यात हैं। इस में पद संख्यात और अक्षर संख्यात हजार बताये गये हैं। वर्तमान में उपलब्ध प्रस्तुत आगम में ९०० श्लोक हैं, आठ वर्ग हैं। उन में क्रमशः दश, आठ, तेरह, दश, दश, सोलह, तेरह और दश अध्ययन हैं।

प्रथम दो वर्गों में गौतम आदि वृष्णिकुल के अठारह राजकुमारों की तपोमय साधना का उत्कृष्ट वर्णन है। उन में प्रथम दश राजकुमारों की दीक्षापर्याय बारह-बारह वर्ष की है, अवशेष आठ राजकुमारों की दीक्षापर्याय सोलह-सोलह वर्ष प्रतिपादित की गई है। ये सभी राजकुमार श्रमणधर्म ग्रहण कर गुण रत्न संवत्सर जैसे उग्र तप की आराधना करते हैं और जीवन की सांध्यवेला में एक मास की संलेखना कर मुक्ति को वरण करते हैं।

प्रथम वर्ग से लेकर पांचवें वर्ग तक में श्रीकृष्ण वासुदेव का वर्णन आया है। श्रीकृष्ण वासुदेव जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं में अत्यधिक चर्चित रहे हैं। वैदिक-परम्परा के ग्रन्थों में वासुदेव, विष्णु, नारायण, गोविन्द प्रभृति उन के अनेक नाम प्रचलित हैं। श्रीकृष्ण वसुदेव के पुत्र थे। इसलिये वे वासुदेव कहलाये। महाभारत शान्तिपर्व में कृष्ण को विष्णु का रूप बताया है,[२०] गीता में श्रीकृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार हैं।[२१] महाभारतकार ने उन्हें नारायण मानकर स्तुति की है। वहां उन के दिव्य और भव्य मानवीय स्वरूप के दर्शन होते हैं।[२२] शतपथ, ब्राह्मण में उन के नारायण नाम का उल्लेख हुआ है।[२३] तैत्तिरीयारण्यक में उन्हें सर्वगुणसम्पन्न कहा है।[२४] महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में नारायण को सर्वेश्वर का रूप दिया है। मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को यह बताया है कि जनार्दन ही स्वयं नारायण हैं। महाभारत में अनेक स्थलों पर उनके नारायण रूप का निर्देश है।[२५] पद्मपुराण, वायुपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हरिवंशपुराण

१९. ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयामः। —स्थानाङ्गवृत्ति पत्र ४८३.
२०. महाभारत—शान्तिपर्व, अ. ४८.
२१. श्रीमद्भगवद्गीता।
२२. महाभारत—अनुशासन पर्व, १४७।१९-२०.
२३. शतपथब्राह्मण, १३।३।४
२४. तैत्तिरीयारण्यक, १०।११.
२५. महाभारत—वनपर्व १६-४७, उद्योग पर्व ४९ १.

और श्रीमद्भागवत में विस्तार से श्रीकृष्ण का चरित्र आया है।

छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण को देवकी का पुत्र कहा है। वे घोर आङ्गिरस ऋषि[२६] के निकट अध्ययन करते हैं। श्रीमद्भागवत में कृष्ण को परमब्रह्म बताया है।[२७] वे ज्ञान, शान्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छह गुणों में विशिष्ट हैं। उनके जीवन के विविध रूपों का चित्रण साहित्य में हुआ है। वैदिक परम्परा के आचार्यों ने अपनी दृष्टि से श्रीकृष्ण के चरित्र को चित्रित किया है। जयदेव विद्यापति आदि ने कृष्ण के प्रेमी रूप को ग्रहण कर कृष्णभक्ति का प्रादुर्भाव किया। सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीला और यौवन-लीला का विस्तार से विश्लेषण किया। रीतिकाल के कवियों के आराध्य देव श्रीकृष्ण रहे और उन्होंने गीतिकाएं व मुक्तकों के रूप में पर्याप्त साहित्य का सृजन किया। आधुनिक युग में भी वैदिक परम्परा के विज्ञों ने प्रिय-प्रवास, कृष्णावतार आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।[२८]

बौद्ध साहित्य के घटजातक[२९] में श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन आया है। यद्यपि घटनाक्रम में व नामों में पर्याप्त अन्तर है, तथापि कृष्ण-कथा का हार्द एक सदृश है।

जैन परम्परा में श्री कृष्ण सर्वगुणसम्पन्न, श्रेष्ठ, चरित्रनिष्ठ, अत्यन्त दयालु, शरणागतवत्सल, प्रगल्भ, धीर, विनयी, मातृभक्त, महान् वीर, धर्मात्मा, कर्तव्यपरायण, बुद्धिमान्, नीतिमान् और तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी वासुदेव हैं। समवायांग[३०] में उनके तेजस्वी व्यक्तित्व का जो चित्रण है, वह अद्भुत है, वे त्रिखण्ड के अधिपति अर्धचक्री हैं। उन के शरीर पर एक सौ आठ प्रशस्त चिह्न थे। वे नरवृषभ और देवराज इन्द्र के सदृश थे, महान् योद्धा थे। उन्होंने अपने जीवन में तीन सौ साठ युद्ध किये, पर किसी भी युद्ध में वे पराजित नहीं हुये। उन में बीस लाख अष्टपदों की शक्ति थी।[३१] किन्तु उन्होंने अपनी शक्ति का कभी भी दुरुपयोग नहीं किया। वैदिक परम्परा की भांति जैन परम्परा ने वासुदेव श्रीकृष्ण को ईश्वर का अंश या अवतार नहीं माना है। वे श्रेष्ठतम शासक थे। भौतिक दृष्टि से वे उस युग के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक थे। किन्तु निदानकृत होने से वे आध्यात्मिक दृष्टि से चतुर्थ गुणस्थान से आगे विकास न कर सके। वे तीर्थंकर अरिष्टनेमि के परम भक्त थे। अरिष्टनेमि से श्रीकृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे तो आध्यात्मिक दृष्टि से अरिष्टनेमि ज्येष्ठ थे।[३२] (एक धर्मवीर थे तो दूसरे कर्मवीर थे, एक निवृत्तिप्रधान थे तो दूसरे प्रवृत्तिप्रधान थे) अतः जब भी अरिष्टनेमि द्वारका में पधारते तब श्रीकृष्ण उन की उपासना के लिये पहुँचते थे। अन्तकृद्दशा, समवायाङ्ग, ज्ञाताधर्मकथा, स्थानाङ्ग, निरयावलिका, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन, प्रभृति आगमों में उन का यशस्वी व तेजस्वी रूप उजागर हुआ है। आगमों के व्याख्या-साहित्य में निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीका ग्रन्थों में उन के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाएं हैं। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं के मूर्धन्य मनीषियों ने कृष्ण के जीवन प्रसङ्गों को लेकर सौ से भी अधिक ग्रन्थों की रचनाएं की हैं। भाषा की दृष्टि से वे रचनाएं प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत पुरानी गुजराती, राजस्थानी व हिन्दी में है।

---

२६. छान्दोग्योपनिषद् अ. ३, खण्ड १७, श्लोक ६, गीताप्रेस गोरखपुर।
२७. श्रीमद्भागवत—दशम स्कन्ध, ८-४५, ३।१३।२४-२५.
२८. देखिये—भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण—एक अनुशीलन पृ. १७६ से १८६.
२९. जातककथाएं, चतुर्थ खण्ड ४५४ में घटजातक-भदन्त आनन्द कौशल्यायन।
३०. समवायाङ्ग १५८.
३१. आवश्यकनिर्युक्ति ४१५.
३२. अन्तकृद्दशा वर्ग १ से ३ तक।

प्रस्तुत आगम में श्रीकृष्ण का इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व निहारा जा सकता है। वे तीन खण्ड के अधिपति होने पर भी माता-पिता के परमभक्त थे। माता देवकी की अभिलाषापूर्त्ति के लिये वे हरिणैगमेषी देव की आराधना करते हैं। भाई के प्रति भी उनका अत्यन्त स्नेह है। भगवान् अरिष्टनेमि के प्रति भी अत्यन्त निष्ठा है। जहां वे रणक्षेत्र में असाधारण विक्रम का परिचय देकर रिपुमर्दन करते हैं, वज्र से भी कठोर प्रतीत होते हैं, वहां एक वृद्ध व्यक्ति को देखकर उनका हृदय अनुकम्पा से द्रवित हो जाता है और उसके सहयोग के लिये स्वयं भी ईंट उठा लेते हैं। द्वारका विनाश की बात सुनकर वे सभी को यह प्रेरणा प्रदान करते हैं कि भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण करो। दीक्षितों के परिवार के पालन-पोषण आदि की व्यवस्था मैं करूंगा। स्वयं की महारानियाँ पुत्र-पुत्रियाँ और पौत्र जो भी प्रव्रज्या के लिये तैयार होते हैं, उन्हें वे सहर्ष अनुमति देते हैं। आवश्यकचूर्णि में वर्णन है कि वे पूर्ण रूप से गुणानुरागी थे। कुत्ते के शरीर में कुलबुलाते हुये कीड़ों की ओर दृष्टि न डाल कर उस के चमचमाते हुये दांतों की प्रशंसा की, जो उनके गुणानुराग का स्पष्ट प्रतीक है।

प्रस्तुत आगम के पांच वर्ग तक भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित होने वाले साधकों का उल्लेख है। भगवान् अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर हैं। यद्यपि आधुनिक इतिहासकार उन्हें निश्चित तौर पर अभी तक ऐतिहासिक पुरुष नहीं मानते हैं, किन्तु उनकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। इतिहास इस स्वीकृति की ओर बढ़ रहा है। जब उन्हीं के युग में होने वाले श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष माना जाता है तो उन्हें भी ऐतिहासिक पुरुष मानने में संकोच नहीं होना चाहिए।

जैन परम्परा में ही नहीं, वैदिक परम्परा में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख अनेकों स्थलों पर हुआ है। ऋग्वेद में अरिष्टनेमि शब्द चार बार आया है।[३३] 'स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः[३४]' यहां पर अरिष्टनेमि शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिये आया है। इनके अतिरिक्त भी ऋग्वेद [३४], के अन्य स्थलों पर 'तार्क्ष्य अरिष्टनेमि' का वर्णन है। यजुर्वेद[३५] और सामवेद[३६] में भी भगवान् अरिष्टनेमि को तार्क्ष्य अरिष्टनेमि लिखा है। महाभारत में[३७] भी तार्क्ष्य शब्द का प्रयोग हुआ है। जो भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम होना चाहिये। उन्होंने राजा सगर को मोक्ष-मार्ग का जो उपदेश दिया, वह जैन धर्म के मोक्ष-मन्तव्यों से अत्यधिक मिलता-जुलता है।[३८] ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि सगर के समय में वैदिक लोग मोक्ष में विश्वास नहीं करते थे। अतः यह उपदेश किसी श्रमण संस्कृति के ऋषि का ही होना चाहिये।

यजुर्वेद में एक स्थान पर अरिष्टनेमि का वर्णन इस प्रकार है—अध्यात्म यज्ञ को प्रकट करने वाले, संसार के सभी भव्य जीवों को यथार्थ उपदेश देने वाले, जिनके उपदेश से जीवों की आत्मा बलवान् होती है, उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिये आहुति समर्पित करता हूँ।[३९]

---

३३. (क) ऋग्वेद १।१४।८९।६। (ख) ऋग्वेद १।२४।१८०।१०।
(ग) ऋग्वेद ३।४।५३।१७। (घ) ऋग्वेद १०।१२।१७८।१।

३४. ऋग्वेद—१।१४।८९।६। १।१।१६।, १।१२।१७८।१।

३५. यजुर्वेद २५।१९।

३६. सामवेद—३।९।

३७. महाभारत शान्ति पर्व—२८८।४।

३८. महाभारत शान्ति पर्व—२८८।५।६।

३९. वाजसनेयि : माध्यंदिन शुक्लयजुर्वेद, अध्याय ९ मंत्र २५, सातवलेकर संस्करण (विक्रम १९८४)।

डाक्टर राधाकृष्णन् ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि, इन तीन तीर्थंकारों का उल्लेख पाया जाता है।[४०]

स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड में एक वर्णन है—अपने जन्म के पिछले भाग में वामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव से शिव ने वामन को दर्शन दिये। वे शिव, श्यामवर्ण, अचेल तथा पद्मासन से स्थित थे। वामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा। यह नेमिनाथ इस घोर कलिकाल में सब पापों का नाश करने वाले हैं। उनके दर्शन और स्पर्श से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है।[४१] प्रभासपुराण[४२] में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है। महाभारत[४३] के अनुशासन पर्व में 'शूरः शौरिर्जनेश्वर' पद आया है। विज्ञों ने 'शूरः शौरिर्जिनेश्वरः' मानकर उसका अर्थ अरिष्टनेमि किया है।[४४]

लंकावतार के तृतीय परिवर्तन में तथागत बुद्ध के नामों की सूची दी गई है। उनमें एक नाम "अरिष्टनेमि" है।[४५] सम्भव है अहिंसा के दिव्य आलोक को जगमगाने के कारण अरिष्टनेमि अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे जिसके कारण उनका नाम बुद्ध की नाम-सूची में भी आया है। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ॰ राय चौधरी ने अपने वैष्णव परम्परा के प्राचीन इतिहास में श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई लिखा है। कर्नल टॉड ने[४६] अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में लिखा है कि मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में चार बुद्ध मेधावी महापुरुष हुए हैं, उनमें एक आदिनाथ हैं, दूसरे नेमिनाथ हैं, नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियों के प्रथम ओडिन तथा चीनियों के प्रथम "फो" देवता था। प्रसिद्ध कोषकार डॉ. नगेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर फुहरर, प्रोफेसर बारनेट, मिस्टर करवा, डाक्टर हरिदत्त, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार, प्रभृति अनेक-अनेक विद्वानों का स्पष्ट मन्तव्य है कि भगवान् अरिष्टनेमि एक प्रभावशाली पुरुष थे। उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में कोई बाधा नहीं है।

छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम "घोर आंगिरस ऋषि" आया है, जिन्होंने श्रीकृष्ण को आत्मयज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। धर्मानन्द कौशाम्बी का मानना है कि आंगिरस भगवान् अरिष्टनेमि का ही नाम था।[४७] आंगिरस ऋषि ने श्रीकृष्ण से कहा—श्रीकृष्ण जब मानव का अन्त समय सन्निकट आये, उस समय उसको तीन बातों का स्मरण करना चाहिये—

१. त्वं अक्षतमसि—तू अविनश्वर है।
२. त्वं अच्युतमसि—तू एक रस में रहने वाला है।
३. त्वं प्राणसंशितमसि—तू प्राणियों का जीवनदाता है।[४८]

---

४०. Indian Philosophy, Vol. I. P. 287.
४१. स्कन्धपुराण प्रभास खण्ड.
४२. प्रभास पुराण ४९।५०।
४३. महाभारत अनुशासन पर्व अ. १४९, श्लो ५०, ८२
४४. मोक्षमार्ग प्रकाश, पण्डित टोडरमल।
४५. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. १६२.
४६. अन्नल्स आफ दी भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पत्रिका, जिल्द २३, पृ. १२२।
४७. भारतीय संस्कृति और अहिंसा—पृ. ५७।
४८. तद्धैतद् घोरं आङ्गिरसः, कृष्णाय देवकीपुत्रायो वत्वोवाचाऽपिपासा एव स बभूव, सोऽन्त वेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षतमस्यच्युतमसि प्राणसंसीति।
—छान्दोग्योपनिषद् प्र. ३, खण्ड १८.

प्रस्तुत उपदेश को श्रवण कर श्रीकृष्ण अतिपार हो गये। वे अपने आपको धन्य अनुभव करने लगे। प्रस्तुत कथन की तुलना अन्तकृद्दशा में आये हुए भगवान् अरिष्टनेमि के इस कथन से कर सकते हैं कि जब भगवान् के मुंह से द्वारका का विनाश और जरत्कुमार के हाथ से स्वयं अपनी मृत्यु की बात सुनकर श्रीकृष्ण का मुख-कमल मुर्भा जाता है, तब भगवान् कहते हैं—श्रीकृष्ण ! तुम चिन्ता न करो। आगामी भव में तुम अमम नामक तीर्थंकर बनोगे।[४९] जिसे सुनकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट एवं खेदरहित हो गये।

प्रस्तुत आगम में श्रीकृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का कथाप्रसंग अत्यन्त रोचक व प्रेरणादायी है। भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम उपदेश से ही वे इतने अधिक प्रभावित हुये कि सब कुछ परित्याग कर श्रमण बन जाते हैं और महाकाल श्मशान में भिक्षु महाप्रतिमा को स्वीकार कर ध्यानस्थ हो जाते हैं। सोमिल ब्राह्मण ने देखा कि मेरा जामाता होने वाला मुण्डित हो गया है। इसने मेरी बेटी के जीवन के साथ विवाह न कर खिलवाड़ किया है। क्रोध की आंधी से उसका विवेक-दीपक बुझ जाता है। उसने मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बांधकर धधकते अंगार रख दिये। मस्तक, चमड़ी, मज्जा, मांस के जलने से महाभयंकर वेदना हो रही थी तथापि वे ध्यान से विचलित नहीं हुए। उनके मन में तनिक भी विरोध या प्रतिशोध की भावना जाग्रत नहीं हुई। यह थी रोष पर तोष की शानदार विजय। दानवता पर मानवता का अमर जयघोष; जिसके कारण उन्होंने एक ही दिन की चारित्र-पर्याय द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लिया।

अन्तगडसूत्र के चार वर्ग के ४१ अध्ययनों में उन राजकुमारों का उल्लेख हुआ है जिन्होंने श्रीकृष्ण वासुदेव के विराट्-वैभव और सुख-सुविधाओं से भरी हुई जिन्दगी को त्याग कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास उग्र तप की आराधना की, विविध प्रकार के तपों की आराधना की, और अन्त में केवलज्ञान के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

पाँचवें वर्ग के दश अध्ययनों में वासुदेव श्रीकृष्ण की पद्मावती, सत्यभामा, रुक्मिणी, जामवन्ती, प्रभृति आठ रानियाँ तथा दो पुत्रवधुओं के वैराग्यमय जीवन का वर्णन है। फूलों की शय्या पर सोने वाली राजरानियों ने उग्र साधना का राजमार्ग अपनाया। कहाँ राजरानी का भोगमय जीवन और कहाँ श्रमणियों का कठोर साधनामय जीवन ! इन अध्ययनों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, नारी जितनी फूल के समान सुकुमार है, उतनी ही तप:साधना में सिंहनी की भाँति कठोर भी है।

इस प्रकार पाँच वर्ग के ५१ अध्ययनों में भगवान् नेमिनाथ के युग के ५१ महान् साधकों का तपोमय जीवन उट्टङ्कित है। द्वारका नगरी और उसके विध्वंस की घटनाएं तथा गजसुकुमाल का आख्यान ऐसे रहे हैं, जिस पर परवर्ती साहित्यकारों ने स्वतन्त्र रूप से अनेक काव्यग्रन्थ लिखे हैं। इसमें अनुभव और प्रेरणाओं के जीते-जागते प्रसंग हैं जो आज भी सत्पथप्रदर्शक हैं, भय-दुर्बलता, वासना-लालसा और भोगेषणा के गहन अन्धकार में भी अभय, आत्मविश्वास और वीतरागता की दिव्य किरणें-विकीर्ण करते हैं।

छट्ठे, सातवें और आठवें वर्ग में भगवान् महावीर के शासन-काल के ३९ उग्र तपस्वी, क्षमामूर्ति और सरलात्माओं की हृदय कंपाने वाली साधनाओं का सजीव चित्रण है। मंकाई, किंकम के साधनामय जीवन का वर्णन है, जिन्होंने सोलह वर्ष तक गुणरत्न संवत्सर तप की आराधना की थी और विपुलगिरि पर्वत पर संथारा करके मुक्त हुये थे। छट्ठे वर्ग के तृतीय अध्ययन में राजगृह के अर्जुनमालाकार का वर्णन है। बन्धुमती उसकी

---

४९. अन्तकृद्दशा सूत्र वर्ग ५, अध्ययन-१।

पत्नी थी। मुद्गरपाणि यक्ष की वह उपासना करता था। राजगृह नगर की ललिता गोष्ठी के छह सदस्यों के द्वारा बन्धुमती के चरित्र को भ्रष्ट करने से अर्जुन माली के मन में अत्यन्त रोष पैदा हुआ और मुद्गरपाणि यक्ष के सहयोग से उसने उनका वध कर दिया। वह हिंसा का नग्नताण्डव करने लगा ! प्रतिदिन सात व्यक्तियों को मारता। भगवान् महावीर के आगमन को श्रवण कर सुदर्शन श्रेष्ठी दर्शनार्थ जाता है। अर्जुन को यक्ष-पाश से मुक्त करता है और भगवान् के चरणों में पहुंचाता है।

राजगृह के बाहर यक्षाविष्ट अर्जुन माली का आतंक था। क्या मजाल कि कोई नगर से बाहर निकलने की हिम्मत करे ! मगर भ० महावीर का पदार्पण होने पर सुदर्शन, माता-पिता के मना करने पर भी रुकता नहीं। वह भगवान् के दर्शनार्थ रवाना होता है। मार्ग में अर्जुन का साक्षात्कार होता है। हिंसा पर अहिंसा की विजय होती है।

इस वर्णन में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि नामधारी अनेक भक्त हो सकते हैं किन्तु सच्चे भक्त बहुत ही दुर्लभ हैं। जिस समय आकाश में उमड़-घुमड़ कर घटाएं आयें, उन घटाओं को देख कर कोई मोर से कहे तू कुहूक मत, केकारव मत कर ! मोर कहेगा, यह कभी संभव नहीं है। जो सच्चा भक्त है, वह समय आने पर प्राणों की बाजी भी लगा देता है किन्तु पीछे नहीं हटता। वह जानता है, बिना अग्नि-स्नान किये सुवर्ण में निखार नहीं आता ! बिना घिसे हीरे में चमक नहीं आती ! वैसे ही बिना कष्ट पाये भक्ति के रंग में भी चमक-दमक नहीं आती।

अर्जुन माली श्रमण बनकर उग्र साधना करते हैं। जिस के नाम से एक दिन बड़े-बड़े वीरों के पांव थर्राते थे, हृदय धड़कते थे, जिसने पांच माह तेरह दिन में ११४१ मानवों की हत्या की थी, वही व्यक्ति जब निर्ग्रन्थ साधना को स्वीकार करता है, तो उसका जीवन आमूल-चूल परिवर्तित हो जाता है। लोग उन श्रमण का कटुवचन कहकर तिरस्कार करते हैं ! लाठी, पत्थर, ईंट और थप्पड़ों से उन्हें प्रताडित करते हैं तथापि उन के मन में आक्रोश पैदा नहीं होता ! वह यही चिन्तन करते हैं—

समणं संजयं दंतं हणेज्ज कोइ कत्थई।
नत्थि जीवस्स नासुत्ति एवं पेहेज्ज संजए।[५०]

श्रमण संयत और दान्त होता है, वह इन्द्रियों का दमन करता है। यदि कोई उसे मारता और पीटता है तो भी वह चिन्तन करता है कि यह आत्मा कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है, यह अजर अमर है, शरीर क्षणभंगुर है। उसका नाश होता है, तो उसमें मेरा क्या जाता है ! इस प्रकार समत्वपूर्वक चिन्तन करते हुए वे भयंकर उपसर्गों को भी शान्त भाव से सहन करते हैं। अर्जुन अपनी क्षमामयी उग्र साधना के द्वारा छह माह में ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

छठे वर्ग में उस बालमुनि का भी वर्णन है जिसने छह वर्ष की लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण की थी।[५१] ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर के शासन में सब से लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण करने वाला वही एक मुनि है। अन्य जो

---

५०. उत्तराध्ययन सूत्र २। २७

५१. 'कुमारसमणे' त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात्, आह च 'छव्वरिसो पव्वइओ निग्गंथं होइऊण पावयणं'' ति, एतदेव चाश्चर्यमिह अन्यथा वर्षाष्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति।

—भगवती सटीक भा. १. श. ५, उ. ४, सू. १८८. पत्र २१९-२

प्रस्तुत उपदेश को श्रवण कर श्रीकृष्ण अविपारा हो गये। वे अपने आपको धन्य अनुभव करने लगे। प्रस्तुत कथन की तुलना अन्तकृद्दशा में आये हुए भगवान् अरिष्टनेमि के इस कथन से कर सकते हैं कि जब भगवान् के मुंह से द्वारका का विनाश और जरत्कुमार के हाथ से स्वयं अपनी मृत्यु की बात सुनकर श्रीकृष्ण का मुख-कमल मुर्झा जाता है, तब भगवान् कहते हैं—श्रीकृष्ण ! तुम चिन्ता न करो। आगामी भव में तुम अमम नामक तीर्थंकर बनोगे।[४९] जिसे सुनकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट एवं खेदरहित हो गये।

प्रस्तुत आगम में श्रीकृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का कथाप्रसंग अत्यन्त रोचक व प्रेरणादायी है। भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम उपदेश से ही वे इतने अधिक प्रभावित हुये कि सब कुछ परित्याग कर श्रमण बन जाते हैं और महाकाल श्मशान में भिक्षु महाप्रतिमा को स्वीकार कर ध्यानस्थ हो जाते हैं। सोमिल ब्राह्मण ने देखा कि मेरा जामाता होने वाला मुण्डित हो गया है। इसने मेरी बेटी के जीवन के साथ विवाह न कर खिलवाड़ किया है। क्रोध की आंधी से उसका विवेक-दीपक बुझ जाता है। उसने मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बांधकर धधकते अंगार रख दिये। मस्तक, चमड़ी, मज्जा, मांस के जलने से महाभयंकर वेदना हो रही थी तथापि वे ध्यान से विचलित नहीं हुए। उनके मन में तनिक भी विरोध या प्रतिशोध की भावना जाग्रत नहीं हुई। यह थी रोष पर तोष की शानदार विजय। दानवता पर मानवता का अमर जयघोष; जिसके कारण उन्होंने एक ही दिन की चारित्र-पर्याय द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लिया।

अन्तगडसूत्र के चार वर्ग के ४१ अध्ययनों में उन राजकुमारों का उल्लेख हुआ है जिन्होंने श्रीकृष्ण वासुदेव के विराट्-वैभव और सुख-सुविधाओं से भरी हुई जिन्दगी को त्याग कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास उग्र तप की आराधना की, विविध प्रकार के तपों की आराधना की, और अन्त में केवलज्ञान के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

पाँचवें वर्ग के दश अध्ययनों में वासुदेव श्रीकृष्ण की पद्मावती, सत्यभामा, रुक्मिणी, जामवन्ती, प्रभृति आठ रानियाँ तथा दो पुत्रवधुओं के वैराग्यमय जीवन का वर्णन है। फूलों की शय्या पर सोने वाली राजरानियों ने उग्र साधना का राजमार्ग अपनाया। कहाँ राजरानी का भोगमय जीवन और कहाँ श्रमणियों का कठोर साधना-मय जीवन ! इन अध्ययनों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, नारी जितनी फूल के समान सुकुमार है, उतनी ही तपःसाधना में सिंहनी की भाँति कठोर भी है।

इस प्रकार पाँच वर्ग के ५१ अध्ययनों में भगवान् नेमिनाथ के युग के ५१ महान् साधकों का तपोमय जीवन उट्टङ्कित है। द्वारका नगरी और उसके विध्वंस की घटनाएं तथा गजसुकुमाल का आख्यान ऐसे रहे हैं, जिस पर परवर्ती साहित्यकारों ने स्वतन्त्र रूप से अनेक काव्यग्रन्थ लिखे हैं। इसमें अनुभव और प्रेरणाओं के जीते-जागते प्रसंग हैं जो आज भी सत्पथप्रदर्शक हैं, भय-दुर्बलता, वासना-लालसा और भोगेषणा के गहन अन्धकार में भी अभय, आत्मविश्वास और वीतरागता की दिव्य किरणें-विकीर्ण करते हैं।

छट्ठे, सातवें और आठवें वर्ग में भगवान् महावीर के शासन-काल के ३९ उग्र तपस्वी, क्षमामूर्ति और सरलात्माओं की हृदय कंपाने वाली साधनाओं का सजीव चित्रण है। मंकाई, किंकम के साधनामय जीवन का वर्णन है, जिन्होंने सोलह वर्ष तक गुणरत्न संवत्सर तप की आराधना की थी और विपुलगिरि पर्वत पर संथारा करके मुक्त हुये थे। छट्ठे वर्ग के तृतीय अध्ययन में राजगृह के अर्जुनमालाकार का वर्णन है। बन्धुमती उसकी

---

४९. अन्तकृद्दशा सूत्र वर्ग ५, अध्ययन-१।

पत्नी थी। मुद्गरपाणि यक्ष की वह उपासना करता था। राजगृह नगर की ललिता गोष्ठी के छह सदस्यों के द्वारा बन्धुमती के चरित्र को भ्रष्ट करने से अर्जुन माली के मन में अत्यन्त रोष पैदा हुआ और मुद्गरपाणि यक्ष के सहयोग से उसने उनका वध कर दिया। वह हिंसा का नग्नताण्डव करने लगा! प्रतिदिन सात व्यक्तियों को मारता। भगवान् महावीर के आगमन को श्रवण कर सुदर्शन श्रेष्ठी दर्शनार्थ जाता है। अर्जुन को यक्ष-पाश से मुक्त करता है और भगवान् के चरणों में पहुंचाता है।

राजगृह के बाहर यक्षाविष्ट अर्जुन माली का आतंक था। क्या मजाल कि कोई नगर से बाहर निकलने की हिम्मत करे! मगर भ० महावीर का पदार्पण होने पर सुदर्शन, माता-पिता के मना करने पर भी रुकता नहीं। वह भगवान् के दर्शनार्थ रवाना होता है। मार्ग में अर्जुन का साक्षात्कार होता है। हिंसा पर अहिंसा की विजय होती है।

इस वर्णन में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि नामधारी अनेक भक्त हो सकते हैं किन्तु सच्चे भक्त बहुत ही दुर्लभ हैं। जिस समय आकाश में उमड़-घुमड़ कर घटाएं आयें, उन घटाओं को देख कर कोई मोर से कहे तू कुहुक मत, केकारव मत कर! मोर कहेगा, यह कभी संभव नहीं है। जो सच्चा भक्त है, वह समय आने पर प्राणों की बाजी भी लगा देता है किन्तु पीछे नहीं हटता। वह जानता है, बिना अग्नि-स्नान किये सुवर्ण में निखार नहीं आता! बिना घिसे हीरे में चमक नहीं आती! वैसे ही बिना कष्ट पाये भक्ति के रंग में भी चमक-दमक नहीं आती।

अर्जुन माली श्रमण बनकर उग्र साधना करते हैं। जिस के नाम से एक दिन बड़े-बड़े वीरों के पांव थर्राते थे, हृदय धड़कते थे, जिसने पांच माह तेरह दिन में ११४१ मानवों की हत्या की थी, वही व्यक्ति जब निर्ग्रन्थ साधना को स्वीकार करता है, तो उसका जीवन आमूल-चूल परिवर्तित हो जाता है। लोग उन श्रमण का कटुवचन कहकर तिरस्कार करते हैं! लाठी, पत्थर, ईंट और थप्पड़ों से उन्हें प्रताडित करते हैं तथापि उन के मन में आक्रोश पैदा नहीं होता! वह यही चिन्तन करते हैं—

समणं संजयं दंतं हणेज्ज कोइ कत्थई।
नत्थि जीवस्स नासुत्ति एवं पेहेज्ज संजए।[५०]

श्रमण संयत और दान्त होता है, वह इन्द्रियों का दमन करता है। यदि कोई उसे मारता और पीटता है तो भी वह चिन्तन करता है कि यह आत्मा कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है, यह अजर अमर है, शरीर क्षणभंगुर है। उसका नाश होता है, तो उसमें मेरा क्या जाता है! इस प्रकार समत्वपूर्वक चिन्तन करते हुए वे भयंकर उपसर्गों को भी शान्त भाव से सहन करते हैं। अर्जुन अपनी क्षमामयी उग्र साधना के द्वारा छह माह में ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

छठे वर्ग में उस बालमुनि का भी वर्णन है जिसने छह वर्ष की लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण की थी।[५१] ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर के शासन में सब से लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण करने वाला वही एक मुनि है। अन्य जो

---

५०. उत्तराध्ययन सूत्र २।२७

५१. 'कुमारसमणे' त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात्, आह च 'छव्वरिसो पव्वइओ निग्गंथं रोइऊण पावयणं'' ति, एतदेव चाश्चर्यमिह अन्यथा वर्षाष्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति।

—भगवती सटीक भा. १. श. ५, उ. ४, सू. १८८. पत्र २१९-२

भी बालमुनि हुए हैं, वे कम से कम आठ वर्ष की उम्र के थे। भगवान् महावीर ने साधना की दृष्टि से वय को प्रधानता नहीं दी। जिस साधक में योग्यता है वह वय की दृष्टि से भले ही लघु हो, प्रव्रजित हो सकता है। भगवान् महावीर ने अतिमुक्तक कुमार की आन्तरिक योग्यता को निहार कर ही दीक्षा प्रदान की थी। जैन इतिहास में ऐसे सैकड़ों तेजस्वी साधक हुए हैं जिन्होंने बाल्यावस्था में आर्हती दीक्षा ग्रहण कर जैन धर्म की विपुल प्रभावना की थी। चतुर्दशपूर्वधारी आचार्य शय्यंभव ने अपने पुत्र मणक[५२] को, आर्य सिंहगिरि ने वज्रस्वामी को बालवय में दीक्षा दी थी। आचार्य हेमचन्द्र उपाध्याय यशोविजय जी आदि बालदीक्षित ही थे। आचार्यसम्राट् आनन्द ऋषि जी म०, युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी आदि भी नौ दस वर्ष की नन्ही उम्र में श्रमण बने हैं। आगम साहित्य और परवर्ती साहित्य में कहीं भी ऐसी दीक्षा का निषेध नहीं है। अयोग्य दीक्षा का निषेध है। निशीथ भाष्य[५३] में अत्यन्त लघुवय में बालक को दीक्षा देने का निषेध किया है और उसके लिए जो कारण प्रस्तुत किये हैं वे अयोग्य दीक्षा से ही अधिक सम्बन्धित हैं। महावग्ग[५४] बौद्ध ग्रन्थ में भी इसी प्रकार निषेध है। निशीथभाष्य[५५] में आगे चलकर योग्य बालक को, जो लघुवय का भी हो दीक्षा देने की अनुमति दी है, क्यों—कि बालक बुद्धू ही नहीं बुद्धिमान् भी होते हैं, प्रबल प्रतिभा के धनी भी होते हैं, जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों को बदल दिया है। अतिमुक्तक मुनि का कथानक इस तथ्य का ज्वलंत उदाहरण है। अतिमुक्तक कुमार ने माता-पिता को कहा—पूज्यवर! मैं अपनी विराट् शक्ति को जानता हूं। मैं अंगारों पर मुस्कराता हुआ चल सकता हूं और शूलों पर भी बढ़ सकता हूं। मैं यह जानता हूं कि जो जन्मा है वह अवश्य ही मरेगा पर कब और किस प्रकार मरेगा यह मुझे परिज्ञात नहीं है। उनके तर्कों के सामने माता-पिता भी मौन हो गये।

भगवती[५६] सूत्र में अतिमुक्तक मुनि के श्रमणजीवन की एक घटना आई है—स्थविरों के साथ अतिमुक्तक मुनि शौचार्थ बाहर जाते हैं। वर्षा कुछ समय पूर्व ही हुई थी, अतः पानी तेजी से बह रहा था। बहता पानी देख कर उनके बाल-संस्कार उभर आये। मिट्टी की पाल बांधकर जल के प्रवाह को रोका। अपना पात्र उसमें छोड़ दिया। आनन्दविभोर होकर वह बोल उठे—'तिर मेरी नैया तिर' पवन ठुमक ठुमक कर चल रहा था। अतिमुक्तक की नैया थिरक रही थी। प्रकृति मुस्करा रही थी। पर स्थविरों को श्रमणमर्यादा के विपरीत यह कार्य कैसे सहन हो सकता था! अन्तर का रोष मुखकर झलक रहा था। अतिमुक्तक एकदम संभल गये। अपनी भूल पर अन्दर ही अन्दर पश्चात्ताप करने लगे। पश्चात्ताप ने उनको पावन बना दिया।

स्थविरों से भगवान् ने कहा—अतिमुक्तक मुनि इसी भव में मुक्त होगा। भगवान् ने अत्यन्त मधुर स्वर में कहा—इसकी हीलना, निन्दना और गर्हणा मत करो। यह निर्मल आत्मा है। यह वय से लघु है किन्तु इसका आत्मा हिमगिरि से भी अधिक उन्नत है।

सातवें और आठवें वर्ग में सम्राट् श्रेणिक की नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दश्रेणिका प्रभृति तेवीस महारानियों का वर्णन है, जिन्होंने भगवान् महावीर के पावन-प्रवचनों से प्रभावित होकर श्रमणधर्म स्वीकार किया, एकादश अंगों का अध्ययन किया और इतने उत्कृष्ट तप की आराधना की जिसे पढते-पढते ही रोंगटे

---

५२. परिशिष्टपर्व—सर्ग ५, आचार्य हेमचन्द्र

५३. निशीथ भाष्य ११,—३५३१।३२

५४. महावग्ग—१।४१-९२, पृ. ८०-८१, तुलना करें।

५५. निशीथ भाष्य ११-३५३७।३९

५६. भगवती शतक ५। उद्दे. ४

खड़े हो जाते हैं। सुख सुविधाओं में पलने वाली सुकुमार रानियां इतना उग्र तपश्चरण करके आत्मा को कुन्दन की तरह चमका सकती हैं, यह इन दो वर्गों के अध्ययन से स्पष्ट होता है। इन महारानियों के छुट-पुट जीवन-प्रसंग आगमों व आगमों के व्याख्या-साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। विस्तारभय से हम उन सभी प्रसंगों को यहां नहीं दे रहे हैं। इन महारानियों ने विभिन्न प्रकार की कठोर तपश्चर्या की जिसका उल्लेख इन वर्गों में किया गया है। अन्त में—सभी संलेखना-सहित आयु पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त करती हैं।

इस प्रकार अन्तकृद्दशांग सूत्र में अनेक प्रकार के साधकों और साधिकाओं की साधना का सजीव वर्णन है। एक ओर गजसुकुमार जैसे तरुणतपस्वी हैं, तो दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार जैसे अल्पवयस्क तेजस्वी श्रमण-नक्षत्र हैं। तीसरी ओर वासुदेव श्रीकृष्ण व सम्राट् श्रेणिक की महारानियों की जीवन-गाथाएं तप की उज्ज्वल किरणें विकीर्ण कर रही हैं। यही कारण है कि पर्युषण के पावन पुण्य पलों में स्थानकवासी परम्परा के वक्ता इस आगम का वाचन करते हैं। अंगों में यह आठवां अंग है, आठ वर्गों में विभक्त है। और पर्युषण पर्व के आठ दिन होते हैं। आठकर्मों को आत्यन्तिक रूप से नष्ट करने वाले ९० साधकों का पवित्र चरित्र है। जो अष्टगुणोपेत सिद्धि को प्रदान करने में समर्थ है।

इस आगम को, पर्युषण के सुनहरे अवसर पर कब से वांचने की परम्परा प्रारम्भ हुई, यह अन्वेषणीय है। सम्भव है वीर लौंकाशाह या उनके पश्चात् प्रारम्भ हुई हो! जिस किसी ने भी यह परम्परा प्रारम्भ करने का साहस किया होगा, वह बहुत ही तेजस्वी व्यक्ति रहा होगा!

अन्तकृद्दशा सूत्र पर संस्कृत में दो वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं। एक आचार्य अभयदेव की और एक आचार्य घासीलाल जी महाराज की। तीन-चार गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और पांच हिन्दी अनुवाद प्रकट हुए हैं। इस तरह इस आगम के बारह संस्करण प्रकाश में आये हैं।[५७] अंग्रेजी अनुवाद भी मुद्रित हुआ है।

प्रस्तुत संस्करण पूर्व संस्करणों की अपेक्षा अपनी कुछ अलग विशेषताएं लिये हुए है। शुद्ध मूल पाठ है, अर्थ है, और यत्र-तत्र विवेचन है, जो कथा में आये हुए गम्भीर भावों को व्यक्त करता है। परिशिष्ट में आगम के रहस्य को व्यक्त करने के लिये टिप्पण आदि अत्यन्त उपयोगी सामग्री भी दी गई है।

इस आगम के सम्पादन का श्रेय है—बहिन साध्वी दिव्यप्रभा जी को जो परमविदुषी साध्वीरत्न उज्ज्वलकुमारी जी की सुशिष्या हैं। विदुषी महासती श्री उज्ज्वल कुमारी जी एक प्रकृष्टप्रतिभासम्पन्न साध्वी थीं। उनके नाम से सम्पूर्ण जैन समाज भली-भाँति परिचित हैं। महासती जी की प्रबल प्रतिभा के संदर्शन उनकी सुशिष्याओं में सहज रूप से किये जा सकते हैं। प्रस्तुत आगम में महासती श्रीदिव्यप्रभा जी की प्रतिभा की दिव्य किरणें विकीर्ण हुयी हैं। उनका यह प्रयास प्रशंसनीय है। आशा है वे लेखन के क्षेत्र में आगे बढ़कर सरस्वती के भण्डार में श्रेष्ठतम कृतियाँ समर्पित करेंगी!

जैन आगम भारतीय साहित्य की अनमोल सम्पदा है, जिस पर जैन शासन का भव्य प्रासाद अवलम्बित है। उसके प्रकाशन सम्पादन के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों से प्रयत्न हुए हैं। पर ऐसे संस्करणों की अपेक्षा चिरकाल से थी जो आगम के मूल हार्द को स्पष्ट कर सकें। आगम के व्याख्या-साहित्य के आलोक में आगम की गुरु ग्रन्थियों को खोल सकें। इसी दृष्टि से श्रमणसंघ के युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी ने इस महान् कार्य को सम्पन्न करने का एक दृढ़ संकल्प किया, जिस की सभी ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। मेरे परम श्रद्धेय सद्-

---

५७. देखिए—जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा-ले. देवेन्द्रमुनि पृ. ७१३

गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म., जो युवाचार्यश्री के निकटतम स्नेही सहयोगी व सहपाठी रहे हैं, उनकी भी यही मंगल मनीषा थी कि आगमों का कार्य आज के युग में अत्यधिक आवश्यक है। जिस के अध्ययन से ही व्यक्ति भौतिकवाद की चकाचौंध से अपने आप को बचा सकता है। मुझे परम आह्लाद है कि आगम सम्पादन और प्रकाशन का कार्य अत्यन्त द्रुतगति से चल रहा है। युवाचार्यश्री के पथप्रदर्शन में आगमों के अभिनव संस्करण प्रबुद्ध पाठकों के करकमलों में पहुंच रहे हैं और उन्हें अत्यन्त स्नेह से पाठकगण अपना रहे हैं।

प्रस्तुत संस्करण को सर्वश्रेष्ठ बनाने में प्रज्ञामूर्ति, सम्पादनकलामर्मज्ञ श्रीशोभाचन्द्र जी भारिल्ल का अत्यधिक श्रम भी उल्लेखनीय है। आशा है यह संस्करण आगम-अभ्यासी, स्वाध्यायप्रेमी व्यक्तियों के लिये अत्यन्त उपयोगी रहेगा। इस सुरभित सुमन की सुगन्ध मुक्त रूप से दिग्दिगन्त में फैले, यही मेरी मंगल भावना है।

☐ देवेन्द्र मुनि शास्त्री

जैन स्थानक
नीमच सिटी (मध्यप्रदेश)
दि० २८ मार्च १९८१

विषयानुक्रम

प्रथम वर्ग

द्वितीय वर्ग

तृतीय वर्ग

गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म., जो युवाचार्यश्री के निकटतम स्नेही सहयोगी व सहपाठी रहे हैं, उनकी भी यही मंगल मनीषा थी कि आगमों का कार्य आज के युग में अत्यधिक आवश्यक है। जिस के अध्ययन से ही व्यक्ति भौतिकवाद की चकाचौंध से अपने आप को बचा सकता है। मुझे परम आह्लाद है कि आगम सम्पादन और प्रकाशन का कार्य अत्यन्त द्रुतगति से चल रहा है। युवाचार्यश्री के पथप्रदर्शन में आगमों के अभिनव संस्करण प्रबुद्ध पाठकों के करकमलों में पहुंच रहे हैं और उन्हें अत्यन्त स्नेह से पाठकगण अपना रहे हैं।

प्रस्तुत संस्करण को सर्वश्रेष्ठ बनाने में प्रज्ञामूर्ति, सम्पादनकलामर्मज्ञ श्रीशोभाचन्द्र जी भारिल्ल का अत्यधिक श्रम भी उल्लेखनीय है। आशा है यह संस्करण आगम-अभ्यासी, स्वाध्यायप्रेमी व्यक्तियों के लिये अत्यन्त उपयोगी रहेगा। इस सुरभित सुमन की सुगन्ध मुक्त रूप से दिग्दिगन्त में फैले, यही मेरी मंगल भावना है।

□ देवेन्द्र मुनि शास्त्री

जैन स्थानक
नीमच सिटी (मध्यप्रदेश)
दि० २८ मार्च १९८१

विषयानुक्रम

प्रथम वर्ग

द्वितीय वर्ग

तृतीय वर्ग

चतुर्थ वर्ग

पञ्चम वर्ग

षष्ठ वर्ग

सप्तम वर्ग

अष्टम वर्ग

चतुर्थ वर्ग

पञ्चम वर्ग

षष्ठ वर्ग

सप्तम वर्ग

अष्टम वर्ग

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट—२

पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिपणीयं अट्ठमं अंगं

अन्तगडदसाओ

पञ्चमगणधर-श्रीमत्सुधर्मस्वामिप्रणीतम्-अष्टमम् अङ्गम्

अन्तकृद्दशा

पढमो वग्गो

पढमं अज्झयणं

उत्क्षेप

१—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपानामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए-वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव [धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं] पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अंतेवासी अज्जजंबू जाव [नामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहणारायसंघयणे कणयपुलयनिहसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से अज्जजंबू नामं अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नसंसए, उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नसंसए, समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति। उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ। करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएणं] पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक यक्ष-मन्दिर था। उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी में पधारे। नगर-निवासी जन [धर्म-देशना श्रवणार्थ नगर से निकले। यावत् आर्य सुधर्मा स्वामी ने धर्म-देशना दी। (धर्म-कथन सुनकर) जनता जिस दिशा से आई थी उस दिशा में] वापस लौटी। उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी के आर्य जंबू [नाम के अनगार (शिष्य) थे। उनका काश्यप गोत्र था। उनका शरीर सात हाथ ऊँचा था। उनका संस्थान समचतुरस्र-समचौरस था। उनका संहनन वज्र-ऋषभ-नाराच था। कसौटी पर खींची हुई सोने की रेखा के समान तथा कमल की केसर के समान वे गौरवर्ण थे। वे उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, महातपस्वी, उदार, कर्मशत्रुओं के लिए घोर, घोर गुणवाले, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, अतएव शरीर-संस्कार के त्यागी थे। दूर-दूर तक फैलने वाली विपुल तेजोलेश्या को उन्होंने अपने शरीर में संक्षिप्त कर रखी थी। वे—जम्बू स्वामी, आर्य सुधर्मा स्वामी के न बहुत दूर और न बहुत नजदीक, ऊर्ध्वजानु और अधःशिर होकर अर्थात् दोनों घुटनों को खड़े करके एवं शिर को नीचे की तरफ झुकाकर ध्यानरूपी कोष्ठक में प्रविष्ट होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तत्पश्चात् आर्य जंबूनामक अनगार को तत्त्व के विषय में श्रद्धा (जिज्ञासा) हुई, संशय हुआ, कुतूहल हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा हुई, विशेष रूप से संशय हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ।

श्रद्धा उत्पन्न हुई, संशय उत्पन्न हुआ, कौतूहल उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा, संशय और कौतूहल उत्पन्न हुआ। तब वे उत्थान कर उठ खड़े हुए और उठ कर के जहाँ आर्य सुधर्मा स्थविर थे, वहीं आये। आकर आर्य सुधर्मा स्थविर की तीन बार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वाणी से स्तुति की और काया से नमस्कार किया। स्तुति और नमस्कार करके आर्य सुधर्मा स्थविर से न बहुत दूर और न बहुत समीप उचित स्थान पर स्थित होकर, सुनने की इच्छा करते हुए, सन्मुख दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक] पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

विवेचन——जैन वाङ्मय में आगमों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि आगम, तीर्थंकरोपदिष्ट हैं। महामहिम, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् तीर्थ की स्थापना करते हैं और सब जीवों की दया एवं रक्षा के लिए धर्मोपदेश करते हैं, इसीलिये प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है—"सव्व-जग-जीव-रक्खरण-दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं।" उनके अर्थरूप प्रवचन को गणधर सूत्र रूप में ग्रथित करते हैं और वह बारह भागों में विभक्त होता है, जिसे आगमिक भाषा में द्वादशांगी कहते हैं।

भगवान् का उपदेश चार अनुयोगों में विभक्त किया गया है—(१) द्रव्यानुयोग, (२) गणितानुयोग, (३) चरणकरणानुयोग और (४) धर्मकथानुयोग। स्थानांग आदि आगम द्रव्यानुयोग में गर्भित होते हैं। भगवती सूत्र आदि आगमों में गणितानुयोग अधिक है। चरणकरणानुयोग अर्थात् साधु एवं श्रावकों के आचार धर्म का विवेचन आचारांगादि सूत्रों में है। धर्मकथा का विशेष स्वरूप ज्ञाताधर्मकथा, अन्तगडदशा आदि आगमों में है।

जैनागमों के अनुसार द्वादशांगी का उपदेश तीर्थंकर करते हैं। वे बारह अंग इस प्रकार हैं—(१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग, (५) भगवतीसूत्र, (६) ज्ञाताधर्मकथा, (७) उपासकदशांग, (८) अन्तकृद्दशांग, (९) अनुत्तरोपपातिक, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाकसूत्र और (१२) दृष्टिवाद। इन बारह अंगों में वर्तमान काल में बारहवें दृष्टिवाद को छोड़कर अन्य सर्व अंग उपलब्ध हैं और उन में अन्तकृद्दशांग सूत्र आठवां अंग सूत्र है।

प्रस्तुत आगम में प्रतिपाद्य विषय के पूर्वभूमिका रूप में प्रथम सूत्र है, जो आगम-प्रसिद्ध संवादात्मक शैली से प्रकट होता है। इसे उपोद्घात या उत्क्षेप भी कहा जाता है। उत्क्षेप की यह विधि करीब चार सूत्र तक रहेगी, तदन्तर प्रतिपाद्य विषय के कथन का प्रारम्भ होगा।

इस प्रथम सूत्र में "तेणं कालेण तेणं समएणं" आदि शब्दों द्वारा आगमरचना के समय और स्थान की ओर पाठक का ध्यान खींचकर इसमें मुख्यतः पांच विषयों का निरूपण प्रस्तुत किया गया है—(१) वर्णनक्षेत्र, (२) उस समय की परिस्थिति, (३) आगम के प्रतिपादक, (४) प्रतिपादक की योग्यता और (५) प्रश्नकर्ता।

प्रस्तुत सूत्र में प्रथम आगम-रचना के समय की ओर और बाद में स्थान की ओर संकेत किया गया है। इसमें बताया है कि "उस काल और उस समय" में चंपा नाम की एक नगरी थी और उसके बाहर पूर्णभद्रनामक चैत्य था। जहाँ पर आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने प्रिय शिष्य आर्य जंबू को प्रस्तुत आगम का बोध कराया था। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि "काल और समय" दोनों एक ही अर्थ के द्योतक हैं, फिर दो शब्दों का प्रयोग करने का क्या आशय है? साधारणतः समय और काल पर्यायवाची हैं। परन्तु वास्तव में देखा जाए तो ये दोनों शब्द भिन्नार्थक हैं। काल शब्द उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप कालचक्र का बोधक है और समय शब्द उस कालचक्र में हुए व्यक्ति के समय का

बोधक है। यहाँ पर उस "काल" का यह अर्थ हुआ कि इस अवसर्पिणी के चतुर्थ आरे में इस आगम की वाचना दी गई थी। परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं कि चतुर्थ आरे में किस समय वाचना दी गई थी? क्योंकि चतुर्थ आरा ४२ हजार वर्ष कम कोटा-कोटी सागरोपम का है। अतः इस बात को "तेणं समएणं" ये पद देकर स्पष्ट किया है। उस समय का यह अर्थ है कि जिस समय आर्य सुधर्मा स्वामी विचरण करते हुए चंपा नगरी में पधारे, उस समय उन्होंने जम्बू स्वामी को प्रस्तुत आगम की वाचना दी। इससे यह ध्वनित होता है कि प्रस्तुत आगम की वाचना भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद दी गई थी। वृत्ति में अभयदेव सूरिजी ने काल से अवसर्पिणी का चतुर्थ विभाग अर्थात् चौथा आरा और 'समएणं' का विशेष काल अर्थ किया है।

इसके पश्चात् यह बताया गया है कि उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी में पधारे और नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे। उनकी शरीर-संपदा, उनके कुल एवं उनके गुणों का वर्णन प्रस्तुत आगम में नहीं किया गया है, क्योंकि नायाधम्मकहाओ में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। अतः यहाँ केवल संकेत कर दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत आगम के प्रतिपादक भगवान् महावीर के पंचम गणधर एवं प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी थे और उनके शिष्य आर्य जम्बू स्वामी प्रश्न-कर्त्ता थे।

प्रस्तुत विवरण से ऐसा प्रश्न होता है कि आर्य सुधर्मा स्वामी का विवरण प्रस्तुत करनेवाले उत्क्षेप—उपोद्‌घात के कर्ता कौन हैं? इसका समाधान यह है कि जैसे सुधर्मा स्वामी ने गौतमादि गणधरों का उल्लेख किया है, उसी तरह आर्य जंबू स्वामी के बाद होनेवाले प्रभवादि आचार्यों ने इस उत्क्षेप में आर्य सुधर्मा स्वामी का वर्णन किया है। अतः ऐसा ही परिलक्षित होता है कि इस उपोद्‌घात के कर्त्ता आचार्य प्रभवादि ही हों।

इस प्रकार "तेणं समएणं" शब्द का उपलक्षण-अर्थ यह होता है कि—चतुर्थ आरक के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी में पधारे और चंपा नगरी के बाहर पूर्णभद्रनामक चैत्य में ठहरे। उनके आगमन का शुभ-संदेश सुनकर नागरिक उनके दर्शनार्थ आए और धर्मोपदेश सुनकर वापस लौट गये। उस समय उनके शिष्य आर्य जंबू स्वामी विनय-भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में उपस्थित होकर विनम्र शब्दों में बोले। क्या बोले, यह आगे कहा जाएगा।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकर्ता ने वर्णन-क्षेत्र एवं वर्णन-कर्ता आदि के नाम का उल्लेख मात्र किया है। वर्णन-स्थान एवं वर्णन-कर्ता के सम्पूर्ण स्वरूप को जानने के लिये अन्य आगमों को देखने का संकेत कर दिया है। अतः चंपा नगरी एवं उसमें रहे हुए पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन एवं उसमें पधारे हुए आर्य सुधर्मा स्वामी के जीवन-परिचय से लेकर परिषद् के आवागमन तक का वर्णन औपपातिक आदि आगमों से जानना चाहिए। उस में चंपा नगरी एवं पूर्णभद्र चैत्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। ऐसे स्थानों पर इन वर्णित विषयों का संसूचक शब्द है—"वण्णओ।"

'वण्णओ' यह पद वर्णक का बोधक है। वर्णन करनेवाला प्रकरण वर्णक शब्द से व्यवहृत किया जाता है। आगे जहाँ-जहाँ जिस पद के आगे वर्णक पद का उल्लेख मिले, वहाँ-वहाँ पर उस पद से संसूचित पदार्थ का वर्णन करनेवाले पाठ की ओर संकेत रहेगा।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि आगमों में अंग सूत्रों का ही स्थान प्रमुख होने पर भी यहाँ अंग सूत्रों में वर्णित पाठों के लिए पाठकों को अंगबाह्य आगमों पर क्यों अवलंबित किया जाता है?

आगम रचना के अनुसार पहले अंगों की और बाद में उपांगों की रचना हुई है। ऐसी स्थिति में इन अंगसूत्रों में 'वण्णओ' पाठ कैसे उचित बैठ सकते हैं ? अंतकृद्दशांग अंग सूत्र है और औपपातिक सूत्र उपांग है, तो फिर अंतगड में औपपातिक सूत्र का सन्दर्भ कैसे अभीष्ट हो सकता है ?

आगमों में अंगसूत्रों का स्थान सर्वोच्च है। उपांगों की रचना का आधार भी ये अंगसूत्र ही हैं यह निर्विवाद सत्य है। फिर भी अंगसूत्रों में उपांगसूत्रों का निर्देश करने का मुख्य कारण आगमों को लिपिबद्ध करते समय इस क्रम का ध्यान नहीं रखना है। चार मूल, चार छेद, औपपातिक सूत्र, आचारांग सूत्र, स्थानांगसूत्र, इन में किसी सूत्र का उद्धरण नहीं दिया। प्रतीत होता है कि इन को लिपिबद्ध प्रथम कर लिया गया था। तत्पश्चात् लिपिबद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन विस्तार-पूर्वक एक सूत्र में कर दिया गया, उस का पौनः पुन्येन वर्णन करना उचित नहीं समझा गया।

२—"जइ णं भंते ! समणेणं आइगरेणं, जाव [तित्थयरेणं सयंसंबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवरपुंडरीएणं, पुरिसवरगंधहत्थिणा, लोगुत्तमेणं, लोगनाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मनायगेणं, धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवरनाणदंसण-धरेणं वियट्टछउमेणं, जिणेणं, जावएणं, तिन्नेणं, तारएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोअगेणं, सव्वन्नेणं, सव्वदरिसणेणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिअं सासयं ठाणं] संपत्तेणं,[१] सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते ?"

"एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता।"

"हे भगवन् ! यदि श्रुतधर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर, [गुरु के उपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रु का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में गंधहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गंधहस्ती की गंध से ही अन्य हस्ती भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करनेवाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धा रूप नेत्र के दाता, धर्ममार्ग के दाता, बोधिदाता, देशविरति और सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ती, कहीं भी प्रतिहत न होने वाले केवलज्ञान-दर्शन के धारक, घातिकर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतनेवाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियों को जितानेवाले और, संसार-सागर से स्वयं तिरे हुए और दूसरों को तारनेवाले, स्वयं बोधप्राप्त और दूसरों को बोध देनेवाले, स्वयं कर्म-बन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—उपद्रव रहित, अचल—चलन आदि क्रिया से रहित, अरुज—शारीरिक मानसिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त अक्षय अव्याबाध और अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित सिद्धि-गतिनामक शाश्वत स्थान को] प्राप्त श्रमण भगवान् ने सप्तम अंग उपासकदशाङ्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, जिस को अभी मैंने आपके मुखारविंद से सुना है। हे भगवन् ! अब यह बतलाने की कृपा करें कि श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अन्तकृद्दशाङ्ग का क्या अर्थ बताया है ?"

१. नायाधम्मकहाओ—श्रुत. १, अ. १—पृ. ५ में मूल पाठ "ठाणं संपत्तेणं" न होकर "ठाणमुवगएणं" है।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"जम्बू ! श्रमण भगवान् ने अष्टम अन्तकृद्दशांग के आठ वर्ग प्रतिपादन किए हैं।"

विवेचन—आगम-परिपाटी के पर्यवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सर्व आगम आर्य जंबू स्वामी और आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रश्नोत्तर रूप हैं। आर्य जंबू स्वामी प्रश्न करते हैं और आर्य सुधर्मा स्वामी उसका उत्तर देते हैं। यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमों के रूप में दिखाई देते हैं। इसकी स्पष्टता प्रस्तुत सूत्र में झलकती है। अन्तकृद्दशांग सूत्र का शुभारंभ इस प्रकार के प्रश्नोत्तर से ही होता है। इस सूत्र में प्रश्नोत्तर द्वारा आर्य जंबू स्वामी ने अष्टम अन्तकृद्दशांग आगम के श्रवण-वर्णन की जिज्ञासा प्रस्तुत की है।

वस्तुतः आगमों के तीन प्रकार हैं—(१) आत्मागम, (२) अनन्तरागम और (३) परंपरागम[1]।

गुरुजनों के उपदेश विना स्वयमेव आगमों का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है। तीर्थंकर परमात्मा के लिये अर्थागम आत्मागम रूप हैं और गणधरों के लिये सूत्रागम आत्मागमरूप हैं। (मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम और सूत्र और अर्थ उभयरूप आगम को तदुभयागम कहते हैं)।

स्वयं आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है। गणधर भगवान् के लिये अर्थागम अनन्तरागम रूप है। तथा जंबू स्वामी आदि गणधर-शिष्यों के लिये सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न होकर जो आगम-ज्ञान उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि की परम्परा से प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है। जैसे जंबू स्वामी आदि गणधरशिष्यों के लिये अर्थागम परम्परा रूप है। तथा इन के बाद के सभी साधकों के लिये सूत्र एवं अर्थ दोनों प्रकार के आगम परम्परागम हैं।

अतः यह स्पष्ट ही है कि प्रस्तुत अन्तकृद्दशांग सूत्र अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर परमात्मा के लिये आत्मागम है, गणधरों के लिये अनन्तरागम है और गणधर-शिष्यों के लिये परम्परागम है। इसी प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरों के लिये आत्मागम, गणधर-शिष्यों के लिये अनन्तरागम, और गणधर-प्रशिष्यों के लिये परम्परागम है।

अर्थरूप से आगमों का प्रतिपादन तीर्थंकर परमात्मा करते हैं, गणधर उन्हें सूत्र रूपमें गूँथते हैं। वस्तुतः गणधर भगवान् तीर्थंकर परमात्मा से प्राप्त किए हुए पदार्थ के प्रचारक हैं, स्वयं उसके द्रष्टा या स्रष्टा नहीं हैं।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जंबू अनगार से कहा—हे जंबू ! भगवान् महावीर ने अन्तगड सूत्र के आठ वर्ग प्रतिपादन किये हैं।

इस सूत्र में प्रयुक्त "वग्गा" शब्द वर्ग का बोधक है। वर्ग का अर्थ होता है शास्त्र का एक विभाग, प्रकरण या अध्ययनों का समूह।

आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रस्तुत विचारों को जानकर आर्य जंबू स्वामी ने जो निवेदन प्रस्तुत किया वह अब तृतीय सूत्र में दर्शाया जाता है—

---

१. अनुयोगद्वार प्रमाण विषय—सूत्र-१४७

आगम रचना के अनुसार पहले अंगों की और बाद में उपांगों की रचना हुई है। ऐसी स्थिति में इन अंगसूत्रों में 'वण्णओ' पाठ कैसे उचित बैठ सकते हैं ? अंतकृद्दशांग अंग सूत्र है और औपपातिक सूत्र उपांग है, तो फिर अंतगड में ओपपातिक सूत्र का सन्दर्भ कैसे अभीष्ट हो सकता है ?

आगमों में अंगसूत्रों का स्थान सर्वोच्च है। उपांगों की रचना का आधार भी ये अंगसूत्र ही हैं यह निर्विवाद सत्य है। फिर भी अंगसूत्रों में उपांगसूत्रों का निर्देश करने का मुख्य कारण आगमों को लिपिबद्ध करते समय इस क्रम का ध्यान नहीं रखना है। चार मूल, चार छेद, औपपातिक सूत्र, आचारांग सूत्र, स्थानांगसूत्र, इन में किसी सूत्र का उद्धरण नहीं दिया। प्रतीत होता है कि इन को लिपिबद्ध प्रथम कर लिया गया था। तत्पश्चात् लिपिबद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन विस्तार-पूर्वक एक सूत्र में कर दिया गया, उस का पौनः पुन्येन वर्णन करना उचित नहीं समझा गया।

२—**"जइ णं भंते ! समणेणं आइगरेणं, जाव [तित्थयरेणं सयंसंबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवरपुंडरीएणं, पुरिसवरगंधहत्थिणा, लोगुत्तमेणं, लोगनाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मनायगेणं, धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवरनाणदंसण-धरेणं वियट्टछउमेणं, जिणेणं, जावएणं, तिन्नेणं, तारएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोअगेणं, सव्वन्नेणं, सव्वदरिसणेणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिअं सासयं ठाणं] संपत्तेणं,[1] सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते ?"**

"एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता।"

"हे भगवन् ! यदि श्रुतधर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर, [गुरु के उपदेश के विना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रु का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में गंधहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गंधहस्ती की गंध से ही अन्य हस्ती भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करनेवाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धा रूप नेत्र के दाता, धर्ममार्ग के दाता, बोधिदाता, देशविरति और सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ती, कहीं भी प्रतिहत न होने वाले केवलज्ञान-दर्शन के धारक, घातिकर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतनेवाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियों को जितानेवाले और, संसार-सागर से स्वयं तिरे हुए और दूसरों को तारनेवाले, स्वयं बोधप्राप्त और दूसरों को बोध देनेवाले, स्वयं कर्म-बन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—उपद्रव रहित, अचल—चलन आदि क्रिया से रहित, अरुज—शारीरिक मानसिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त अक्षय अव्याबाध और अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित सिद्धि-गतिनामक शाश्वत स्थान को] प्राप्त श्रमण भगवान् ने सप्तम अंग उपासकदशाङ्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, जिस को अभी मैंने आपके मुखारविंद से सुना है। हे भगवन् ! अब यह बतलाने की कृपा करें कि श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अन्तकृद्दशाङ्ग का क्या अर्थ बताया है ?"

१. नायाधम्मकहाओ—श्रुत. १, अ. १—पृ. ५ में मूल पाठ "ठाणं संपत्तेणं" न होकर "ठाणमुवगएणं" है।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"जम्बू ! श्रमण भगवान् ने अष्टम अन्तकृद्दशांग के आठ वर्ग प्रतिपादन किए हैं।"

विवेचन—आगम-परिपाटी के पर्यवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सर्व आगम आर्य जंबू स्वामी और आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रश्नोत्तर रूप हैं। आर्य जंबू स्वामी प्रश्न करते हैं और आर्य सुधर्मा स्वामी उसका उत्तर देते हैं। यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमों के रूप में दिखाई देते हैं। इसकी स्पष्टता प्रस्तुत सूत्र में झलकती है। अन्तकृद्दशांग सूत्र का शुभारंभ इस प्रकार के प्रश्नोत्तर से ही होता है। इस सूत्र में प्रश्नोत्तर द्वारा आर्य जंबू स्वामी ने अष्टम अन्तकृद्दशांग आगम के श्रवण-वर्णन की जिज्ञासा प्रस्तुत की है।

वस्तुतः आगमों के तीन प्रकार हैं—(१) आत्मागम, (२) अनन्तरागम और (३) परंपरागम[1]।

गुरुजनों के उपदेश बिना स्वयमेव आगमों का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है। तीर्थंकर परमात्मा के लिये अर्थागम आत्मागम रूप हैं और गणधरों के लिये सूत्रागम आत्मागमरूप हैं। (मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम और सूत्र और अर्थ उभयरूप आगम को तदुभयागम कहते हैं)।

स्वयं आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है। गणधर भगवान् के लिये अर्थागम अनन्तरागम रूप है। तथा जंबू स्वामी आदि गणधर-शिष्यों के लिये सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न होकर जो आगम-ज्ञान उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि की परम्परा से प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है। जैसे जंबू स्वामी आदि गणधरशिष्यों के लिये अर्थागम परम्परा रूप है। तथा इन के बाद के सभी साधकों के लिये सूत्र एवं अर्थ दोनों प्रकार के आगम परम्परागम हैं।

अतः यह स्पष्ट ही है कि प्रस्तुत अन्तकृद्दशांग सूत्र अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर परमात्मा के लिये आत्मागम है, गणधरों के लिये अनन्तरागम है और गणधर-शिष्यों के लिये परम्परागम है। इसी प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरों के लिये आत्मागम, गणधर-शिष्यों के लिये अनन्तरागम, और गणधर-प्रशिष्यों के लिये परम्परागम है।

अर्थरूप से आगमों का प्रतिपादन तीर्थंकर परमात्मा करते हैं, गणधर उन्हें सूत्र रूपमें गूँथते हैं। वस्तुतः गणधर भगवान् तीर्थंकर परमात्मा से प्राप्त किए हुए पदार्थ के प्रचारक हैं, स्वयं उसके द्रष्टा या स्रष्टा नहीं हैं।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जंबू अनगार से कहा—हे जंबू ! भगवान् महावीर ने अन्तगड सूत्र के आठ वर्ग प्रतिपादन किये हैं।

इस सूत्र में प्रयुक्त "वग्गा" शब्द वर्ग का बोधक है। वर्ग का अर्थ होता है शास्त्र का एक विभाग, प्रकरण या अध्ययनों का समूह।

आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रस्तुत विचारों को जानकर आर्य जंबू स्वामी ने जो निवेदन प्रस्तुत किया वह अब तृतीय सूत्र में दर्शाया जाता है—

१. अनुयोगद्वार प्रमाण विषय—सूत्र-१४७

आगम रचना के अनुसार पहले अंगों की और बाद में उपांगों की रचना हुई है। ऐसी स्थिति में इन अंगसूत्रों में 'वण्णओ' पाठ कैसे उचित बैठ सकते हैं ? अंतकृद्दशांग अंग सूत्र है और औपपातिक सूत्र उपांग है, तो फिर अंतगड में औपपातिक सूत्र का सन्दर्भ कैसे अभीष्ट हो सकता है ?

आगमों में अंगसूत्रों का स्थान सर्वोच्च है। उपांगों की रचना का आधार भी ये अंगसूत्र ही हैं यह निर्विवाद सत्य है। फिर भी अंगसूत्रों में उपांगसूत्रों का निर्देश करने का मुख्य कारण आगमों को लिपिबद्ध करते समय इस क्रम का ध्यान नहीं रखना है। चार मूल, चार छेद, औपपातिक सूत्र, आचारांग सूत्र, स्थानांगसूत्र, इन में किसी सूत्र का उद्धरण नहीं दिया। प्रतीत होता है कि इन को लिपिबद्ध प्रथम कर लिया गया था। तत्पश्चात् लिपिबद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन विस्तार-पूर्वक एक सूत्र में कर दिया गया, उस का पौनः पुन्येन वर्णन करना उचित नहीं समझा गया।

२—"जइ णं भंते ! समणेणं आइगरेणं, जाव [तित्थयरेणं सयंसंबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवरपुंडरीएणं, पुरिसवरगंधहत्थिणा, लोगुत्तमेणं, लोगनाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मनायगेणं, धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवरनाणदंसण-धरेणं वियट्टछउमेणं, जिणेणं, जावएणं, तिन्नेणं, तारएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोअगेणं, सव्वन्नेणं, सव्वदरिसणेणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिअं सासयं ठाणं] संपत्तेणं,[1] सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते ?"

"एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता।"

"हे भगवन् ! यदि श्रुतधर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर, [गुरु के उपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रु का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में गंधहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गंधहस्ती की गंध से ही अन्य हस्ती भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करनेवाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धा रूप नेत्र के दाता, धर्ममार्ग के दाता, बोधिदाता, देशविरति और सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ती, कहीं भी प्रतिहत न होने वाले केवलज्ञान-दर्शन के धारक, घातिकर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतनेवाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियों को जितानेवाले और, संसार-सागर से स्वयं तिरे हुए और दूसरों को तारनेवाले, स्वयं बोधप्राप्त और दूसरों को बोध देनेवाले, स्वयं कर्म-बन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—उपद्रव रहित, अचल—चलन आदि क्रिया से रहित, अरुज—शारीरिक मानसिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त अक्षय अव्याबाध और अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित सिद्धि-गतिनामक शाश्वत स्थान को] प्राप्त श्रमण भगवान् ने सप्तम अंग उपासकदशाङ्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, जिस को अभी मैंने आपके मुखारविंद से सुना है। हे भगवन् ! अब यह बतलाने की कृपा करें कि श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अन्तकृद्दशाङ्ग का क्या अर्थ बताया है ?"

---

१. नायाधम्मकहाओ—श्रुत. १, अ. १—पृ. ५ में मूल पाठ "ठाणं संपत्तेणं" न होकर "ठाणमुवगएणं" है।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"जम्बू ! श्रमण भगवान् ने अष्टम अन्तकृद्दशांग के आठ वर्ग प्रतिपादन किए हैं।"

विवेचन—आगम-परिपाटी के पर्यवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सर्व आगम आर्य जंबू स्वामी और आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रश्नोत्तर रूप हैं। आर्य जंबू स्वामी प्रश्न करते हैं और आर्य सुधर्मा स्वामी उसका उत्तर देते हैं। यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमों के रूप में दिखाई देते हैं। इसकी स्पष्टता प्रस्तुत सूत्र में झलकती है। अन्तकृद्दशांग सूत्र का शुभारंभ इस प्रकार के प्रश्नोत्तर से ही होता है। इस सूत्र में प्रश्नोत्तर द्वारा आर्य जंबू स्वामी ने अष्टम अन्तकृद्दशांग आगम के श्रवण-वर्णन की जिज्ञासा प्रस्तुत की है।

वस्तुतः आगमों के तीन प्रकार हैं—(१) आत्मागम, (२) अनन्तरागम और (३) परंपरागम[1]।

गुरुजनों के उपदेश विना स्वयमेव आगमों का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है। तीर्थंकर परमात्मा के लिये अर्थागम आत्मागम रूप हैं और गणधरों के लिये सूत्रागम आत्मागमरूप हैं। (मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम और सूत्र और अर्थ उभयरूप आगम को तदुभयागम कहते हैं)।

स्वयं आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है। गणधर भगवान् के लिये अर्थागम अनन्तरागम रूप है। तथा जंबू स्वामी आदि गणधर-शिष्यों के लिये सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न होकर जो आगम-ज्ञान उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि की परम्परा से प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है। जैसे जंबू स्वामी आदि गणधरशिष्यों के लिये अर्थागम परम्परा रूप है। तथा इन के बाद के सभी साधकों के लिये सूत्र एवं अर्थ दोनों प्रकार के आगम परम्परागम हैं।

अतः यह स्पष्ट ही है कि प्रस्तुत अन्तकृद्दशांग सूत्र अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर परमात्मा के लिये आत्मागम है, गणधरों के लिये अनन्तरागम है और गणधर-शिष्यों के लिये परम्परागम है। इसी प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरों के लिये आत्मागम, गणधर-शिष्यों के लिये अनन्तरागम, और गणधर-प्रशिष्यों के लिये परम्परागम है।

अर्थरूप से आगमों का प्रतिपादन तीर्थंकर परमात्मा करते हैं, गणधर उन्हें सूत्र रूपमें गूँथते हैं। वस्तुतः गणधर भगवान् तीर्थंकर परमात्मा से प्राप्त किए हुए पदार्थ के प्रचारक हैं, स्वयं उसके द्रष्टा या स्रष्टा नहीं हैं।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जंबू अनगार से कहा—हे जंबू ! भगवान् महावीर ने अन्तगड सूत्र के आठ वर्ग प्रतिपादन किये हैं।

इस सूत्र में प्रयुक्त "वग्गा" शब्द वर्ग का बोधक है। वर्ग का अर्थ होता है शास्त्र का एक विभाग, प्रकरण या अध्ययनों का समूह।

आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रस्तुत विचारों को जानकर आर्य जंबू स्वामी ने जो निवेदन प्रस्तुत किया वह अब तृतीय सूत्र में दर्शाया जाता है—

१. अनुयोगद्वार प्रमाण विषय—सूत्र-१४७

३—"जइ णं भंते ! समणेणं जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?"

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव[2] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

"गोयम-समुद्द-सागर-गंभीरे चेव होइ थिमिए य ।
अयले कंपिल्ले खलु अक्खोभ-पसेणइ-विण्हू ।।"

(आर्य जंबू आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे)—"भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कथन किये हैं, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तद्दकृशांग सूत्र के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किये हैं ?"

(जंबू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले)—"जंबू ! यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं। जैसे कि—

(१) गौतम, (२) समुद्र, (३) सागर, (४) गंभीर, (५) स्तिमित, (६) अचल, (७) काम्पिल्य, (८) अक्षोभ, (९) प्रसेनजित् और (१०) विष्णुकुमार ।

विवेचन—सूत्र के अवान्तर विभाग को या ग्रन्थ के एक अंश को अध्ययन कहते हैं । अध्ययन शब्द की व्याख्या एक श्लोक में इस प्रकार की है—

अज्झप्परसाणयणं कम्माणं अवचओ उवचियाणं ।
अणुवचओ च नवाणं, तम्हा अज्झयणमिच्छंति ।।

जिससे अध्यात्म—हृदय को शुभ ध्यान में स्थित किया जाता है, जिसके द्वारा पूर्व संचित कर्मों का नाश होता है और नवीन कर्मों का बन्धन रुकता है, उसका नाम अध्ययन है ।

४—"जइ णं भंते ! समणेणं जाव[3] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव[4] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी से आर्य जंबू स्वामी ने इस प्रकार निवेदन किया—"भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर ने आठवें अंग अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किये हैं तो हे भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?"

१. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
२. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
३. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
४. प्रथम वर्ग, सूत्र २.

गौतम

५—"एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था । दुवालसजोयणा-यामा, नव-जोयण-वित्थिण्णा, धणवइ-मइ-निम्माया, चामीकर-पागारा, नानामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-मंडिया, सुरम्मा, अलकापुरी-संकासा, पमुदिय-पक्कोलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था । तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था । वण्णओ । सुरप्पिए नामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे, से णं एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, असोगवरपायवे ।"

(आर्य सुधर्मा स्वामी जंबू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—) "जंबू ! उस काल और उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी । वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वैश्रमण देव कुबेर के कौशल से निर्मित, स्वर्ण-प्राकारों (कोटों) से युक्त, पंचवर्ण के मणियों से जटित कंगूरों से सुशोभित थी और कुबेर की नगरी अलकापुरी सदृश प्रतीत होती थी । प्रमोद और क्रीडा का स्थान थी, साक्षात् देवलोक के समान देखने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी ।

उस द्वारका नगरी के बाहिर ईशान कोण में रैवतक नाम का पर्वत था । उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था । उस उद्यान का वर्णन औपपातिकसूत्र के वन-वर्णन के समान जान लेना चाहिए । वहाँ सुरप्रियनामक यक्ष का एक मंदिर था, वह बहुत प्राचीन था और चारों ओर से अनेकविध वृक्षसमुदाय से युक्त वनखंड से घिरा हुआ था । उस वनखंड के मध्य में एक सुन्दर अशोक वृक्ष था ।"

विवेचन—"बारवई"—इस पद का संस्कृतरूप द्वारवती होता है । यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है । वैदिक परंपरा में इसी को द्वारका कहते हैं । इस प्रकार द्वारवती तथा द्वारका ये दोनों शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं ।

इस सूत्र के अनुसार द्वारका नगरी "दुवालसजोयणायामा (द्वादशयोजनायामा) अर्थात् बारह योजन लम्बी थी । प्रस्तुत में योजन का माप "आत्मांगुल" से करना है । जिस काल में जो मनुष्य होते हैं उनके अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं । ९६ अंगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषों का एक कोस, तथा चार कोस का एक योजन होता है । इस तरह द्वारका नगरी की लम्बाई ४८ कोस की थी । ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र में द्वारका नगरी को बसाया गया था ।

'धणवइ-मइ-निम्माया' अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ, उसे धनपतिमति-निर्माता कहते हैं । प्रश्न होता है कि क्या मर्त्यलोक में कोई देव कुबेरादि नगरी का निर्माण करने आते हैं ?

इसका समाधान एक रहस्य में है—"जब यादव जरासंध प्रतिवासुदेव के आतंक से आतंकित हो गए और शौर्यपुर को छोड़कर समुद्र के समीप सौराष्ट्र में पहुँचे, तब नगरी के योग्य तथा सुरक्षित स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहाँ अट्ठम तप किया, धनपति वैश्रमण का आराधन किया ।

३—"जइ णं भंते ! समणेणं जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?"

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव[2] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

"गोयम-समुद्द-सागर-गंभीरे चेव होइ थिमिए य।
अयले कंपिल्ले खलु अक्खोभ-पसेणइ-विण्हू ॥"

(आर्य जंबू आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे)—"भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कथन किये हैं, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तद्कृशांग सूत्र के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किये हैं ?"

(जंबू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले)—"जंबू ! यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं। जैसे कि—

(१) गौतम, (२) समुद्र, (३) सागर, (४) गंभीर, (५) स्तिमित, (६) अचल, (७) काम्पिल्य, (८) अक्षोभ, (९) प्रसेनजित् और (१०) विष्णुकुमार।

विवेचन—सूत्र के अवान्तर विभाग को या ग्रन्थ के एक अंश को अध्ययन कहते हैं। अध्ययन शब्द की व्याख्या एक श्लोक में इस प्रकार की है—

अज्झप्परसाणयणं कम्माणं अवचओ उवचियाणं।
अणुवचओ च नवाणं, तम्हा अज्झयणमिच्छंति ॥

जिससे अध्यात्म—हृदय को शुभ ध्यान में स्थित किया जाता है, जिसके द्वारा पूर्व संचित कर्मों का नाश होता है और नवीन कर्मों का बन्धन रुकता है, उसका नाम अध्ययन है।

४—"जइ णं भंते ! समणेणं जाव[3] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव[4] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी से आर्य जंबू स्वामी ने इस प्रकार निवेदन किया—"भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर ने आठवें अंग अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किये हैं तो हे भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?"

---

१. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
२. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
३. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
४. प्रथम वर्ग, सूत्र २.

गौतम

५—"एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था। दुवालसजोयणा-यामा, नव-जोयण-वित्थिण्णा, धणवइ-मइ-निम्माया, चामीकर-पागारा, नानामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-मंडिया, सुरम्मा, अलकापुरी-संकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था। तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था। वण्णओ। सुरप्पिए नामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे, से णं एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, असोगवरपायवे।"

(आर्य सुधर्मा स्वामी जंबू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—) "जंबू ! उस काल और उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वैश्रमण देव कुबेर के कौशल से निर्मित, स्वर्ण-प्राकारों (कोटों) से युक्त, पंचवर्ण के मणियों से जटित कंगूरों से सुशोभित थी और कुबेर की नगरी अलकापुरी सदृश प्रतीत होती थी। प्रमोद और क्रीडा का स्थान थी, साक्षात् देवलोक के समान देखने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी।

उस द्वारका नगरी के बाहिर ईशान कोण में रैवतक नाम का पर्वत था। उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। उस उद्यान का वर्णन औपपातिकसूत्र के वन-वर्णन के समान जान लेना चाहिए। वहाँ सुरप्रियनामक यक्ष का एक मंदिर था, वह बहुत प्राचीन था और चारों ओर से अनेकविध वृक्षसमुदाय से युक्त वनखंड से घिरा हुआ था। उस वनखंड के मध्य में एक सुन्दर अशोक वृक्ष था।"

विवेचन—"बारवई"—इस पद का संस्कृतरूप द्वारवती होता है। यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है। वैदिक परंपरा में इसी को द्वारका कहते हैं। इस प्रकार द्वारवती तथा द्वारका ये दोनों शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं।

इस सूत्र के अनुसार द्वारका नगरी "दुवालसजोयणायामा (द्वादशयोजनायामा) अर्थात् बारह योजन लम्बी थी। प्रस्तुत में योजन का माप "आत्मांगुल" से करना है। जिस काल में जो मनुष्य होते हैं उनके अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं। ९६ अंगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषों का एक कोस, तथा चार कोस का एक योजन होता है। इस तरह द्वारका नगरी की लम्बाई ४८ कोस की थी। ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र में द्वारका नगरी को बसाया गया था।

'धणवइ-मइ-निम्माया' अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ, उसे धनपतिमति-निर्माता कहते हैं। प्रश्न होता है कि क्या मर्त्यलोक में कोई देव कुबेरादि नगरी का निर्माण करने आते हैं ?

इसका समाधान एक रहस्य में है—"जब यादव जरासंध प्रतिवासुदेव के आतंक से आतंकित हो गए और शौर्यपुर को छोड़कर समुद्र के समीप सौराष्ट्र में पहुँचे, तब नगरी के योग्य तथा सुरक्षित स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहाँ अट्ठम तप किया, धनपति वैश्रमण का आराधन किया।

आराधना से प्रसन्न हुए वैश्रमण देव प्रकट हो गए। तब कृष्ण महाराज ने उनको नगरी बसाने के लिये निवेदन किया। तदनन्तर धनपति देव ने आभियोगिक देवों द्वारा दिव्य योजनानुसार शीघ्र ही वहाँ नगरी बसा दी। नगरी के द्वार बहुत बड़े-बड़े थे, इस कारण इसका नाम द्वारवती रखा गया। आगे चलकर यही द्वारवती द्वारका कहलाने लगी।

इस द्वारका नगरी को सूत्रकार ने "अलकापुरीसंकासा" अर्थात् अलकापुरी सदृश कहा है। वैश्रमण देव की नगरी का नाम अलकापुरी है। यह अलकापुरी अद्वितीय सौन्दर्य वाली है। (द्वारका नगरी का निर्माण स्वयं कुबेर ने किया है।) वे अपनी नगरी की सभी विशेषताओं को द्वारका में ले आए थे, उसमें उन्होंने कोई न्यूनता नहीं रहने दी थी। अतः द्वारका को कुबेरनगरी से उपमित करना या उसे कुबेर नगरी के तुल्य बताना उचित ही है।

पासादीया आदि ४ शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं—हृदय में प्रमोद-प्रसन्नता पैदा करनेवाली नगरी 'पासादीया' है। जिस नगरी को देखदेखकर आंखें श्रान्ति-थकावट अनुभव न करें, निरन्तर देखने की ही उनमें लालसा बनी रहे, उसे 'दर्शनीया' कहते हैं। जिस नगरी की दीवारों पर राजहंस, चक्रवाक्, सारस, हाथी, महिष, मृग आदि के तथा जल में स्थित (विहार करते हुए) मगरमच्छ आदि जलीय प्राणियों के सुन्दर चित्र बने हुए हों अथवा जिस नगरी को एक बार देख लेने पर भी, उसे पुनः देखने के लिये दर्शक की इच्छा बनी रहती हो, उस नगरी को 'अभिरूपा' कहते हैं। जिस नगरी को जब भी देखो तब ही उस में देखने वाले को कुछ नवीनता प्रतिभासित हो, उस नगरी को 'प्रतिरूपा' कहते हैं।

६—तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ। महया० रायवण्णओ।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं, महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं, रुप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देविसाहस्सीणं अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं, ईसर जाव [तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ] सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्धभरहस्स य समत्थस्स[1] आहेवच्चं जाव [पोरेवच्चं भट्टित्तं सामित्तं महयरत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे, महयाऽऽहय-णट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-तालतुडिय-घण-मुयंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे] विहरइ।

उस द्वारका नगरी में कृष्ण नाम के वासुदेव राजा राज्य करते थे, वे महान् थे। (इनका विशेष वर्णन उववाई सूत्र से जान लेना चाहिए।) वे (वासुदेव श्रीकृष्ण) समुद्रविजय की प्रधानतावाले दश दशार्ह, दश पूज्यजन, बलदेव की प्रधानतावाले पाँच महावीर, प्रद्युम्न की प्रधानतावाले साढ़े तीन करोड़ राजकुमार, शांब की प्रधानतावाले ६० हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन की प्रधानता वाले १६ हजार राजा, रुक्मिणी की प्रधानतावाली १६ हजार देवियां-रानियां, अनंगसेना की प्रधानतावाली हजारों गणिकाएं, तथा और भी अनेकों ऐश्वर्यशाली, यावत् [तलवर, माडम्बिक,

१. पाठान्तर-'समंतस्स'—अंगसुत्ताणि-भाग ३, पृ. ५४३.
'सम्मत्तस्स'—सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल-जयपुर संस्करण पृ. १२.

कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति], सार्थवाह—इन सब पर तथा द्वारका एवं आधे भारतवर्ष पर आधिपत्य यावत् [पुरोवर्तित्व (आगेवानी), भर्तृत्व (पोषकता), स्वामित्व, महत्तरत्व (बड़प्पन) और आज्ञाकारक सेनापतित्व करते हुए—पालन करते हुए, कथा-नृत्य, गीतिनाट्य, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य, मृदंग को कुशल पुरुषों के द्वारा बजाये जाने से उठनेवाली महाध्वनि के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए] विचरते थे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में द्वारकाधीश कृष्ण महाराज के राज्य-वैभव का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण की राजधानी में राजयोग्य सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं और इनका राज्य आर्थिक, सामाजिक, सैनिक सभी दृष्टियों से सम्पन्न था।

'दसण्हं दसाराणं' इन पदों की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभयदेवसूरि कहते हैं—

'समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्तिमितः सागरस्तथा।
हिमवानचलश्चैव, धरणः पूरणस्तथा ॥ १ ॥

अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान्।
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती मद्री च विश्रुते ॥ २ ॥

दश च तेऽर्हाश्च-पूज्याः इति दशार्हाः।'

अर्थात्—कृष्ण महाराज के पिता वसुदेव दस भाई थे। (१) समुद्रविजय, (२) अक्षोभ्य, (३) स्तिमित, (४) सागर, (५) हिमवान्, (६) अचल, (७) धरण, (८) पूरण, (९) अभिचन्द्र, (१०) वसुदेव। ये दसों बड़े बली थे। समुद्रविजय इनमें सबसे बड़े थे और वसुदेव सबसे छोटे। इन के कुन्ती और माद्री ये दोनों बहिनें थीं।

'पजुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं'—अर्थात् साढे तीन करोड़ कुमार थे और इन में प्रद्युम्न प्रमुख थे।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि कुमारों की इतनी बड़ी संख्या क्या द्वारका नगरी में ही विद्यमान थी? या कुछ राजकुमार द्वारका में और कुछ द्वारका से बाहर रहते थे? इसका समाधान यह है कि सूत्रकार ने कुमारों की जो संख्या बतलाई है, वह केवल द्वारकानिवासी राजकुमारों की नहीं, प्रत्युत यह सभी राजकुमारों की है। महाराज कृष्ण के समस्त राज्य में इनका निवास था। उस समय कृष्ण महाराज का राज्य वैताढ्य पर्वत तक फैला हुआ था, अतः कुमारों की उक्त संख्या भारत वर्ष के तीनों खंडों में निवास करती थी।

सूत्रकार ने आगे चलकर 'उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं' ये पद दिये हैं। इनका अर्थ है—सोलह हजार राजा थे, इनके प्रमुख महाराज उग्रसेन थे। इन के राज्य भी तीनों खंडों में थे और तीनों खंडों में इनका निवास था।

सूत्रकार ने कुमारों की, राजाओं की तथा अन्य लोगों की संख्या का जो निर्देश किया है इसके पीछे यही भावना है कि कृष्ण महाराज के राज्य में ये सब लोग रहते थे और इन सब पर कृष्ण महाराज राज्य करते थे। जिस प्रकार आजकल जनगणना द्वारा जनता की संख्या का पता लगाया जाता है और देश के निवासियों की जाति, धर्म और भाषा आदि का बोध प्राप्त किया जाता है, ठीक इसी प्रकार उस समय वासुदेव कृष्ण के राज्य में कितने कुमार थे? कितने राजा थे? कितना सैनिक

दल था ? कितनी रानियाँ थीं ? कितनी गणिकाएं थीं ? आदि सभी बातों का सूत्रकार ने स्पष्ट उल्लेख किया है। इस का यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि सूत्रकार ने जिन लोगों का परिचय कराया है, वे सब द्वारका में ही रहा करते थे। 'दुद्दन्तसाहस्सीणं'—अर्थात् शत्रुओं द्वारा जिनका दमन न किया जा सके, जिन्हें पराजित न किया जा सके। महाराज कृष्ण के राज्य में ऐसे ६० हजार दुर्दान्त थे।

'बलवग्गसाहस्सीणं'—अर्थात् बल का अर्थ है सैनिक। समूह को भी वल कहते हैं। दोनों को मिलाकर अर्थ होगा—सैनिकसमूह। भाव यह है कि वासुदेव कृष्ण के पास ५६ हजार सैन्य-समूह था। महासेन उस सैन्य-समूह का प्रमुख था।

वासुदेव कृष्ण का राज्य तीन खंडों में था। इतने बड़े प्रदेश में ५६ हजार ही सैनिक कैसे हो सकते हैं ? तीनों खंडों की सुरक्षार्थ तो करोड़ों सैनिक अपेक्षित हैं। फिर सूत्रकार ने जो ५६ हजार सैनिक बताये इसका क्या कारण है ? इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि 'बलवग्ग' शब्द सैन्यसमूह का बोधक है। सैन्यसमूह का अर्थ है—सैनिकों का समुदाय, अतः सूत्रकार ने जो बलवर्ग शब्द दिया है यह सैनिकदलों—सैनिक टुकड़ियों का परिचायक है। फिर एक सैनिक दल में भले ही हजारों सैनिकों की संख्या हो। अतः यहाँ यही भाव निष्पन्न होता है कि कृष्ण महाराज के पास ५६ हजार सैनिक-समुदाय थे।

ईसर (ईश्वर) याने युवराज। तलवर—राजा के कृपापात्र को अथवा जिन्होंने राजा की ओर से उच्च आसन (पदवी विशेष) प्राप्त कर लिया है, ऐसे नागरिकों को तलवर कहते हैं। जिसके निकट दो-दो योजन तक कोई ग्राम न हो उस प्रदेश को मडम्ब कहते हैं, मडम्ब के अधिनायक को माडम्बिक कहा जाता है। कौटुम्बिक-कुटुम्बों के स्वामी को कौटुम्बिक और व्यापारी पथिकों के समूह के नायक को सार्थवाह कहते हैं।

'अद्धभरहस्स'—इस में दो पद हैं—एक अर्ध और दूसरा भरत। अर्द्ध आधे को कहते हैं, भरत का अर्थ है भारतवर्ष। भरतक्षेत्र का अर्द्ध चन्द्र जैसा आकार है। तीन ओर लवणसमुद्र और उत्तर में चुल्लहिमवन्त पर्वत है। अर्थात् लवणसमुद्र और चुल्लहिमवन्त पर्वत से उसकी सीमा बंधी हुई है। भारत के मध्य में वैताढ्य पर्वत है। इस से भरतक्षेत्र के दो भाग हो जाते हैं। वैताढ्य की दक्षिण ओर का दक्षिणार्ध भरत और उत्तर की ओर का उत्तरार्ध भरत है। चुल्लहिमवन्त पर्वत के ऊपर से निकलने वाली गंगा और सिन्धु नदियाँ वैताढ्य की गुफाओं से निकलकर लवणसमुद्र में मिलती हैं। इस से भरत के छह विभाग होते हैं। इन्हीं छह विभागों को छह खंड कहते हैं। चक्रवर्ती का राज्य इन छह खंडों में होता है और वासुदेव का तीन खंडों में अर्थात् अर्द्ध भरत में होता है। महाराज कृष्ण वासुदेव थे, अतः वे अर्द्ध भरत पर शासन कर रहे थे।

७—तत्थ णं बारवईए नयरीए अंधगवण्ही नामं राया परिवसइ। महया हिमवंत०[1] वण्णओ। तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले—

---

१. अंगसुत्ताणि-भाग ३, पृ. ५४३. में यह पाठ इस प्रकार है—
हिमवंत-[महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे] वण्णओ। [ ] इतना पाठ अधिक है।

सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाओ य ।
जोव्वण-पाणिग्गहणं, कण्णा वासा य भोगा य ।।[1]

नवरं गोयमो[2] **अट्ठण्हं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ ।**

उस द्वारका नगरी में अन्धकवृष्णि नाम का राजा निवास करता था । वह हिमवान्—हिमालय पर्वत की तरह महान् था । (उसकी ऋद्धि-समृद्धि का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है ।) अन्धकवृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी । कभी किसी समय वह धारिणी रानी अन्यत्र वर्णित (पुण्यवान् जन के योग्य) उत्तम शय्या पर शयन कर रही थी, जिसका वर्णन महाबल (के प्रकरण में वर्णित शय्या के) समान समझ लेना चाहिये । तत्पश्चात्—

स्वप्न-दर्शन, पुत्रजन्म, उसकी बाल-लीला, कलाज्ञान, यौवन, पाणिग्रहण, रम्य प्रासाद एवं भोगादि—(यह सब वर्णन भी महाबल जैसा ही समझना) । विशेष यह कि उस बालक का नाम गौतम रखा गया, उसका एक ही दिन में आठ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा दहेज में आठ-आठ प्रकार की वस्तुएं दी गईं ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में गौतम कुमार के गर्भ में आने से लेकर विवाह तथा विषयभोगों के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र में परमाराध्य भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में पहुँच कर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते हैं—

८—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे[3] **जाव [संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ, चउव्विहा देवा आगया । कण्हे वि णिग्गए । धम्मं सोच्चा "जं नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि । देवाणुप्पियाणं [अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि] एवं जहा मेहे जाव (तहा गोयमे वि) [सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ । करित्ता जेणामेव समणे भगवं अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता समणं भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ । करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—**

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य । से जहा नामए केई गाहावई आगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ, एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव मम वि एगे आया भंडे इट्ठे कंते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ । तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खियं ।

तए णं समणे भगवं अरिट्ठनेमी सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसीयव्वं तुयट्टियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं ।

---

१. यह गाथा अंगसुत्ताणि में नहीं है ।
२. M. C. Modi द्वारा सम्पादित अंतगड में 'गोयमो नामेणं' पाठ है ।
३. सूत्र नं. २ में प्रस्तुत पाठ पूर्ण किया गया है । यहां विहरइ हेतु अपूर्ण पाठ ब्राकेट में पूर्ण किया गया है ।

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सोच्चा णिसम्म सम्मं पडिवज्जइ। तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमइ] तए णं से गोयमे अणगारे जाए इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।

उस काल तथा उस समय श्रुत-धर्म का आरंभ करने वाले, धर्म के प्रवर्तक अरिष्टनेमि भगवान् यावत् [संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए] विचरण कर रहे थे। (जब वे द्वारका नगरी के बाहर उद्यान में विराजमान हुए, तब इनके समवसरण में) चार प्रकार के देव उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव भी वहाँ आये। तदनन्तर उनके दर्शन करने को गौतम कुमार भी तैयार हुए। जैसे मेघ कुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास गये थे वैसे ही गौतम कुमार भी भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में गए और धर्म का श्रवण किया। विशेष यह कि भगवान् अरिष्टनेमि से कहा—देवानुप्रिय ! मैं अपने मातापिता से पूछकर आपके पास दीक्षा ग्रहण करूंगा। जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास मेघ कुमार दीक्षित हुए थे यावत् (ठीक उसी प्रकार गौतम कुमार ने भी) [स्वयं ही पंचमुष्ठिक लोच किया। लोच करके जहाँ अरिष्टनेमि भगवान् थे वहाँ आये। आकर श्रमण भगवान् अरिष्टनेमि को तीन बार दाहिनी ओर से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दना-नमस्कार किया और कहा—

भगवन् ! यह संसार जरा और मरण से (जरा-मरण रूप अग्नि से) आदीप्त है, प्रदीप्त है। भगवन्, यह संसार आदीप्त और प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथापति घर में आग लग जाने पर, उस घर में जो अल्प भार वाली और बहुमूल्य वस्तु होती है उसे, ग्रहण करके स्वयं एक ओर चला जाता है। वह सोचता है कि "अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिए आगे-पीछे हित के लिए, सुख के लिए, क्षमा (समर्थता) के लिए, कल्याण के लिए और भविष्य में उपयोग के लिए होगा। इसी प्रकार मेरा भी यह एक आत्मा रूपी भांड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है—इस आत्मा को मैं निकाल लूँगा—जरा-मरण की अग्नि में भस्म होने से बचा लूँगा, तो यह संसार—जन्म-मरण का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूँ कि देवानुप्रिय ! (आप) स्वयं ही मुझे प्रव्रजित करें—मुनिवेष प्रदान करें, स्वयं ही मुझे मुंडित करें—मेरा लोच करें, स्वयं ही प्रतिलेखन आदि सिखावें, स्वयं ही सूत्र और अर्थ प्रदान करके शिक्षा दें, स्वयं ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल), चरण सत्तरी, करणसत्तरी, संयमयात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करें।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् अरिष्टनेमि ने गौतमकुमार को स्वयं ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वयं ही यावत् आचारगोचर आदि धर्म की शिक्षा दी कि—हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार—पृथ्वी पर युग मात्र दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार—निर्जीव भूमि पर खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार—भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार—सामायिक का उच्चारण करके, शरीर की प्रमार्जना करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार—वेदना आदि कारणों से निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार—हित मित और मधुर भाषण करना चाहिए। इस प्रकार—अप्रमत्त एवं सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय) जीव (पंचेन्द्रिय) और सत्त्व (शेष

एकेन्द्रिय) की रक्षा करके संयम का पालन करना चाहिए। इस विषय में तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् गौतमकुमार मुनि ने श्रमण भगवान् अरिष्टनेमि के निकट इस प्रकार का यह धर्म सम्बन्धी उपदेश सुनकर और हृदय में धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अंगीकार किया। वे भगवान् की आज्ञा के अनुसार गमन करते, उसी प्रकार खड़े रहते, उसी प्रकार बैठते, उसी प्रकार शयन करते, उसी प्रकार आहार करते और उसी प्रकार मधुर भाषण करते हुए प्रमाद और निद्रा का त्याग करके प्राणों, भूतों, जीवों और सत्वों की यतना करके संयम का आराधन करने लगे]। अनगार बन जाने पर गौतम निर्ग्रन्थ-प्रवचन को सन्मुख रखकर भगवान् की आज्ञाओं का पालन करते हुए विचरने लगे।

९—तए णं से गोयमे अण्णया कयाइं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव [छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं] अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं अरहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइं बारवईओ नयरीओ नंदणवणाओ पडिणिक्खमइ, बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। एवं जहा खंदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ। गुणरयणं पि तवोकम्मं तहेव फासेइ निरवसेसं। जहा खंदओ तहा चिंतेइ, तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरूहइ, बारस[1] वरिसाइं परियाए मासियाए संलेहणाए जाव [अप्पाणं झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे, केसलोए, बंभचेरवासे, अण्हाणगं, अच्छत्तयं, अणुवाहणयं, भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिंसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जंति तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं] सिद्धे-बुद्धे-मुत्ते-परिनिव्वाए-सव्वदुक्खपहीणे।

निक्षेप

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव[2] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

इसके पश्चात् गौतम अनगार ने अन्यदा किसी समय भगवान् अरिष्टनेमि के सान्निध्य में रहने वाले आचार, विचार की उच्चता को पूर्णतया प्राप्त स्थविरों के पास सामायिक से लेकर आचारांगादि ११ अंगों का अध्ययन किया यावत् [अध्ययन करके फिर अनेक उपवास, बेला, तेला,

१. कहीं-कहीं 'मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं परियाए' ऐसा पाठ है परन्तु इसमें जाव की पूर्ति बराबर नहीं बैठती अतः उल्लिखित पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है।

२. वर्ग १, सूत्र २.

चौला, पचौला, मासखमरण, अर्धमासखमरण आदि विविध प्रकार के तप से] आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। अरिहंत भगवान् अरिष्टनेमि ने अब द्वारका नगरी के नन्दनवन से विहार कर दिया और वे अन्य जनपदों में विचरण करने लगे।

तपस्या और शास्त्र-स्वाध्याय में तत्पर अनगार गौतम अवसर पाकर भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा में उपस्थित हुए। विधिपूर्वक वंदना, नमस्कार करने के अनन्तर उन्होंने भगवान् से निवेदन किया—

"भगवन् ! मेरी इच्छा है यदि आप आज्ञा दें तो मैं मासिकी भिक्षु-प्रतिमा (प्रतिज्ञा विशेष) की आराधना करूँ।" भगवान् से आज्ञा पाकर वे साधना में लीन हो गए। जैसे स्कन्धक मुनि ने साधना की वैसे ही मुनि गौतमकुमार ने भी बारह भिक्षुप्रतिमाओं का आराधन करके गुणरत्न नामक तप का भी वैसे ही आराधन किया। पूर्ण रूप से स्कन्धक की तरह ही चिंतन किया, भगवान् से पूछा तथा स्थविर मुनियों के साथ वैसे ही शत्रुंजय पर्वत पर चढ़े। १२ वर्ष की दीक्षा पर्याय पूर्ण कर एक मास की संलेखना द्वारा यावत् [आत्मा को आराधित किया। अनशन द्वारा साठ भोजनों का परित्याग कर, जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव-साधुवृत्ति, मुण्डभाव-द्रव्य से सिर को मुंडित करना, भाव से परिग्रह का त्याग करना, केश लोच अर्थात् बालों को हाथों से उखाड़ना, ब्रह्मचर्यवास, अस्नानक—स्नान न करना, अछत्रक—छत्र का प्रयोग न करना, उपानह्—जूते का उपयोग न करना, भूमिशय्या—भूमि पर शयन करना, फलकशय्या—तख्त पर शयन करना, परघरप्रवेश—दूसरों के घरों में भिक्षार्थ प्रवेश करना, लाभालाभ—किसी समय वस्तु का प्राप्त होना, किसी समय न होना, मानापमान—कहीं मान कहीं अपमान होना, दूसरों द्वारा की गई हीलना—अवहेलना, निंदा, खिंसना—लोगों के सामने जाति आदि का गुप्त रहस्य प्रकट करना, ताडना—मारना, गर्हा, निंदा, ऊँच-नीच नाना प्रकार के २२ परीषह इन्द्रियों के दुःखदायक उपसर्ग सहन करना [आदि किया जाता है, अन्त में उस प्रयोजन को सिद्ध कर लिया और अन्तिम श्वासों द्वारा] सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सकल कर्मजन्य सन्तापों से रहित एवं सब प्रकार के दुःखों से विमुक्त हो गए। श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में दीक्षा के अनन्तर गौतम अनगार की अध्ययनशीलता, तपोभावना, और सम्यक् आचरण से लेकर अन्तिमविधि कर सिद्ध पद की उपलब्धि तक का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

'तहारूवाणं थेराणं' अर्थात् तथारूप स्थविर। तथारूप का अर्थ है—शास्त्र में वर्णन किये गये आचार का पालन करने वाले और स्थविर का अर्थ है वृद्ध साधु। स्थानांग सूत्र में इसके तीन भेद बताए हैं—(१) वयः स्थविर—साठ वर्ष की आयु वाले, (२) सूत्र स्थविर—स्थानांग-समवायांग आदि अंग सूत्रों के ज्ञाता, (३) प्रव्रज्या-स्थविर-२० वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले साधु।

सामायिक के ५ अर्थ प्रसिद्ध हैं—(१) सामायिक चारित्र-सर्व सावद्य योगों से निवृत्ति, (२) श्रावक का नवम व्रत, देशविरति रूप सामायिक चारित्र, (३) सामायिक श्रुत, आचारांग आदि, (४) आवश्यक सूत्र का प्रथम अध्ययन और (५) द्रव्य लेश्या से उत्पन्न होने वाला परिणाम—अध्यवसाय।

प्रस्तुत अर्थों में "आवश्यक सूत्र का प्रथम अध्ययन" यह अर्थ अधिक अभीष्ट है। अतः मुनि गौतम ने सामायिक आदि से लेकर ११ अंगों का अध्ययन किया। अब प्रश्न होता है कि—ग्यारह

अंगों में अन्तकृद्दशांग का भी निर्देश किया गया है। इसके प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में श्री गौतम-कुमार का जीवन प्रस्तुत हुआ है। तो क्या वह गौतम कुमार यही था या अन्य ? यदि यही था तो उसने अन्तकृद्दशांग का अध्ययन कैसे किया ? जिसका निर्माण ही बाद में हुआ है ?

इसका समाधान इस प्रकार हो सकता है कि प्रथम अध्ययन में जिस गौतम कुमार का वर्णन किया गया है यही हमारे द्वारकाधीश महाराज अन्धकवृष्णि के सुपुत्र हैं। अब रही बात पढ़ने की। इसका समाधान यह है कि भगवान् अरिष्टनेमि के गणधर अनुपम ज्ञानादि गुणों के धारक थे। उनकी अनेकों वाचनाएं थीं, जो कि इन्हीं पूर्वोक्त अंगों एवं उपांगों के नाम से प्रसिद्ध थीं। प्रत्येक में विषय भिन्न-भिन्न होता था और उनका अध्ययन-क्रम भी विभिन्न ही होता था। वर्तमान काल में जो वाचना उपलब्ध हो रही है, वह भगवान् महावीर के पट्टधर श्रद्धेय श्रीसुधर्मा स्वामी की है। गौतम-कुमार ने जो एकादश अंग पढ़े थे वे तत्कालीन किसी गणधर की वाचना के ११ अंग थे। वर्तमान में उपलब्ध वाचनावाले अंगशास्त्रों का उन्होंने अध्ययन नहीं किया। यह वाचना तो उस समय में थी ही नहीं, अतः इस वाचना के पढ़ने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

आचार्य अभयदेव सूरि ने भगवती सूत्र की व्याख्या में स्कन्धक कुमार के प्रसंग को लेकर ऐसी ही आशंका उठाकर उसका जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह मननीय एवं प्रस्तुत प्रकरण में उत्पन्न शंका के समाधान के लिये पठनीय है—

'एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ'—इह कश्चिदाह-नन्वनेन स्कन्धकचरितात् प्रागेवैकादशांग-निष्पत्तिरवसीयते, पंचमांगान्तर्भूतं च स्कन्धकचरितमुपलभ्यते, इति कथं न विरोधः ? उच्यते-श्रीमन्-महावीर-तीर्थे किल नव वाचनाः। तत्र च सर्ववाचनासु स्कन्धक-चरितात् पूर्वकाले ये स्कन्धकचरिता-भिधेया अर्थास्ते चरितान्तरद्वारेण प्रज्ञाप्यन्ते, स्कन्धकचरितोत्पत्तौ च सुधर्मस्वामिना जंबूनामानं स्वशिष्यमंगीकृत्याधिकृतवाचनायामस्यां स्कन्धकचरितमेवाश्रित्य तदर्थप्ररूपणा कृतेति न विरोधः। अथवा सातिशयादित्वात् गणधराणामनागतकाल-भाविचरित—निबन्धनमदुष्टमिति। भाविशिष्य-सन्तानापेक्षया अतीतकालनिर्देशोऽप्यदुष्ट इति।[1]

अर्थात्—यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्कन्धकचरित से पहले ही ११ अंगों का निर्माण हो चुका था। स्कन्धकचरित पंचम अंग (भगवतीसूत्र) में उपलब्ध होता है। तब स्कन्धक ने ११ अंग पढ़े, इसका क्या अर्थ हुआ ? क्या उसने अपना ही जीवन पढ़ा ? इसका उत्तर इस प्रकार है—

भगवान् महावीर के तीर्थशासन में नौ वाचनाएं थी। प्रत्येक वाचना में स्कन्धक के जीवन का अर्थ (शिक्षारूप प्रयोजन) समानरूप से अवस्थित रहता था। अन्तर केवल इतना होता था कि जीवन के नायक के सभी साथी भिन्न-भिन्न होते थे। भाव यह है कि जो शिक्षा स्कन्धक के जीवन से मिलती है उसी शिक्षा को देने वाले अन्य जीवन-चरितों का संकलन तत्कालीन वाचनाओं में मिलता था। सुधर्मास्वामी ने अपने शिष्य जंबू स्वामी को लक्ष्य करके अपनी इस वाचना में स्कन्धक के जीवनचरित से ही उस अर्थ की प्ररूपणा की है, जो अर्थ अन्य वाचनाओं में गर्भित था, अतः यह स्पष्ट है कि स्कन्धक ने जो अंगादि शास्त्र पढ़े थे, वे सुधर्मास्वामी की वाचना के नहीं थे।

---

१. भगवतीसूत्र-शतक-२, उद्देशक-१, सूत्र ९३.

दूसरी बात यह भी हो सकती है कि गणधर महाराज अतिशय (ज्ञान विशेष) के धारक होते हैं, इसलिये उन्होंने भविष्य में होने वाले चरितों का भी संकलन कर दिया। इसके अतिरिक्त भावी शिष्यपरम्परा की अपेक्षा से अतीत काल का निर्देश भी दोषयुक्त नहीं कहा जा सकता।

'चउत्थं जाव भावेमाणे' में उपयुक्त चतुर्थ शब्द व्रत—एक उपवास का बोधक है, तथा 'जाव' अर्थात् यावत् और भावेमाणे का अर्थ है—भावयन्-वासयन्—अर्थात् अपने जीवन में उसका प्रयोग करता हुआ।

'मासियं भिक्खुपडिमं' का अर्थ है मासिकी भिक्षुप्रतिमा। प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा। भिक्षु की प्रतिज्ञा को भिक्षु-प्रतिमा कहते हैं। ये प्रतिमाएं बारह होती हैं। उनका विस्तृत विवेचन दशाश्रुत-स्कन्ध में किया गया है।

इस प्रतिमा का धारक साधु एक अन्न की और एक पानी की दत्ति (दाता द्वारा दिए जाने वाले अन्न और पानी की अखण्डधारा दत्ति कहलाती है।) लेता है। जहां एक व्यक्ति के लिये भोजन बना है, वहां से भोजन लेता है, गर्भवती या छोटे बच्चे की मां के लिये बनाया गया भोजन वह नहीं लेता है। दुग्धपान छुड़वाकर भिक्षा देने वाली स्त्री तथा अपने आसन से उठकर भोजन देने वाली आसन्नप्रसवा स्त्री से भोजन नहीं लेता। जिसके दोनों पैर देहली के भीतर हों या बाहर हों उससे आहार नहीं लेता। दिन के आदि, मध्य और चरम इन तीन भागों में से एक भाग में वह भिक्षा को जाता है। परिचित स्थान पर वह एक रात रहता है, अपरिचित स्थान पर एक या दो रातें ठहर जाता है, वह (१) याचनी-आहार की याचना करना, (२) पृच्छनी-मार्ग पूछना, (३) अनुज्ञापनी-स्थान आदि के लिये आज्ञा लेना, (४) प्रश्नों का उत्तर देना, ये चार भाषाएं बोलता है। वह (१) अधः आराम गृह—जिसके चारों ओर बाग हो, (२) अधोविकट गृह—चारों ओर से खुला हो, ऊपर से ढका हो, (३) अधोवृक्ष मूलगृह—वृक्ष का मूल या वहाँ पर बना स्थान, इन स्थानों पर स्वामी की आज्ञा लेकर ठहर सकता है। इन स्थानों में कोई आग लगा दे तो, यह मुनि जीवन की सुरक्षा के लिये स्वयं स्थान से बाहर नहीं निकलता। विहार में यदि पांव में कांटा लग जाए तो उसे नहीं निकालता, आंखों में धूल पड़ जाए तो उसको भी दूर नहीं करता। जहाँ सूर्य अस्त हो जाए वहीं ठहर जाता है। शरीरशुद्धि को छोड़कर जल का प्रयोग नहीं करता। विहार के समय यदि सामने कोई हिंसक जीव आए तो डरकर पीछे नहीं हटता। यदि कोई जीव उसे देखकर डरता हो तो वह एक ओर हो जाता है। शीत-निवारण के लिये गरम स्थानों या वस्त्रों किंवा तथारूप वस्तुओं का सेवन नहीं करता। गरमी का परिहार करने के लिये शीत स्थान में नहीं जाता। इस विधि से मासिकी प्रतिमा का पालन होता है। इसका समय एक मास का है। इस प्रकार साधु के अभिग्रह विशेष का नाम भिक्षु-प्रतिमा है। पहली मासिकी, दूसरी द्वैमासिकी, तीसरी त्रैमासिकी, चौथी चातुर्मासिकी पांचवीं पाञ्चमासिकी छठी षाण्मासिकी और सातवीं साप्तमासिकी कहलाती हैं। पहली प्रतिमा में अन्न-पानी की एक दत्ति, दूसरी में दो, तीसरी में तीन, चौथी में चार, पांचवीं में पांच, छट्ठी में छह, सातवीं में सात दत्तियां ली जाती हैं। आठवीं प्रतिमा का समय सात दिन-रात है। नवमी का समय भी सात दिन-रात है। आठवीं में चौविहार उपवास करना होता है। नवमी में चौविहार बेले-बेले पारणा करना होता है। समय सात दिवस का है। दसवीं का समय भी सात दिन-

रात का होता है। इसमें चौविहार तेले-तेले पारणा करना होता है। ग्यारहवीं प्रतिमा का समय एक अहोरात्र है। बारहवीं प्रतिमा केवल एक रात्रि की है। इसका आराधन चौविहार तेले से होता है। इन सभी प्रतिमाओं का आराधन श्रीगौतम मुनि जी ने किया था।

'गुणरयणं पि तवोकम्मं' का अर्थ है—गुणरत्न तपः कर्म। तपों के नाना प्रकारों में गुणरत्न भी एक प्रकार का तप है। इसे 'गुण-रत्न-संवत्सर तप' भी कहते हैं। यह तप सोलह महीनों में सम्पन्न होता है। जिस तप में गुण रूप रत्नों वाला सम्पूर्ण वर्ष विताया जाय वह तप ''गुण-रत्न संवत्सर' तप कहलाता है। इस तप में सोलह मास लगते हैं। जिसमें से ४०७ दिन तपस्या के और ७३ दिन पारणा के होते हैं। यथा—

पण्णरस वीस चउव्वीस चेव चउव्वीस पण्णवीसा य।
चउव्वीस एक्कवीसा, चउवीसा सत्तवीसा य ॥ १ ॥
तीसा तेतीसा वि य चउव्वीस छव्वीस अट्ठवीसा य।
तीसा वत्तीसा वि य सोलसमासेसु तवदिवसा ॥ २ ॥
पण्णरस दसट्ठ छ पंच चउर पंचसु य तिण्णि तिण्णि त्ति।
पंचसु दो दो य तहा सोलसमासेसु पारणगा ॥ ३ ॥

अर्थात्—पहले मास में पन्द्रह, दूसरे मास में बीस, तीसरे मास में चौबीस, चौथे मास में चौबीस, पांचवे मास में पच्चीस, छट्ठे मास में चौबीस, सातवें मास में इक्कीस, आठवें मास में चौबीस, नौवें मास में सत्ताईस, दसवें मास में तीस, ग्यारहवें मास में तैंतीस, बारहवें मास में चौबीस, तेरहवें मास में छब्बीस, चौदहवें मास में अट्ठाईस, पन्द्रहवें मास में तीस और सोलहवें मास में बत्तीस दिन तपस्या के होते हैं। ये सब मिलाकर ४०७ दिन तपस्या के होते हैं। पारणा के दिन इस प्रकार हैं—

पहले मास में पन्द्रह, दूसरे मास में दस, तीसरे मास में आठ, चौथे मास में छह, पांचवें मास में पांच, छट्ठे मास में चार, सातवें मास में तीन, आठवें मास में तीन, नौवें मास में तीन, दसवें मास में तीन, ग्यारहवें मास में तीन, बारहवें मास में दो, तेरहवें मास में दो, चौदहवें मास में दो, पन्द्रहवें मास में दो, सोलहवें मास में दो दिन पारणे के होते हैं। ये सब मिलाकर ७३ दिन पारणा के होते हैं। तपस्या के ४०७ और पारणा के ७३ ये दोनों मिलाकर ४८० दिन होते हैं अर्थात् सोलह महीनों में यह तप पूर्ण होता है। इस तप में, किसी महीने में तपस्या और पारणा के दिन मिलाकर तीस से अधिक हो जाते हैं और किसी मास में तीस से कम रह जाते हैं, किन्तु कम और अधिक की एक दूसरे में पूर्ति कर देने से तीस की पूर्ति हो जाती है, इस तरह से यह तप बराबर सोलह मास में पूर्ण हो जाता है।

संक्षेप में इस तप के अन्तर्गत पहले मास में एकान्तर उपवास किया जाता है, दूसरे मास में बेले-बेले पारणा करना होता है, तीसरे महीने में तेले-तेले पारणा करना पड़ता है। इसी प्रकार बढ़ाते हुए सोलहवें महीने में सोलह-सोलह उपवास करके पारणा किया जाता है। इस तप में दिन को उत्कुटुक आसन में बैठकर सूर्य की आतापना ली जाती है और रात्रि को वस्त्ररहित वीरासन में बैठकर ध्यान लगाना होता है। गुणरत्नसंवत्सर तप का यन्त्र भी देखने में आता है, जो इस प्रकार है—

तप दिन		पारणा दिन	सर्व-दिन
३२	१६ १६	२	३४
३०	१५ १५	२	३२
२८	१४ १४	२	३०
२६	१३ १३	२	२८
२४	१२ १२	२	२६
३३	११ ११ ११	३	३६
३०	१० १० १०	३	३३
२७	९ ९ ९	३	३०
२४	८ ८ ८	३	२७
२१	७ ७ ७	३	२४
२४	६ ६ ६ ६	४	२८
२५	५ ५ ५ ५ ५	५	३०
२४	४ ४ ४ ४ ४ ४	६	३०
२४	३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३	८	३२
२०	२ २ २ २ २ २ २ २ २ २	१०	३०
५	१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	१५	३०

संलेहणाए—शव्द का अर्थ होता है—अन्तिम समय में किया जाने वाला शरीर और कषाय आदि को कृश करने वाला तप-विशेष ।

२–१० अज्झयणाणि

१०—एवं जहा गोयमे तहा सेसा। वण्ही पिया, धारिणी माता, समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले, कंपिल्ले, अक्खोभे, पसेणति, विण्हुए, एए एगगमा। पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता।

२-१० अध्ययन

मूलार्थ—सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जंबू से कहा—"हे जंबू ! मोक्ष को प्राप्त भगवान् महावीर ने आठवें अंतगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययनों का यह अर्थ कहा है। जिस प्रकार गौतम का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शेष समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु, इन नव अध्ययनों का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। सबके पिता अन्धकवृष्णि थे। माता धारिणी थी। सब का वर्णन एक जैसा है। इस प्रकार दस अध्ययनों के समुदाय रूप प्रथम वर्ग का वर्णन किया गया है।"

बीओ वग्गो

उत्क्षेप

१—"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगड़दसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता ।

संगहणी-गाहा

अक्खोभसागर खलु समुद्दहिमवंतअचल नामे य ।
धरणे य पूरणे वि य अभिचंदे चेव अट्ठमए ।।

अक्षोभादि-पद

जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्मं । सोलसवासाइं परिआओ । सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए सिद्धी ।

आर्य जंबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा—हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अंतगड-दशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो द्वितीय वर्ग के कितने अध्ययन फरमाये हैं ?

सुधर्मा स्वामी इसका समाधान करते हुए बोले—हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा के द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन फरमाये हैं। उस काल और उस समय में द्वारका नाम की नगरी थी। महाराज वृष्णि राज्य करते थे। रानी का नाम धारिणी था। उनके आठ पुत्र थे—

(१) अक्षोभकुमार, (२) सागरकुमार, (३) समुद्रकुमार, (४) हैमवन्तकुमार, (५) अचल-कुमार, (६) धरणकुमार, (७) पूर्णकुमार, (८) अभिचन्द्रकुमार। जैसे—प्रथम वर्ग में गौतम कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इनके आठ अध्ययनों का वर्णन भी समझ लेना चाहिए। इन्होंने भी गुणरत्न तप का आराधन किया और १६ वर्ष का संयम पालन करके अन्त में शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना द्वारा सिद्धिपद प्राप्त किया।

तृतीय वर्ग

प्रथम अध्ययन : अनीयस

उत्क्षेप

१—जइ णं तच्चस्स। उक्खेवओ[1]। एवं खलु जंबू! तच्चस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) अणीयसे, (२) अणंतसेणे, (३) अणिहय, (४) विऊ, (५) देवजसे, (६) सत्तुसेणे, (७) सारणे, (८) गए, (९) सुमुहे, (१०) दुम्मुहे, (११) कूवए, (१२) दारुए, (१३) अणादिट्ठी।

"जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं तच्चस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तच्चस्स णं भंते! वग्गस्स पढम-अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते?"

अणीयसादि-पद

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णामं नयरे होत्था। वण्णओ। तस्स णं भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए सिरिवणे णामं उज्जाणे होत्था। वण्णओ। जियसत्तू राया। तत्थ णं भद्दिलपुरे णयरे नागे नामं गाहावई होत्था। अड्ढे जाव [दित्ते, वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहुधन-बहुजायरूव-रयए, आओगप्पओगसंपउत्ते विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए बहुजणस्स] अपरिभूए। तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा-नामं भारिया होत्था। सूमाल-जाव [पाणि-पाया अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेआ माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगी ससि-सोमाकार-कंत-पिय-दंसणा] सुरूवा।

मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा के तृतीय वर्ग के १३ अध्ययन फरमाये हैं—जैसे कि—

(१) अनीयस कुमार, (२) अनन्तसेन कुमार, (३) अनिहत कुमार, (४) विद्वत् कुमार, (५) देवयश कुमार, (६) शत्रुसेन कुमार, (७) सारण कुमार, (८) गज कुमार, (९) सुमुख कुमार, (१०) दुर्मुख कुमार, (११) कूपक कुमार, (१२) दारुक कुमार, (१३) अनादृष्टि कुमार।

भगवन्! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अन्तगडदशा के १३ अध्ययन बताये हैं तो भगवन्! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है?

अनीयसादि-पद—सुधर्मा स्वामी बोले—हे जंबू! उस काल और उस समय में भद्दिलपुर

---

१. उत्क्षेप पद पूर्ववत् समझ लेना।

नामक नगर था। उसके ईशानकोण में श्रीवननामक उद्यान था। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगर में नाग नाम का गाथापति रहता था। वह अत्यन्त समृद्धिशाली यावत् धनी तेजस्वी विस्तृत और विपुल भवनों, शय्याओं, आसनों, यानों और वाहनोंवाला था तथा सुवर्ण रजत आदि धन की बहुलता से युक्त था। वह अर्थलाभ के उपायों का सफलता से प्रयोग करता था। भोजन करने के अनन्तर भी उसके यहां बहुतसा अन्न बाकी बच जाता था। उसके घर में दास-दासी आदि और गाय-भैंस तथा बकरी आदि पशु थे, और वह बहुतों से भी पराभव को प्राप्त नहीं होता था। उस नाग गाथापति की सुलसा नाम की भार्या थी। वह अत्यन्त सुकोमल हाथ-पैरों वाली थी। उसकी पांचों इन्द्रियाँ और शरीर खामियों से रहित और परिपूर्ण था। वह (स्वस्तिक आदि) लक्षण, (तिल मषादि) व्यंजन और गुणों से युक्त थी। माप, भार और आकार विस्तार से परिपूर्ण और समस्त सुन्दर अंगों वाला उसका शरीर था। उसकी आकृति चन्द्र के समान सौम्य और दर्शन कान्त और प्रिय था। इस प्रकार उसका रूप बहुत सुन्दर था।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में इस वर्ग के अध्ययनों का और प्रथम अध्ययन में प्रतिपाद्य अनीयस-कुमार के माता-पिता का वर्णन है।

२—तस्स णं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसे नामं कुमारे होत्था। सूमाले जाव [अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरे, लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माणप्पमाण-पडिपुण्ण-सुजायसव्वंगसुंदरंगे ससिसोमागारे कंते पियदंसणे] सुरूवे पंचधाइपरिक्खित्ते जहा दढपइण्णे जाव [खीरधाईए मंडणधाईए मज्जणधाईए अंकधाईए कीलावणधाईए, बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं वडभियाहिं बब्बराहिं लासियाहिं लाउसियाहिं दामिलीहिं सिंहलीहिं मुरंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं णाणादेसीविदेसपरिमंडियाहिं इंगियचिंतियपत्थियवियाणियाहिं सदेसणेवत्थगहियवेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवालतरुणिवंदपरियालपरिवुडे वरिसधरकंचुइमहयरवंद-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे, परिगिज्जमाणे, चालिज्जमाणे, उवलालिज्जमाणे, रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परिमिज्जमाणे परिमिज्जमाणे णिव्वायणिव्वाघायंसि] गिरिकंदरमल्लीणे व चंपगपायवे सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

तए णं तं अणीयसं कुमारं सातिरेगअट्ठवासजायं अम्मापियरो कलायरियस्स उवणेंति जाव [तए णं से कलायरिए अणीयसं कुमारं लेहाइयाओ गणितप्पहाणाओ सउणिरुतपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अ अत्थओ अ करणओ य सेहावेइ, सिक्खावेइ।

तं जहा—(१) लेहं (२) गणियं (३) रूवं (४) नट्टं (५) गीयं (६) वाइयं (७) सरगयं (८) पोक्खरगयं (९) समतालं (१०) जूयं (११) जणवायं (१२) पासयं (१३) अट्ठावयं (१४) पोरेकच्चं (१५) दगमट्टियं (१६) अन्नविहिं (१७) पाणविहिं (१८) वत्थविहिं (१९) विलेवणविहिं (२०) सयणविहिं (२१) अज्जं (२२) पहेलियं (२३) मागहियं (२४) गाहं (२५) गीइयं (२६) सिलोयं (२७) हिरण्णजुत्तिं (२८) सुवण्णजुत्तिं (२९) चुन्नजुत्तिं (३०) आभरणविहिं (३१) तरुणीपडिकम्मं (३२) इत्थिलक्खणं (३३) पुरिसलक्खणं (३४) हयलक्खणं (३५) गयलक्खणं (३६) गोणलक्खणं (३७) कुक्कुडलक्खणं (३८) छत्तलक्खणं (३९) डंडलक्खणं (४०) असि-लक्खणं (४१) मणिलक्खणं (४२) कागणिलक्खणं (४३) वत्थुविज्जं (४४) खंधारमाणं (४५) नगरमाणं (४६) वूहं (४७) पडिवूहं (४८) चारं (४९) पडिचारं (५०) चक्कवूहं (५१)

गरुलवूहं (५२) सगडवूहं (५३) जुद्धं (५४) निजुद्धं (५५) जुद्धातिजुद्धं (५६) अट्ठिजुद्धं (५७) मुट्ठिजुद्धं (५८) वाहुजुद्धं (५९) लयाजुद्धं (६०) ईसत्थं (६१) छरुप्पवायं (६२) धणुव्वेयं (६३) हिरन्नपागं (६४) सुवन्नपागं (६५) सुत्तखेडं (६६) वट्टखेडं (६७) नालियाखेडं (६८) पत्तच्छेज्जं (६९) कटगछेज्जं (७०) सजीवं (७१) निज्जीवं (७२) सउणिरुअमिति ।

तए णं से कलायरिए अणीयसं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सिहावेइ, सिक्खावेइ, सिहावेत्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेइ ।

तए णं अणीयसकुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं मधुरेहिं वयणेहिं विपुलेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति । दलइत्ता पडिविसज्जेन्ति ।

तए णं से अणीयसे कुमारे बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीइरई गंधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही वाहुजोही बाहुप्पमद्दी] अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

उस नाग गाथापति का पुत्र सुलसा भार्या का आत्मज अनीयस नामक कुमार था । (वह) सुकोमल था यावत् उसकी पाँचों इन्द्रियाँ पूर्ण एवं निर्दोष थीं । उसका शरीर विद्या, धन और प्रभुत्व आदि के सूचक सामुद्रिक लक्षणों, मस्सा-तिलादि व्यंजनों और विनय, सुशीलता आदि गुणों से युक्त था । मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण एवं अंगोपांग-गत सौन्दर्य से परिपूर्ण था । चन्द्रमा के समान सौम्य (शान्त), कान्त, मनोहर, प्रियदर्शन और पाँच धायमाताओं से परिरक्षित वह दृढप्रतिज्ञ कुमार की तरह यावत् १—क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली धाय २—मंडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय, ३—मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय, ४—क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और ५—अंकधात्री—गोद में लेने वाली धाय; इनके अतिरिक्त वह अनीयस कुमार अन्यान्य कुब्जा (कुबड़ी), चिलातिका (चिलात-किरात नामक अनार्य देश में उत्पन्न), वामन (बौनी), वडभी (बड़े पेट वाली), बर्बरी (बर्बर देश में उत्पन्न), बकुश देश की, योनक देश की, पल्हविक देश की, ईसिनिक, धौरुकिन ल्हासक देश की, लकुस देश की, द्रविड देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, वहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की, इस प्रकार नाना देशों की परदेश—अपने देश से भिन्न राजगृह, को सुशोभित करने वाली, इंगित (मुखादि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देश के वेष को धारण करने वाली, निपुणों में भी अतिनिपुण, विनययुक्त दासियों के द्वारा तथा स्वदेशीय दासियों द्वारा और वर्षधरों (प्रयोग द्वारा नपुंसक बनाये हुए पुरुषों), कंचुकियों और महत्तरकों (अन्तःपुर के कार्य की चिन्ता रखने वालों) के समुदाय से घिरा रहने लगा । वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ में जाता, एक की गोद से दूसरे की गोद में जाता, गा-गा कर बहलाया जाता, उंगली पकड़ कर चलाया जाता, क्रीड़ा आदि से लालन-पालन किया जाता एवं रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित) गिरिगुफा में स्थित चम्पक वृक्ष के समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा ।

तत्पश्चात् अनीयस कुमार को आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र वाला हुआ जानकर माता-पिता ने उसे कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्य ने अनीयस कुमार को गणित जिनमें प्रधान है ऐसी लेख आदि शकुनिरुत (पक्षियों के शब्द) तक की वहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

वे कलाएँ इस प्रकार हैं—(१) लेखन, (२) गणित, (३) रूप वदलना, (४) नाटक, (५) गायन, (६) वाद्य वजाना, (७) स्वर जानना, (८) वाद्य सुधारना, (९) समान ताल जानना (१०) जुआ खेलना (११) लोगों के साथ वादविवाद करना (१२) पासों से खेलना (१३) चौपड़ खेलना (१४) नगर की रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को संस्कार करके शुद्ध करना एवं उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र वनाना, रंगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तु को पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या वनाना, शयन करने की विधि जानना आदि (२१) आर्या छंद को पहचानना और वनाना (२२) पहेलियाँ वनाना और बूझना (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा में गाथा आदि वनाना (२४) प्राकृत भाषा में गाथा आदि वनाना (२५) गीति छंद वनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप छंद) वनाना (२७) सुवर्ण वनाना उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२८) नई चांदी वनाना, उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२९) चूर्ण—गुलाव अवीर आदि वनाना और उसका उपयोग करना (३०) गहने घड़ना, पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना-प्रसाधन करना (३२) स्त्री के लक्षण जानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण जानना (३६) गाय वैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गा के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जाना (३९) दंड-लक्षण जाना (४०) खड्ग-लक्षण जानना (४१) मणि के लक्षण जानना (४२) काकणी रत्न के लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या—मकान दूकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेना के पड़ाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर वसाने आदि की कला (४६) व्यूह-मोर्चा वनाना (४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सेनासंचालन करना (४९) प्रतिचार—शत्रुसेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना (५०) चक्रव्यूह—चाक के आकार में मोर्चा वनाना (५१) गरुड़ के आकार का व्यूह वनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि से) युद्ध करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) वाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०) वहुत को थोड़ा और थोड़े को वहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि वनाना (६२) धनुष-वाण संबंधी कौशल होना (६३) चांदी का पाक वनाना (६४) सोने का पाक वनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कड़ा कुंडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक घूक आदि पक्षियों की वोली पहचानना।

तत्पश्चात् वह कलाचार्य अनीयस कुमार को गणित प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त वहत्तर कलाएँ सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है। सिद्ध करवा कर और सिखला कर माता-पिता के पास ले जाता है।

तव अनीयस कुमार के माता-पिता ने कलाचार्य का मधुर वचनों से तथा विपुल वस्त्र, गंध

माला और अलंकारों से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विदा किया।

तब अनीयसकुमार बहत्तर कलाओं में पंडित हो गया। उसके नौ अंग—दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्था के कारण जो सोये-से थे—अव्यक्त चेतना वाले थे, वे जागृत से हो गये। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो गया। वह गीति में प्रीति वाला, गीत और नृत्य में कुशल हो गया। वह अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया। अपनी बाहुओं से विपक्षी का मर्दन करने में समर्थ हो गया। भोग भोगने का सामर्थ्य उसमें आ गया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में अनीयस कुमार के शैशव तथा शैक्षणिक जीवन का उल्लेख करके अब सूत्रकार उसके अग्रिम जीवन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

३—तए णं तं अणीयसं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसियाणं [सरिव्वयाणं सरित्तयाणं सरिसलावण्ण-रूप-जोव्वण-गुणोववेयाणं सरिसए-हिंतो इब्भकुलेहिंतो आणिल्लियाणं] बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेन्ति।

तए णं से नागे गाहावई अणीयसस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तंजहा-बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जहा महाबलस्स जाव [बत्तीसं सुवण्णकोडीओ, मउडे मउडप्पवरे, बत्तीसं कुंडलजुए कुंडलजुयप्पवरे, बत्तीसे हारे हारप्पवरे, बत्तीसं अद्धहारे अद्धहारप्पवरे, बत्तीसं एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एवं मुत्तावलीओ, एवं कणगावलीओ, एवं रयणावलीओ, बत्तीसं कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एवं तुडियजोए, बत्तीसं खोमजुयलाइं खोमजुयप्पवराइं, एवं वडगजुयलाइं, एवं पट्टजुयलाइं, एवं दुगुल्लजुयलाइं बत्तीसं सिरीओ, बत्तीसं हिरीओ, बत्तीसं धिईओ, कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ, बत्तीसं णंदाइं, बत्तीसं भद्दाइं, बत्तीसं तले तलप्पवरे, सव्वरयणामए, णियगवरभवणकेऊ बत्तीसं झए झयप्पवरे, बत्तीसं वये वयप्पवरे, दसगोसाहस्सिएणं वएणं, बत्तीसं णाडगाइं णाडगप्पवराइं बत्तीसबद्धेणं णाडएणं, बत्तीसं आसे आसप्पवरे, सव्वरयणामए, सिरिघरपडिरूवए, बत्तीसं हत्थी हत्थिप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए बत्तीसं जाणाइं जाणप्पवराइं, बत्तीसं जुगाइं जुगप्पवराइं, एवं सिवियाओ, एवं संदमाणीओ, एवं गिल्लीओ थिल्लीओ, बत्तीसं वियडजाणाइं वियडजाणप्पवराइं, बत्तीसं रहे पारिजाणिए बत्तीसं रहे संगामिए, बत्तीसं आसे आसप्पवरे, बत्तीसं हत्थी हत्थीप्पवरे, बत्तीसं गामे गामप्पवरे दसकुलसाहस्सिएणं गामेणं, बत्तीसं दासे दासप्पवरे, एवं चेव दासीओ, एवं किंकरे, एवं कंचुइज्जे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए, बत्तीसं सोवण्णिए, ओलंबणदीवे, बत्तीसं रूप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीसं सुवण्णरूप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीसं सोवण्णिए उक्कंचणदीवे, बत्तीसं पंचरदीवे, एवं चेव तिण्णि वि, बत्तीसं सोवण्णिए थाले, बत्तीसं रूप्पमए थाले, बत्तीसं सुवण्णरूप्पमए थाले, बत्तीसं सोवण्णियाओ पत्तीओ ३, बत्तीसं सोवण्णियाइं थासयाइं ३, बत्तीसं सोवण्णियाइं मल्लगाइं ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ तालियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ कावइआओ, बत्तीसं सोवण्णिए अवएडए ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ अवयक्काओ ३, बत्तीस सोवण्णिए पायपीढए ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ भिसियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ करोडियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णिए पल्लंके ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ पडिसेज्जाओ ३, बत्तीसं हंसासणाइं, बत्तीसं कोंचासणाइं, एवं गरुलासणाइं, उण्णयासणाइं, पणयासणाइं, दीहासणाइं, भद्दासणाइं पक्खासणाइं, मगरासणाइं, बत्तीसं

पउमासणाइं बत्तीसं दिसासोवत्थियासणाइं बत्तीसं तेल्लसमुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव बत्तीसं सरिसवसमुग्गे, बत्तीसं खुज्जाओ, जहा उववाइए, जाव बत्तीसं पारिसीओ, बत्तीसं छत्ते, बत्तीसं छत्तधारीओ चेडीओ, बत्तीसं चामराओ, बत्तीसं चामरधारीओ चेडीओ, बत्तीसं तालियंटधारीओ चेडीओ, बत्तीसं करोडियाओ, बत्तीसं करोडियाधारीओ चेडीओ, बत्तीसं खीरधाईओ, जाव बत्तीसं अंकधाईओ बत्तीसं अंगमद्दियाओ, बत्तीसं उम्मद्दियाओ, बत्तीसं ण्हावियाओ, बत्तीसं पसाहियाओ बत्तीसं वण्णगपेसीओ, बत्तीसं चुण्णगपेसीओ, बत्तीसं कोट्ठागारीओ, बत्तीसं दवकारीओ, बत्तीसं उवत्थाणियाओ, बत्तीसं णाडइज्जाओ, बत्तीसं कोडुंबिणीओ, बत्तीसं महाणसिणीओ, बत्तीसं भंडागारिणीओ, बत्तीसं अज्झाधारिणीओ, बत्तीसं पुप्फधारिणीओ, बत्तीसं पाणीधारिणीओ, बत्तीसं बलिकारीओ, बत्तीसं सेज्जाकारीओ, बत्तीसं अब्भितरियाओ पडिहारीओ, बत्तीसं बाहिरियाओ पडिहारीओ, बत्तीसं मालाकारीओ, बत्तीसं पेसणकारीओ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधण-कणग० जाव संतसारसावएज्जं, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं, पकामं परिभाएउं।

तए णं से अणीयसे कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं मउडं मउडप्पवरं दलयइ, एवं तं चेव सव्वं जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा जाव परिभाएउं तए णं से अणीयसकुमारे उप्पिं पासायवरगए] फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी, जाव [सामी] समोसढे, सिरिवणे उज्जाणे। अहा[1] जाव पडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं तस्स अणीयसस्स तं महा० (जणसद्दं च जणकलकलं च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था) जहा गोयमे तहा अणगारे जाए नवरं-सामाइयमाइयाइं चउद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। बीसं वासाइं परियाओ। सेसं तहेव जाव[2] सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव[3] सिद्धे।

एवं खलु जंबू! समणेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

२–६ अज्झयणाणि

एवं जहा अणीयसे एवं सेसा वि अणंतसेणो जाव[4] सत्तुसेणे छ अज्झयणा एक्कगमा। बत्तीसओ दाओ। बीसं वासाइं परियाओ, चउद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। सेत्तुंजे सिद्धा।

तब माता-पिता ने अनीयस कुमार को बाल्यावस्था से पार हुआ जानकर समान, (समान वय

---

१. पू. आत्मारामजी म. सा., एम. सी. मोदी तथा भावनगर से प्रकाशित पाठों में "जहा जाव विहरइ" पाठ है। किन्तु 'जहा' की अपेक्षा 'अहा' पाठ अधिक उपयुक्त होने से यहाँ 'अहा' का ही उपयोग किया गया है।

२-३. प्रथम वर्ग सूत्र ९।

४. तृतीय वर्ग, सूत्र १।

एवं समान त्वचा वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन तथा गुणों वाली, समान इभ्यकुलों से लाई हुई) बत्तीस उत्तम इभ्य-कन्याओं का एक ही दिन पाणिग्रहण कराया।

विवाह के अनन्तर वह नाग गाथापति अनीयस कुमार को प्रीतिदान देते समय बत्तीस करोड़ चांदी के सिक्के तथा महाबल कुमार की तरह अन्य बत्तीस प्रकार की अनेकों वस्तुएं यावत् बत्तीस कोटि सोनैये, बत्तीस श्रेष्ठ मुकुट, बत्तीस श्रेष्ठ कुंडलयुगल, बत्तीस उत्तम हार, बत्तीस उत्तम अर्द्ध हार, बत्तीस उत्तम एकसरा हार, बत्तीस मुक्तावली हार, बत्तीस कनकावली हार, बत्तीस रत्नावली हार, बत्तीस उत्तम कड़ों की जोड़ी, बत्तीस उत्तम त्रुटित (बाजूबन्द) की जोड़ी, बत्तीस उत्तम रेशमी वस्त्र-युगल, बत्तीस पट्टयुगल, बत्तीस दूकूल युगल, बत्तीस श्री, बत्तीस ह्री, बत्तीस धी, बत्तीस कीर्ति, बत्तीस बुद्धि और बत्तीस लक्ष्मी देवियों की प्रतिमा, बत्तीस नन्द, बत्तीस भद्र, बत्तीस तल-ताड़वृक्ष दिए। ये सब रत्नमय जानने चाहिए। अपने भवन में केतु, बत्तीस उत्तम ध्वज, दश हजार गायों के एक व्रज (गोकुल) के हिसाब से बत्तीस उत्तम गोकुल, बत्तीस मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला एक नाटक होता है—ऐसे बत्तीस उत्तम नाटक, बत्तीस उत्तम घोड़े (ये सब रत्नमय जानने चाहिए), भाण्डागार समान बत्तीस रत्नमय उत्तमोत्तम हाथी, भाण्डागार, श्रीघर समान सर्व रत्नमय बत्तीस उत्तम यान, बत्तीस उत्तम युग्य (एक प्रकार का वाहन) बत्तीस शिविका, बत्तीस स्यन्दमानिका, बत्तीस गिल्ली (हाथी की अम्बाडी), बत्तीस थिल्लि (घोड़े का पलाण-काठी), बत्तीस उत्तम विकट (खुले हुए) यान, बत्तीस पारियानिक (क्रीडा करने के) रथ, बत्तीस उत्तम अश्व, बत्तीस उत्तम हाथी, दस हजार कुल-परिवार जिसमें रहते हों ऐसे बत्तीस गाँव, बत्तीस उत्तम दास, बत्तीस उत्तम दासियाँ, बत्तीस उत्तम किंकर, बत्तीस कंचुकी (द्वाररक्षक) बत्तीस वर्षधर (अन्तःपुर के रक्षक खोजा), बत्तीस महत्तरक (अन्तःपुर के कार्य का विचार करने वाले) बत्तीस सोने के, बत्तीस चाँदी के और बत्तीस सोने-चांदी के अवलम्बन दीपक (लटकने वाले दीपक-हण्डियाँ), बत्तीस सोने के बत्तीस चाँदी के, बत्तीस सोना-चांदी के उत्कञ्चन दीपक-दण्डयुक्त दीपक—मशाल) इसी प्रकार सोना, चाँदी और सोना-चाँदी के इन तीनों प्रकार के बत्तीस पञ्जर दीपक। सोना, चाँदी, और सोना-चाँदी के बत्तीस थाल, बत्तीस थालियाँ, बत्तीस मल्लक (कटोरे) बत्तीस तालिका (रकाबियाँ) बत्तीस कलाचिका, (चम्मच), बत्तीस तापिका-हस्तक (संडासियाँ) बत्तीस तवे, बत्तीस पादपीठ (पैर रखने के बाजोठ) बत्तीस भिषिका (आसनविशेष) बत्तीस करोटिका (लोटा), बत्तीस पलंग, बत्तीस प्रतिशय्या (छोटे पलंग), बत्तीस हंसासन, बत्तीस क्रौंचासन, बत्तीस गरुडासन, बत्तीस उन्नतासन, बत्तीस अवनतासन, बत्तीस दीर्घासन, बत्तीस भद्रासन, बत्तीस पक्षासन, बत्तीस मकरासन, बत्तीस पद्मासन, बत्तीस दिक्स्वस्तिकासन, बत्तीस तेल के डिब्बे इत्यादि सभी राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार जानना चाहिए यावत् बत्तीस सर्षप के डिब्बे, बत्तीस कुब्जा दासियाँ इत्यादि सभी औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिये, यावत् बत्तीस पारस देश की दासियाँ, बत्तीस छत्र, बत्तीस छत्र-धारिणी दासियाँ, बत्तीस चामर, बत्तीस चामर-धारिणी दासियाँ, बत्तीस पंखे, बत्तीस पंखा-धारिणी दासियाँ, बत्तीस करोटिका (ताम्बूल के करण्डिये) बत्तीस करोटिका-धारिणी दासियाँ, बत्तीस धात्रियाँ (दूध पिलाने वाली धाय), यावत् बत्तीस अंक-धात्रियाँ, बत्तीस अंगमर्दिका (शरीर का मर्दन करने वाली दासियाँ) बत्तीस स्नान करानेवाली दासियाँ, बत्तीस अलंकार पहनाने वाली दासियाँ, बत्तीस चन्दन घिसने वाली दासियाँ, बत्तीस ताम्बूल-चूर्ण पीसने वाली, बत्तीस कोष्ठागार की रक्षा करने वाली, बत्तीस परिहास करने वाली, बत्तीस सभा में पास रहने वाली, बत्तीस नाटक करने वाली, बत्तीस

कौटुंबिक (साथ रहने वाली), वत्तीस रसोई वनाने वाली, वत्तीस भण्डार की रक्षा करने वाली, वत्तीस तरुणियाँ, वत्तीस पुष्प धारण करने वाली, वत्तीस वलिकर्म करने वाली, वत्तीस शय्या विछाने वाली, वत्तीस आभ्यन्तर और वत्तीस वाह्य प्रतिहारियाँ, वत्तीस माला वनाने वाली और वत्तीस पेषण करने वाली दासियाँ दीं। इसके अतिरिक्त वहुतसा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र तथा विपुल धन, कनक यावत् सारभूत धन दिया, जो सात पीढी तक इच्छापूर्वक देने और भोगने के लिये पर्याप्त था। इस प्रकार अनीयस कुमार ने भी प्रत्येक स्त्री को एक-एक हिरण्य कोटि, एक-एक स्वर्ण कोटि, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएँ दीं, यावत् एक-एक पेषणकारी दासी तथा बहुल-सा हिरण्य-सुवर्ण आदि विभक्त कर दिया। ऊँचे प्रासादों में अनीयस कुमार वजते हुए मृदंगों के द्वारा पर्याप्त भोगों का उपभोग करता हुआ रहने लगा।

उस काल तथा उस समय श्रीवन नामक उद्यान में भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी पधारे। यथा-विधि अवग्रह की याचना करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। जनता उनका धर्मोपदेश सुनने के लिये उद्यान में पहुँची और धर्मोपदेश सुन कर अपने-अपने घर वापस चली गई।

जनसमूह का कोलाहल सुनकर अनीयस कुमार ने भी भगवान् के निकट जाने का संकल्प किया। वे भगवान् की सेवा में पहुंचे। उन्होंने भी भगवान् का प्रवचन सुना। प्रवचन के प्रभाव से उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अन्त में गौतम कुमार की तरह वे भगवान् के चरणों में दीक्षित हो गये। दीक्षा लेने के अनन्तर उन्होंने सामायिक से लेकर चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष दीक्षा का पालन किया। अन्त समय में एक मास की संलेखना करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

सुधर्मा स्वामी कहने लगे—हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अष्टम अंग अन्तगड के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया था।

२-६ अध्ययन

इसी प्रकार अनन्तसेन से लेकर शत्रुसेन पर्यन्त अध्ययनों का वर्णन भी जान लेना चाहिए। सब का बत्तीस-बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ था और सब को बत्तीस-बत्तीस पूर्वोक्त वस्तुएं दी गईं। बीस वर्ष तक संयम का पालन एवं १४ पूर्वों का अध्ययन किया। अन्त में एक मास की संलेखना द्वारा शत्रुंजय पर्वत पर पाँचों ही सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में अनीयस कुमार के शेष जीवन का तथा अनन्तसेन आदि पाँच श्रेष्ठि-पुत्रों का वर्णन किया गया है।

'पीइदाणं' का अर्थ है—प्रीतिदान, जो हर्ष होने के कारण दिया जाता है। यहाँ दान का अर्थ है पारितोषिक—प्रेमोपहार। वैसे प्रीतिदान का प्रयोग दहेज अर्थ में विशेष प्रसिद्ध है। वर्तमान में विवाह के अवसर पर कन्यापक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जाने वाला धन और सम्मान दहेज कहा जाता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र से पता चलता है यह दहेज विवाह के अवसर पर वर के पिता की ओर से वर को दिया जाता था। जो वर द्वारा विवाहित कन्याओं में वांट दिया जाता था।

'नवरं सामाइयमाइयाइं चउद्दस पुव्वाइं'—इस वाक्य में पठित 'नवरं' यह अव्यय पद गौतम कुमार और अनीयस कुमार की अध्ययनगत भिन्नता को प्रकट कर रहा है। 'नवरं' शब्द का अर्थ है

"इतना विशेष है या इतना अन्तर है। अनीयस कुमार और गौतम कुमार के अध्ययन में जो अन्तर है उसे सूत्रकार ने सामाइय·······पुव्वाइं इन पदों द्वारा व्यक्त कर दिया है। भाव यह है कि गौतम कुमार ने तो केवल ग्यारह अंगों का अध्ययन किया था परंतु अनीयस कुमार ने ११ अंग भी पढे और साथ ही १४ पूर्वों का अध्ययन भी किया।

१४ पूर्व-तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थंकर भगवान् जिस अर्थ का गणधरों को पहले पहल उपदेश देते हैं या गणधर देव पहले पहल अर्थ को सूत्र रूप में गूँथते हैं उसे पूर्व कहते हैं। ये पूर्व १४ हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. **उत्पादपूर्व**—इस पूर्व में सभी द्रव्यों और सभी पर्यायों के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गई है।

२. **अग्रायणीपूर्व**—इस में सभी द्रव्यों, सभी पर्यायों और सभी जीवों के परिमाण का वर्णन है।

३. **वीर्य-प्रवादपूर्व**—इस में कर्म-सहित और कर्म-रहित जीवों तथा अजीवों के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है।

४. **अस्ति-नास्ति-प्रवाद पूर्व**—संसार में धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएँ विद्यमान हैं तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान हैं, उन सब का वर्णन इस पूर्व में है।

५. **ज्ञानप्रवादपूर्व**—इस में मतिज्ञान आदि पंचविध ज्ञानों का विस्तृत वर्णन है।

६. **सत्य-प्रवादपूर्व**—इस में सत्यरूप संयम का या सत्य वचन का विस्तृत विवेचन किया गया है।

७. **आत्म-प्रवादपूर्व**—इस में अनेक नयों तथा मतों की अपेक्षा से आत्मा का वर्णन है।

८. **कर्म-प्रवादपूर्व**—इसमें आठ कर्मों का निरूपण, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप में किया गया है।

९. **प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व**—इस में प्रत्याख्यानों का भेद-प्रभेदपूर्वक वर्णन है।

१०. **विद्यानुवादपूर्व**—इस में अनेक विद्याओं एवं मंत्रों का वर्णन है।

११. **अवन्ध्यपूर्व**—इस में ज्ञान, तप, संयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फलवाले, निष्फल न जाने वाले कार्यों का वर्णन है।

१२. **प्राणायुष्य-प्रवादपूर्व**—इस में दस प्राण और आयु आदि का भेद-प्रभेदपूर्वक विस्तृत वर्णन है।

१३. **क्रिया-विशालपूर्व**—इसमें कायिकी आधिकरणिकी आदि तथा संयम में उपकारक क्रियाओं का वर्णन है।

१४. **लोक-विन्दुसार-पूर्व**—श्रुतज्ञान में जो शास्त्र विन्दु की तरह सबसे श्रेष्ठ है, वह लोक-विन्दुसार है।

सप्तम अध्ययन

सारणे

४—तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईए नयरीए, जहा पढमे, नवरं-वसुदेवे राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पण्णासओ दाओ। चउद्दस पुव्वा। वीसं वासा परियाओ। सेसं जहा गोयमस्स जाव[1] सेत्तुंजे सिद्धे।

उस काल तथा उस समय में द्वारका नगरी थी। उसमें वसुदेव राजा थे। उसकी रानी धारिणी थी। उसने गर्भाधान के पश्चात् स्वप्न में सिंह देखा। समय आने पर बालक को जन्म दिया और उसका नाम सारण कुमार रखा गया। उसे विवाह में पचास-पचास वस्तुओं का दहेज मिला। सारण कुमार ने सामायिक से लेकर १४ पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया। शेष सब वृत्तान्त गौतम की तरह है। शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना करके यावत् सिद्ध हुए।

---

१. प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ प्रथम वर्ग के ९ वें सूत्र में आ गया है।

अष्टम अध्ययन

गजसुकुमार

उत्क्षेप

५—जइ णं (भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?)

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे।

जंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगडदशा के तृतीय वर्ग के सप्तम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तो भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगडदशा के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जंबू ! उस काल, उस समय में द्वारका नगरी में प्रथम अध्ययन में किये गये वर्णन के अनुसार यावत् अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् पधारे।

छह अनगारों का संकल्प

६—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था। सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकियवच्छा कुसुम-कुंडलभद्दलया नलकुब्बरसमाणा।

तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरंति।

उस काल, उस समय भगवान् नेमिनाथ के अंतेवासी-शिष्य छह मुनि सहोदर भाई थे। वे समान आकार, त्वचा और समान अवस्थावाले प्रतीत होते थे। उन का वर्ण नील कमल, महिष के शृंग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रंग विशेष और अलसी के समान था। श्रीवत्स से अंकित वक्ष वाले और कुसुम के समान कोमल और कुंडल के समान घुंघराले बालोंवाले वे सभी मुनि नल-कूबर (वैश्रमण-पुत्र) के समान प्रतीत होते थे।

तब (दीक्षित होने के पश्चात्) वे छहों मुनि जिस दिन मुंडित होकर आगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए, उसी दिन अरिहंत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

"हे भगवन् ! हम चाहते हैं कि आपकी आज्ञा पाकर हम जीवन पर्यन्त निरन्तर बेले—बेले तप द्वारा आत्मा को भावित (शुद्ध) करते हुए विचरण करें।"

अरिहंत अरिष्टनेमि ने कहा—देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हें सुख हो, करो, शुभ कर्म करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तब भगवान् के ऐसा कहने पर वे छहों मुनि भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर जीवन भर के लिये बेले-बेले की तपस्या करते हुए यावत् विचरण करने लगे।

छहों अनगारों का देवकी के घर में प्रवेश

७—तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाई छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, जहा गोयमो जाव [बीयाए पोरिसीए झाणं झियायंति, तइयाए पोरिसीए अतुरियम-चवलमसंभंता मुहपोत्तियं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायण-वत्थाइं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जंति, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेंति, उग्गाहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—]

इच्छामो णं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए जाव [उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडित्तए।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियम जाव [चवलमसंभंता जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरियं सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं] अडंति।

तदनन्तर उन छहों मुनियों ने अन्यदा किसी समय, बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया और गौतम स्वामी के समान (दूसरे प्रहर में ध्यानारूढ हुए, तीसरे पहर में कायिक और मानसिक चपलता से रहित हो कर मुखवस्त्रिका, भाजन तथा वस्त्रों की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् वे पात्रों को झोली में रख कर और झोली को ग्रहण कर भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी की सेवा में उपस्थित होते हैं, वन्दना-नमस्कार करते हैं, तदनन्तर निवेदन करते हैं)—

भगवन् ! हम बेले की तपस्या के पारणे में आपकी आज्ञा लेकर दो-दो के तीन संघाड़ों से द्वारका नगरी में यावत् [साधुवृत्ति के अनुसार धनी-निर्धन आदि सभी घरों में] भिक्षा हेतु भ्रमण करना चाहते हैं।

तब उन छहों मुनियों ने अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर प्रभु को वंदन नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर वे भगवान् अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से प्रस्थान करते हैं। फिर वे दो दो के तीन संघाटकों में सहज गति से यावत् [चपलता तथा संभ्रान्ति से रहित, चार

हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए, ईर्यासमिति का पालन करते हुए, जहाँ द्वारका नगरी थी, वहाँ आते हैं। वहाँ आकर द्वारका नगरी में साधुवृत्ति के अनुसार धनी-निर्धन आदि सभी घरों में भिक्षा के लिये] भ्रमण करने लगे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि भगवान् अरिष्टनेमि के छहों मुनि भगवान् से आज्ञा लेकर तीन भागों में विभाजित होकर द्वारका नगरी में बेले के पारणे के लिये पधारते हैं। साधुओं का भिक्षार्थ गमन कब और किस प्रकार होता है, यह इस सूत्र में बताया गया है।

८—तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे।

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव [तुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण] हियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

तयाणंतरं दोच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च जाव[1] विसज्जेइ।

उन तीन संघाटकों (संघाडों) में से एक संघाड़ा द्वारका नगरी के ऊँच-नीच-मध्यम घरों में, एक घर से, दूसरे घर, भिक्षाचर्या के हेतु भ्रमण करता हुआ राजा वसुदेव की महारानी देवकी के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

उस समय वह देवकी रानी उन दो मुनियों के एक संघाडे को अपने यहाँ आता देखकर हृष्ट-तुष्ट [चित्त के साथ आनन्दित हुई। प्रीतिवश उसका मन परमाह्लाद को प्राप्त हुआ, हर्षातिरेक से उसका हृदय कमलवत् प्रफुल्लित हो उठा] आसन से उठकर वह सात-आठ कदम मुनियुगल के सम्मुख गई। सामने जाकर उसने तीन बार दक्षिण की ओर से उनकी प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार के पश्चात् जहाँ भोजनशाला थी वहाँ आई। भोजनशाला में आकर सिंहकेसर मोदकों से एक थाल भरा और थाल भर कर उन मुनियों को प्रतिलाभ दिया। पुनः वन्दन-नमस्कार करके तत्पश्चात् देवकी ने उन्हें प्रतिविसर्जित किया अर्थात् विदाई दी।

प्रथम संघाटक के लौट जाने के पश्चात् उन छह सहोदर साधुओं के तीन संघाटकों में से दूसरा संघाटक भी द्वारका के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करता हुआ महारानी देवकी के प्रासाद में आया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में अरिष्टनेमि भगवान् के छह साधुओं में से पहली और दूसरी टोली को महाराज वसुदेव की महारानी देवकी देवी द्वारा सत्कृत और सन्मानित करने के अनन्तर विधि-पूर्वक दी जानेवाली सिंह-केशर मोदकों की भिक्षा का वर्णन किया गया है। मुनियों की दो टोलियां देवकी के घर से आहार लेकर चली गई, इस के पश्चात् तीसरी टोली के संबंध में सूत्रकार आगे कहते हैं—

---

१. ऊपर के पैरे में आ गया है।

देवकी को पुनः आगमन की शंका और समाधान

९—तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय जाव[1] पड़िलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयासी—

किण्णं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव [मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति, जण्णं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति ?

तए णं ते अणगारा देवइं देविं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए जाव[2] देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव[3] अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, णो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुप्पविसंति ।

एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव[4] नल-कुब्बरसमाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा संसारभउव्विग्गा भीया जम्ममरणाणं मुंडा जाव[5] पव्वइया । तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइआ तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमंसामो, इमं एयारूवं अभिग्गहं ओगिण्हामो-इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव[6] अहासुहं देवाणुप्पिया ।

तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव[7] विहरामो । तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए जाव [सज्झायं करेत्ता, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइत्ता तइयाए पोरिसीए अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिखायरियाए] अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा । तं णो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अण्णे । देवइं देविं एवं वदंति, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

इसके बाद मुनियों का तीसरा संघाडा आया यावत् उसे भी देवकी देवी प्रतिलाभ देती है । उनको प्रतिलाभ देकर वह इस प्रकार बोली—"देवानुप्रियो ! क्या कृष्ण वासुदेव की इस बारह योजन लम्बी, नव योजन चौड़ी प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारका नगरी में श्रमण निर्ग्रंथों को उच्च—नीच एवं मध्यम कुलों के गृह-समुदायों से, भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए आहार-पानी प्राप्त नहीं होता ? जिससे उन्हें आहार-पानी के लिये जिन कुलों में पहले आ चुके हैं, उन्हीं कुलों में पुनः आना पड़ता है ?"

देवकी द्वारा इस प्रकार कहने पर वे मुनि देवकी देवी से इस प्रकार बोले—"देवानुप्रिये ! ऐसी बात तो नहीं है कि कृष्ण वासुदेव की यावत् प्रत्यक्ष स्वर्ग के समान, इस द्वारका नगरी में

---

१. वर्ग—३ का सूत्र—७.
२. वर्ग—१ का सूत्र—६.
३. वर्ग—३ का सूत्र—७.
४. वर्ग—३ का सूत्र—६.
५. वर्ग—३ का सूत्र—६.
६. वर्ग—३ का सूत्र—६.
७. वर्ग—३ का सूत्र—६.

श्रमण-निर्ग्रन्थ उच्च-नीच-मध्यम कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए आहार-पानी प्राप्त नहीं करते। और मुनि जन भी जिन घरों से एक बार आहार ले आते हैं, उन्हीं घरों से दूसरी या तीसरी बार आहारार्थ नहीं जाते हैं।

"देवानुप्रिये ! वास्तव में बात यह है कि हम भद्दिलपुर नगरी के नाग गाथापति के पुत्र और उनकी सुलसा भार्या के आत्मज छह सहोदर भाई हैं। पूर्णतः समान आकृति वाले यावत् नल-कूबर के समान हम छहों भाइयों ने अरिहंत अरिष्टनेमि के पास धर्म-उपदेश सुनकर संसार-भय से उद्विग्न एवं जन्ममरण से भयभीत हो मुंडित होकर यावत् श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर हमने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन अरिहंत अरिष्टनेमि को वंदन-नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार का यह अभिग्रह करने की आज्ञा चाही—हे भगवन् ! आपकी अनुज्ञा पाकर हम जीवन पर्यन्त बेले-बेले की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरना चाहते हैं।" यावत् प्रभु ने कहा—"देवानुप्रियो ! जिससे तुम्हें सुख हो वैसा करो, प्रमाद न करो।"

उसके बाद अरिहंत अरिष्टनेमि की अनुज्ञा प्राप्त होने पर हम जीवन भर के लिये निरंतर बेले—बेले की तपस्या करते हुए विचरण करने लगे। तो इस प्रकार आज हम छहों भाई बेले की तपस्या के पारणा के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय कर, द्वितीय प्रहर में ध्यान कर, तृतीय प्रहर में अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर, तीन संघाटकों में उच्च-निम्न एवं मध्यम कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए तुम्हारे घर आ पहुंचे हैं। तो देवानुप्रिये ! ऐसी बात नहीं है कि पहले दो संघाटकों में जो मुनि तुम्हारे यहाँ आये थे वे हम ही हैं। वस्तुतः हम दूसरे हैं।" उन मुनियों ने देवकी देवी को इस प्रकार कहा और यह कहकर वे जिस दिशा से आये थे उसी दिशा की ओर चले गये।

विवेचन—साधु-युगल की तीसरी टोली का भी देवकी के घर में भिक्षार्थ गमन के समय आकृति और रूप के साम्य के कारण देवकी को मुनियुगल (जो पहले आये थे) का तीसरी बार आना समझ लेने से शंका होती है, क्योंकि संयमशील मुनि विशिष्ट भिक्षा हेतु किसी गृहस्थ के घर में पुनः पुनः नहीं आते हैं। प्रस्तुत सूत्र में देवकी के मन में उठी शंका का मुनि-युगल ने समाधान प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत समाधान ने देवकी के मन में जो नयी उथल-पुथल मचाई, इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार आगे कहते हैं—

पुत्रों की पहचान

१०—तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे-एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिआ-तुमण्णं देवाणुप्पिए ! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव नलकुब्बरसमाणे, नो चेव णं भरहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्संति। तं णं मिच्छा। इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ-भरहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव [सरिसए सरित्तए सरिव्वए नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासे, सिरिवच्छंकियवच्छे, कुसुम-कुंडल-भद्दालए नलकुब्बरसमाणे] पुत्ते पयायाओ। तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामि नमंसामि, वंदित्ता नमंसित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामित्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

लहुकरणप्पवरं जाव [जुत्त-जोइय-सम-खुर-वालिहाण-समालिहियसिंगेहिं, जंबूणयामयकलावजुत्त-परिवि-सिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुयपवरकंचणणत्थपग्गहोग्गहियएहिं, णीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोण-जुवाणएहिं णाणामणि-रयण-घंटियाजाल-परिगयं, सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुग-पसत्थसुविरचियणिम्मियं, पवरलक्खणोववेयं धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबिय—पुरिसा……एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया, करयल एवं……तहत्तिआणाए विणएणं वयणं जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव] उवट्ठवेंति । जहा देवाणंदा जाव [तए णं सा देवई देवी अंतो अंतेउरंसि ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता, किंच वरपायपत्तणेउर-मणिमेहला हार-रचिय उचियकडग-खुड्डाग-एगावली-कंठसुत्त-उरत्थगेवेज्ज-सोणिसुत्तग-णाणामणि-रयण-भूसणविराइयंगी, चीणंसुयवत्थपवरपरि-हिया, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा, सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरिया, वरचंदणवंदिया, वराभरण-भूसियंगी, कालागरुधूवधूविया, सिरिसमाणवेसा, जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा, बहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइयाहिं, णाणादेस-विदेसपरिमंडियाहिं, सदेसणेवत्थगहियवेसाहिं, इंगिय-चिंतिय-पत्थियवियाणि-याहिं, कुसलाहिं, विणीयाहिं, चेडियाचक्कवालवरिसधर-थेरकंचुइज्ज-महत्तरगवंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा ।

तए णं सा देवई देवी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगवंदपरिक्खित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं अविमोयणयाए, विणयोणयाए गायलट्ठीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, मणस्स एगत्तीभावकरणेणं; जेणेव भगवं अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता……सुस्सूसमाणी, णमंसमाणी, अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा जाव] पज्जुवासइ ।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी देवइं देविं एवं वयासी—'से नूणं तव देवई ! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं जाव[1] तं णिग्गच्छसि, णिग्गच्छित्ता जेणेव मम अंतियं तेणेव हव्वमागया, से नूणं देवई ! अट्ठे समट्ठे ?'

'हंता अत्थि ।'

इस प्रकार की वात कहकर उन श्रमणों के लौट जाने के पश्चात् देवकी देवी को इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और संकल्पित विचार उत्पन्न हुआ कि "पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने मुझे बचपन में इस प्रकार कहा था—हे देवानुप्रिये देवकी ! तुम आठ पुत्रों को जन्म दोगी, जो परस्पर एक दूसरे से पूर्णतः समान [आकार, त्वचा और अवस्था वाले, नील कमल, महिष के शृंग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रंग विशेष और अलसी के समान वर्ण वाले, श्रीवत्स से अंकित वक्षवाले, कुसुम के समान कोमल और कुंडल के समान घुंघराले वालों वाले] नलकूबर के समान प्रतीत होंगे । भरतक्षेत्र में दूसरी कोई माता वैसे पुत्रों को जन्म नहीं देगी । पर वह कथन मिथ्या निकला, क्योंकि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि अन्य माताओं

---

१. प्रस्तुत सूत्र में ऊपर देखिए ।

ने भी ऐसे यावत् पुत्रों को जन्म दिया है। अतः मैं अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् की सेवा में जाऊं, वंदन-नमस्कार करूं, और वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार के उक्तिवैपरीत्य के विषय में पूछूं। ऐसा सोचकर तुम ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—"शीघ्रगामी यानप्रवर—[समान रूपवाले, समान खुर और पूंछ वाले, समान सींग वाले, स्वर्ण-निर्मित कण्ठ के आभूषणों से युक्त, उत्तम गति वाले, चाँदी की घंटियों से युक्त, स्वर्णमय नासारज्जु से बंधे हुए, नील-कमल के सिरपेच वाले दो उत्तम युवा बैलों से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घण्टियों के समूह से व्याप्त उत्तम काष्ठमय धोंसरा (जुआ) और जोत की दो उत्तम डोरियों से युक्त, प्रवर (श्रेष्ठ) लक्षण युक्त धार्मिक श्रेष्ठ यान (रथ) तैयार करके यहाँ उपस्थित करो और आज्ञा का पालन कर निवेदन करो अर्थात् कार्य सम्पूर्ण हो जाने की सूचना दो।" देवकी देवी की इस प्रकार की आज्ञा होने पर वे सेवक पुरुष प्रसन्न यावत् आनन्दित हृदय वाले हुए और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोले—'आपकी आज्ञा हमें मान्य है' ऐसा कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार किया और आज्ञानुसार शीघ्र चलने वाले दो बैलों से युक्त यावत् धार्मिक श्रेष्ठ रथ को शीघ्र] उपस्थित किया।

तब देवानन्दा ब्राह्मणी की तरह देवकी देवी ने भी [अंतःपुर में स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक (मषि-तिलक) किया। फिर पैरों में पहनने के सुंदर नूपुर, मणियुक्त मेखला (कन्दोरा) हार, उत्तम कंकण अँगूठियाँ, विचित्र मणिमय एकावलि (एक लड़ा) हार, कण्ठ-सूत्र, ग्रैवेयक (वक्षस्थल पर रहा हुआ गले का लम्बा हार), कटिसूत्र और विचित्र मणि तथा रत्नों के आभूषण, इन सब से शरीर को सुशोभित करके, उत्तम चीनांशुक (वस्त्र) पहनकर शरीर पर सुकुमाल रेशमी वस्त्र ओढकर, सब ऋतुओं के सुगन्धित फूलों से अपने केशों को गूँथकर, कपाल पर चन्दन लगा कर, उत्तम आभूषणों से शरीर को अलंकृत कर, कालागुरु के धूप से सुगन्धित होकर, लक्ष्मी के समान वेष वाली यावत् अल्प भार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत करके, बहुत सी कुब्जा दासियों, चिलात देश की दासियों, यावत् अनेक देश विदेशों से आकर एकत्रित हुई दासियों, अपने देश के वेष धारण करने वाली, इंगित-आकृति द्वारा चिन्तित और इष्ट अर्थ को जाननेवाली कुशल और विनयसम्पन्न दासियों के परिवार सहित तथा स्वदेश की दासियों, खोजा पुरुष, वृद्ध कंचुकी और मान्य पुरुषों के समूह के साथ वह देवकी देवी अपने अन्तःपुर से निकली और जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ धार्मिक श्रेष्ठ रथ खड़ा था वहाँ आई और उस धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर चढी।

(जहाँ अरिष्टनेमि भगवान् थे वहाँ आई, आकर, तीर्थंकर के अतिशयों को देखकर) धार्मिक रथ से नीचे उतरी और अपनी दासियों आदि परिवार से परिवृत होकर भगवान् अरिष्टनेमि के पास पांच प्रकार के अभिगमों से युक्त होकर जाने लगी। वे अभिगम इस प्रकार हैं—(१) सचित्त द्रव्यों का त्याग करना, (२) अचित्त द्रव्यों को त्याग नहीं करना, (३) विनय से शरीर को अवनत करना (नीचे की ओर झुका देना), (४) भगवान् के दृष्टिगोचर होते ही दोनों हाथ जोड़ना और (५) मन को एकाग्र करना। इन पाँच अभिगमों के साथ देवकी देवी जहाँ अरिष्टनेमि भगवान् थे वहाँ आई और भगवान् को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके शुश्रूषा करती हुई, विनयपूर्वक हाथ जोड़कर] उपासना करने लगी।

तदनन्तर अरिहंत अरिष्टनेमि देवकी को सम्बोधित कर इस प्रकार बोले—"हे देवकी !

लहुकरणप्पवरं जाव [जुत्त-जोइय-सम-खुर-वालिहाण-समालिहियसिंगेहिं, जंबूणयामयकलावजुत्त-परिविसिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुयपवरकंचणणत्थपग्गहोग्गहियएहिं, णीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोणजुवाणएहिं णाणामणि-रयण-घंटियाजाल-परिगयं, सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुग-पसत्थसुविरचियणिम्मियं, पवरलक्खणोववेयं धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिय—पुरिसा.......एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया, करयल एवं.......तहत्तिआणाए विणएणं वयणं जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव] उवट्ठवेंति। जहा देवाणंदा जाव [तए णं सा देवई देवी अंतो अंतेउरंसि ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता, किंच वरपायपत्तणेउर-मणिमेहला हार-रचिय उचियकडग-खुड्डागएगावली-कंठसुत्त-उरत्थगेवेज्ज-सोणिसुत्तग-णाणामणि-रयण-भूसणविराइयंगी, चीणंसुयवत्थपवरपरिहिया, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा, सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरिया, वरचंदणवंदिया, वराभरणभूसियंगी, कालागरुधूवधूविया, सिरिसमाणवेसा, जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा, बहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइयाहिं, णाणादेस-विदेसपरिमंडियाहिं, सदेसणेवत्थगहियवेसाहिं, इंगिय-चिंतिय-पत्थियवियाणियाहिं, कुसलाहिं, विणीयाहिं, चेडियाचक्कवालवरिसधर-थेरकंचुइज्ज-महत्तरगवंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

तए णं सा देवई देवी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगवंदपरिक्खित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं अविमोयणयाए, विणयोणयाए गायलट्ठीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, मणस्स एगत्तीभावकरणेणं; जेणेव भगवं अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता.......सुस्सूसमाणी, णमंसमाणी, अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा जाव] पज्जुवासइ।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी देवइं देविं एवं वयासी—'से नूणं तव देवई! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं जाव[1] तं णिग्गच्छसि, णिग्गच्छित्ता जेणेव मम अंतियं तेणेव हव्वमागया, से नूणं देवई! अट्ठे समट्ठे?'

'हंता अत्थि।'

इस प्रकार की बात कहकर उन श्रमणों के लौट जाने के पश्चात् देवकी देवी को इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और संकल्पित विचार उत्पन्न हुआ कि "पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने मुझे बचपन में इस प्रकार कहा था—हे देवानुप्रिये देवकी! तुम आठ पुत्रों को जन्म दोगी, जो परस्पर एक दूसरे से पूर्णतः समान [आकार, त्वचा और अवस्था वाले, नील कमल, महिष के शृंग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रंग विशेष और अलसी के समान वर्ण वाले, श्रीवत्स से अंकित वक्षवाले, कुसुम के समान कोमल और कुंडल के समान घुंघराले बालों वाले] नलकूबर के समान प्रतीत होंगे। भरतक्षेत्र में दूसरी कोई माता वैसे पुत्रों को जन्म नहीं देगी। पर वह कथन मिथ्या निकला, क्योंकि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि अन्य माताओं

---

१. प्रस्तुत सूत्र में ऊपर देखिए।

क्या इन छह अनगारों को देखकर तुम्हारे मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और संकल्पित विचार उत्पन्न हुआ है कि—पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार ने तुम्हें एक समान, नलकूबरवत् आठ पुत्रों को जन्म देने का और भरतक्षेत्र में अन्य माताओं द्वारा इस प्रकार के पुत्रों को जन्म नहीं देने का भविष्य-कथन किया था, वह मिथ्या सिद्ध हुआ, क्योंकि भरतक्षेत्र में भी अन्य माताओं ने ऐसे यावत् पुत्रों को जन्म दिया है। ऐसा जानकर इस विषय में पृच्छा करने के लिये तुम यावत् वन्दन को निकलीं और निकलकर शीघ्रता से मेरे पास चली आई हो।

देवकी देवी ! क्या यह बात सत्य है ?

देवकी ने कहा—'हाँ प्रभु, सत्य है।'

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि के शिष्यों को तीसरी बार अपने घर में आया देखकर देवकी देवी के हृदय में जो संकल्प उत्पन्न हुआ, उसके विषय में निश्चय करने के लिये वह भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित हुई। भगवान् ने उसके हृदयगत संकल्प का स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया। इन सब बातों का प्रस्तुत सूत्र में दिग्दर्शन कराया गया है।

"अज्झत्थिए समुप्पण्णे"..........का अर्थ इस प्रकार है—अज्झत्थिए अर्थात् आध्यात्मिक—आत्मगत। कप्पिए-कल्पित अर्थात् हृदय में उठनेवाली अनेकविध कल्पनाएं। चिन्तिए—चिन्तित अर्थात् बार-बार किया गया विचार। पत्थिए-प्रार्थित अर्थात् "इस दशा का मूल कारण क्या है ?" इस जिज्ञासा का पुनः पुनः होना। मणोगए—मनोगत अर्थात् जो विचार अभी मन में हैं प्रकट नहीं किये गये हैं। संकप्प—संकल्प अर्थात् सामान्य विचार।

अइमुत्तेण कुमारसमणेणं' का अर्थ है—अतिमुक्त नामक कुमार श्रमण। अतिमुक्त कुमार श्रमण (सुकुमार शरीरवाले, या कुमारावस्था वाले श्रमण) कंस के छोटे भाई थे। जिस समय कंस की पत्नी जीवयशा देवकी के साथ क्रीडा कर रही थी उस समय अतिमुक्त कुमार जीवयशा के घर में भिक्षा के लिये गये थे। आमोद-प्रमोद में मग्न जीवयशा ने अपने देवर को मुनि के रूप में देखकर उपहास करना प्रारंभ किया। वह बोली—देवर ! आओ तुम भी मेरे साथ क्रीडा करो, इस आपोद-प्रमोद में तुम भी भाग लो। इस पर मुनि अतिमुक्त कुमार जीवयशा से कहने लगे—जीवयशे ! जिस देवकी के साथ तुम इस समय क्रीडा कर रही हो इस देवकी के गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न होंगे। ये पुत्र इतने सुन्दर और पुण्यात्मा होंगे कि भारतवर्ष में अन्य किसी स्त्री के ऐसे पुत्र नहीं होंगे। परंतु इस देवकी का सातवां पुत्र तेरे पति को मारकर आधे भारतवर्ष पर राज्य करेगा। यह बात देवकी देवी ने बचपन में सुनी थी। अतः इसी के समाधान हेतु उसने भगवान् अरिष्टनेमि के पास जाने का निश्चय किया।

अरिहंत परमात्मा या साधु-साध्वियों के पास जाते समय जो आवश्यक नियम अपनाने होते हैं, उन्हें अभिगम कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने देवकी देवी के हृदयगत संकल्प-विकल्प का चित्रण किया है। देवकी देवी अपने हृदय की बात अरिष्टनेमि भगवान् के चरणों में निवेदन करने के लिये चल पड़ी और वहां उपस्थित हो गई। तदनन्तर देवकी देवी के मानस को समाहित करने के लिये अरिष्टनेमि भगवान् ने जो कुछ कहा, अग्रिम सूत्र में इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

११—एवं खलु देवाणुप्पिए ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे । तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था । तए णं सा सुलसा बालत्तणे चेव हरिणेगमेसीभत्तया यावि होत्था । नेमित्तिएण वागरिया-एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ । तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करेत्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता उल्लपडसाडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जण्णुपायपडिया पणामं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा वरइ वा ।

तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिबहुमाणसुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था । तए णं से हरि-णेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए सुलसं गाहावइणिं तुमं च दो वि समउउयाओ करेइ । तए णं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह । तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयायइ । तए णं से हरि-णेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठयाए विणिहायमावण्णे दारए करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता तव अंतियं साहरइ । तं समयं च णं तुमं पि नवण्हं मासाणं सुकुमालदारए पसवसि । जे वि य णं देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य तव अंतिआओ करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ । तं तव चेव णं देवई ! एए पुत्ता । णो सुलसाए गाहावइणीए ।

अरिहंत अरिष्टनेमि ने कहा—'देवानुप्रिये ! उस काल उस समय में भद्दिलपुरनामक नगर में नाग नाम का गाथापति रहता था । वह पूर्णतया सम्पन्न था । नागरिकों में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । उस नाग गाथापति की सुलसा नाम की भार्या थी । उस सुलसा गाथापत्नी को बाल्यावस्था में ही किसी निमित्तज्ञ ने कहा था—'यह बालिका निंदु अर्थात् मृतवत्सा (मृत बालकों को जन्म देने वाली) होगी । तत्पश्चात् वह सुलसा बाल्यकाल से ही हरिणैगमेषी देव की भक्त बन गई । उसने हरिणैगमेषी देव की प्रतिमा बनवाई । प्रतिमा बनवा कर प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके यावत् दुःस्वप्न निवारणार्थ प्रायश्चित्त कर आर्द्र (गीली) साड़ी पहने हुए उसकी बहुमूल्य पुष्पों से अर्चना करती । पुष्पों द्वारा पूजा के पश्चात् घुटने टेककर पांचों अंग नमा कर प्रणाम करती, तदनन्तर आहार करती, निहार करती एवं अपनी दैनन्दिनी के अन्य कार्य करती ।

तत्पश्चात् उस सुलसा गाथापत्नी की उस भक्ति-बहुमानपूर्वक की गई शुश्रूषा से देव प्रसन्न हो गया । प्रसन्न होने के पश्चात् हरिणैगमेषी देव सुलसा गाथापत्नी को तथा तुम्हें—दोनों को समकाल में ही ऋतुमती (रजस्वला) करता और तब तुम दोनों समकाल में ही गर्भ धारण करतीं, समकाल में ही गर्भ का वहन करतीं और समकाल में ही बालक को जन्म देतीं । प्रसवकाल में वह सुलसा गाथापत्नी मरे हुए बालक को जन्म देती । तब वह हरिणैगमेषी देव सुलसा पर अनुकंपा करने के लिये उसके मृत बालक को हाथों में लेता और लेकर तुम्हारे पास लाता । इधर उसी समय तुम भी नव मास का काल पूर्ण होने पर सुकुमार बालक को जन्म देतीं । हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हारे पुत्र होते उनको हरिणैगमेषी देव तुम्हारे पास से अपने दोनों हाथों में ग्रहण करता और उन्हें ग्रहण कर सुलसा गाथापत्नी के पास लाकर रख देता (पहुँचा देता) । अतः वास्तव में हे देवकी ! ये तुम्हारे ही पुत्र हैं, सुलसा गाथापत्नी के पुत्र नहीं हैं ।'

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि ने देवकी देवी के समाधान के लिये नाग की धर्मपत्नी सुलसा

१. देखिए पिछला सूत्र ।

का निन्दू होना, उसका हरिणैगमेषी देव की आराधना करना, देवका प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रों को सुलसा के पास पहुंचाना तथा सुलसा के मृतपुत्रों को देवकी देवी के पास पहुंचाना आदि जो कथन किया उसी का प्रस्तुत सूत्र में वर्णन दिया गया है।

'नेमित्तिएणं' शब्द का अर्थ होता है नैमित्तिक। भविष्य की बात बनाने वाले ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा जाता है।

'णिंदू'—शब्द का अर्थ है—मृत-प्रसविनी। जिसके बच्चे मृत पैदा हों, उसे निन्दू कहते हैं। मृत बालक दो तरह के होते हैं—एक तो गर्भ से ही मरे हुए पैदा होने वाले, दूसरे पैदा होने के बाद मर जाने वाले। प्रस्तुत प्रकरण में निन्दू से प्रथम अर्थ का ग्रहण ही अभीष्ट प्रतीत होता है।

हरिणैगमेषी—शब्द का अर्थ करते हुए कल्पसूत्र (प्रदीपिका टीका के गर्भ परिवर्तन-प्रकरण) में लिखा है—'हरेः इन्द्रस्य नैगमम् आदेशमिच्छतीति हरिनैगमेषी, केचित् हरेरिन्द्रस्य संबंधी नैगमेषी, नाम देव इति'—अर्थात् हरिनैगमेषी शब्द के दो अर्थ हैं—१. हरि-इन्द्र के नैगम—आदेश की इच्छा करने वाला देव तथा २. हरि-इन्द्र का नैगमेषी अर्थात् संबंधी एक देव। हरिनैगमेषी सौधर्म देवलोक के स्वामी महाराज शकेन्द्र का सेनापति देव है। इन्द्र की आज्ञा मिलने पर भगवान् महावीर के गर्भ का परिवर्तन इसी देव ने किया था।

'उल्ल-पड-साडया' का अर्थ है—जिसने आर्द्र (भीगा हुआ) पट और शाटिका धारण कर रखी है। पट ऊपर ओढने के वस्त्र का नाम है। शाटिका शब्द से नीचे पहनने की धोती या साड़ी का बोध होता है।

'आहारेइ वा, नीहारेइ वा, वरइ वा' का अर्थ है—आहार करती थी—भोजन खाती थी। निहारेइ अर्थात् शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होती थी। वरइ-शब्द वृ धातु से बनता है जिसका अर्थ है—विचार करना, चुनना, सगाई करना, याचना करना, आच्छादन करना, सेवा करना। प्रस्तुत में वृ धातु विचार करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई प्रतीत होती है। तब 'वरइ' का अर्थ होगा विचार करती थी, अन्य कार्यों के सम्बन्ध में चिन्तन करती थी।

"भत्ति-बहुमाण-सुस्सूसाए" का अर्थ है—भक्ति-बहुमान तथा शुश्रूषा के द्वारा। भक्ति शब्द अनुराग, बहुमान शब्द अत्यधिक सत्कार तथा शुश्रूषा शब्द सेवा का परिचायक है। इन पदों द्वारा सूत्रकार ने हरिणैगमेषी देव को आराधित—सिद्ध या प्रसन्न करने के तीन साधनों का निर्देश किया है। देव को सिद्ध करने के लिये उक्त तीन बातों की अपेक्षा हुआ करती है। देव को सिद्ध करने के लिये सर्वप्रथम साधक के हृदय में देव के प्रति अनुराग होना चाहिए, तदनन्तर साधक के हृदय में देव के लिये अत्यधिक सत्कार-सम्मान की भावना होनी चाहिये। देव को सिद्ध करने के लिये तीसरा साधन देव की सेवा है।

सुलसा ने हरिणैगमेषी देव की आराधना की, उसकी पूजा की, परिणाम स्वरूप उसने अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर लिया। इससे भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि देवता के प्रति की जाने वाली आराधना साधक की कामना पूर्ण करने में सहायक बन सकती है। देव अपने भक्त की रक्षा करने तथा उस पर अनुग्रह करने में सशक्त होता है।

लोग पुत्रादि को उपलब्ध करने के लिये देव-पूजन करते हैं और पूर्वोपार्जित किसी पुण्य कर्म

का निन्दू होना, उसका हरिणैगमेषी देव की आराधना करना, देवका प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रों को सुलसा के पास पहुंचाना तथा सुलसा के मृतपुत्रों को देवकी देवी के पास पहुंचाना आदि जो कथन किया उसी का प्रस्तुत सूत्र में वर्णन दिया गया है।

'नेमित्तिएणं' शब्द का अर्थ होता है नैमित्तिक। भविष्य की बात बनाने वाले ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा जाता है।

'णिंदू'—शब्द का अर्थ है—मृत-प्रसविनी। जिसके बच्चे मृत पैदा हों, उसे निन्दू कहते हैं। मृत वालक दो तरह के होते हैं—एक तो गर्भ से ही मरे हुए पैदा होने वाले, दूसरे पैदा होने के वाद मर जाने वाले। प्रस्तुत प्रकरण में निन्दू से प्रथम अर्थ का ग्रहण ही अभीष्ट प्रतीत होता है।

हरिणैगमेषी—शब्द का अर्थ करते हुए कल्पसूत्र (प्रदीपिका टीका के गर्भ परिवर्तन-प्रकरण) में लिखा है—'हरेः इन्द्रस्य नैगमम् आदेशमिच्छतीति हरिनैगमेषी, केचित् हरेरिन्द्रस्य संबंधी नैगमेषी, नाम देव इति'—अर्थात् हरिनैगमेषी शब्द के दो अर्थ हैं—१. हरि-इन्द्र के नैगम—आदेश की इच्छा करने वाला देव तथा २. हरि-इन्द्र का नैगमेषी अर्थात् संबंधी एक देव। हरिनैगमेषी सौधर्म देवलोक के स्वामी महाराज शकेन्द्र का सेनापति देव है। इन्द्र की आज्ञा मिलने पर भगवान् महावीर के गर्भ का परिवर्तन इसी देव ने किया था।

'उल्ल-पड-साडया' का अर्थ है—जिसने आर्द्र (भीगा हुआ) पट और शाटिका धारण कर रखी है। पट ऊपर ओढने के वस्त्र का नाम है। शाटिका शब्द से नीचे पहनने की धोती या साड़ी का बोध होता है।

'आहारेइ वा, नीहारेइ वा, वरइ वा' का अर्थ है—आहार करती थी—भोजन खाती थी। निहारेइ अर्थात् शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होती थी। वरइ-शब्द वृ धातु से बनता है जिसका अर्थ है—विचार करना, चुनना, सगाई करना, याचना करना, आच्छादन करना, सेवा करना। प्रस्तुत में वृ धातु विचार करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई प्रतीत होती है। तव 'वरइ' का अर्थ होगा विचार करती थी, अन्य कार्यों के सम्बन्ध में चिन्तन करती थी।

"भत्ति-वहुमाण-सुस्सूसाए" का अर्थ है—भक्ति-बहुमान तथा शुश्रूषा के द्वारा। भक्ति शब्द अनुराग, बहुमान शब्द अत्यधिक सत्कार तथा शुश्रूषा शब्द सेवा का परिचायक है। इन पदों द्वारा सूत्रकार ने हरिणैगमेषी देव को आराधित—सिद्ध या प्रसन्न करने के तीन साधनों का निर्देश किया है। देव को सिद्ध करने के लिये उक्त तीन बातों की अपेक्षा हुआ करती है। देव को सिद्ध करने के लिये सर्वप्रथम साधक के हृदय में देव के प्रति अनुराग होना चाहिए, तदनन्तर साधक के हृदय में देव के लिये अत्यधिक सत्कार-सम्मान की भावना होनी चाहिये। देव को सिद्ध करने के लिये तीसरा साधन देव की सेवा है।

सुलसा ने हरिणैगमेषी देव की आराधना की, उसकी पूजा की, परिणाम स्वरूप उसने अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर लिया। इससे भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि देवता के प्रति की जाने वाली आराधना साधक की कामना पूर्ण करने में सहायक वन सकती है। देव अपने भक्त की रक्षा करने तथा उस पर अनुग्रह करने में सशक्त होता है।

लोग पुत्रादि को उपलब्ध करने के लिये देव-पूजन करते हैं और पूर्वोपार्जित किसी पुण्य कर्म

के सहयोगी होने के कारण पुत्रादि की प्राप्ति कर लेने पर भक्ति के अतिरेक से उसे देव-प्रदत्त ही मान लेते हैं। पुत्रादि की प्राप्ति में देव को ही प्रधान कारण मान लेते हैं, वे भूल करते हैं, क्योंकि यदि पूर्वोपार्जित कर्म के फल को प्रकट करने में देव निमित्त कारण बन सकता है। इसके विपरीत, यदि पूर्व कर्म सहयोगी नहीं है तो एक बार नहीं, अनेकों बार देवपूजा की जाए या देव की अनेकों मनौतियां मान ली जायें तो भी देव कुछ नहीं कर सकते। वस्तुतः किसी भी कार्य की सिद्धि में देव केवल निमित्त कारण बन सकता है, उपादान कारण नहीं।

भगवान् अरिष्टनेमि के श्रीमुख से छहों मुनियों के इतिवृत्त को सुनकर देवकी देवी की क्या दशा हुई, इसका वर्णन अग्रिम सूत्र में किया जा रहा है—

१२—तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[1] हियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता आगयपण्हुया, पप्फुयलोयणा, कंचुयपरिक्खित्तया, दरियवलय-बाहा, धाराहय-कलंब-पुप्फगं विव समूससिय-रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी-पेहमाणी सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं नयरिं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागया, धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागया सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ।

तदनन्तर उस देवकी देवी ने अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् के पास से उक्त वृत्तान्त को सुनकर और उस पर चिन्तन कर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदया होकर अरिष्टनेमि भगवान् को वंदन नमस्कार किया। वंदना नमस्कार करके वे छहों मुनि जहाँ विराजमान थे वहाँ आई। आकर वह उन छहों मुनियों को वंदना नमस्कार करती है। उन अनगारों को देखकर पुत्र-प्रेम के कारण उसके स्तनों से दूध झरने लगा। हर्ष के कारण लोचन प्रफुल्लित हो उठे, हर्ष के मारे कंचुकी के बन्धन टूटने लगे, भुजाओं के आभूषण तंग हो गये, उसकी रोमावली मेघधारा से अभिताडित हुए कदम्ब पुष्प की भाँति खिल उठी। वह उन छहों मुनियों को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई चिरकाल तक निरखती ही रही। तत्पश्चात् उन छहों मुनियों को वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके जहाँ भगवान् अरिष्टनेमि विराजमान थे वहाँ आई, आकर अरिहन्त अरिष्टनेमि को दक्षिण तरफ से तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करती है। वन्दन-नमस्कार करके उसी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ होती है। रथारूढ हो जहां द्वारका नगरी थी, वहाँ आती है, आकर द्वारका नगरी में प्रविष्ट होती है, प्रवेश कर जहां अपने प्रासाद के बाहर की उपस्थानशाला अर्थात् बैठक थी वहाँ [आती] है, आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरती है, नीचे उतर कर जहां अपना वासगृह था, जहां [अपन]ी शय्या थी उस पर बैठ जाती है।

---

1. देखिए वर्ग ३, सूत्र ७.

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि से छहों मुनियों का वृत्तान्त सुनने पर "ये छहों मेरे ही पुत्र हैं" इस प्रकार की प्रतीति हो जाने पर वह देवकी देवी छहों मुनियों के दर्शन करती है और पुनः पुनः उन्हें देखकर हर्षित होती है, ऐसी स्थिति में उसका छिपा हुआ वात्सल्य उजागर हुआ, और स्तन-दुग्ध द्वारा प्रकट हो गया। तदनन्तर अपनी स्थिति में समाहित वह अपने भवन में वापस लौटी और विशेष विचारधारा में डूब गई। अग्रिम सूत्र में सूत्रकार उसकी विचारधारा और परिणामधाराओं का दिग्दर्शन कराते हैं।

देवकी की पुत्राभिलाषा

१३—तए णं तीसे देवईए देवीए अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं सरिसए जाव नलकुब्बर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुब्भूए। एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, पुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, जासिं मण्णे णियग-कुच्छि-संभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुर-समुल्लावायाइं मम्मण-पजंपियाइं थण-मूला कक्खदेशभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमल-कमलोवमेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए। अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एक्कतरमवि ण पत्ता, ओहय जाव [मणसंकप्पा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया] झियायइ।

उस समय देवकी देवी को इस प्रकार का विचार, चिन्तन और अभिलाषापूर्ण मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि अहो! मैंने पूर्णतः समान आकृति वाले यावत् नलकूबर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया पर मैंने एक की भी बाल्यक्रीडा का आनन्दानुभव नहीं किया। यह कृष्ण वासुदेव भी छह-छह मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिये मेरे पास आता है, अतः मैं मानती हूँ कि वे माताएं धन्य हैं, जिनकी अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए, स्तन-पान के लोभी बालक, मधुर आलाप करते हुए, तुतलाती बोली से मन्मन बोलते हुए जिनके स्तनमूल कक्षा-भाग में अभिसरण करते हैं, एवं फिर उन मुग्ध बालकों को जो माताएं कमल के समान अपने कोमल हाथों द्वारा पकड़ कर गोद में बिठाती हैं और अपने बालकों से मधुर-मंजुल शब्दों में वार बार बातें करती हैं। मैं निश्चितरूपेण अधन्य और पुण्यहीन हूँ क्योंकि मैंने इनमें से एक पुत्र की भी बालक्रीडा नहीं देखी। इस प्रकार देवकी खिन्न मन से हथेली पर मुख रखकर (शोक-मुद्रा में) आर्तध्यान करने लगी।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में सात-सात पुत्रों की माता बनने पर भी उनकी बाल्यक्रीडा आदि से वंचित देवकी देवी की खिन्न अवस्था-विशेष में उठने वाले संकल्प-विकल्पों का हृदय-द्रावक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

कृष्ण द्वारा चिन्तानिवारण का उपाय

१३—इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव [कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकार] विभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता देवइं देविं एवं वयासी—

अण्णया णं अम्मो! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठतुट्ठा जाव [चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोम-

णस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया] भवह, किण्णं अम्मो ! अज्ज तुब्भे ओहयमणसंकप्पा जाव [करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया] झियायह ?

तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव[1] नलकुब्बरसमाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुभूए । तुमं पि य णं पुत्ता ! छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि । तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव[2] झियामि ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी—मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहयमणसंकप्पा जाव[3] झियायह । अहण्णं तहा जतिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सति त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं समासासेइ । तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा अभओ । नवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं पगेण्हइ जाव [पगेण्हइत्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता हरिणेगमेसिं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ ।

तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे हरिणेगमेसिस्स देवस्स आसणं चलइ । तए णं हरिणेगमेसी देवे आसणं चलियं पासइ, पासित्ता, ओहिं पउंजति । तए णं तस्स हरिणेगमेसिस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बारवई नयरीए पोसहसालाए कण्हे नामं वासुदेवे अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता णं मम मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ । तं सेयं खलु मम कण्हस्स वासुदेवस्स अंतिए पाउब्भवित्तए ।" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता विउव्विय-समुग्घाएणं समोहणति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ । तं जहा—

(१) रयणाणं, (२) वइराणं, (३) वेरुलियाणं, (४) लोहियक्खाणं, (५) मसारगल्लाणं, (६) हंसगब्भाणं, (७) पुलगाणं, (८) सोगंधियाणं, (९) जोइरसाणं, (१०) अंकाणं, (११) अंजणाणं, (१२) रययाणं, (१३) जायरूवाणं, (१४) अंजणपुलयाणं, (१५) फलिहाणं, (१६) रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हत्ति, परिगिण्हइत्ता कण्हमणुकंपमाणे देवे तओ विमाणवरपुण्डरियाओ रयणुत्तमाओ धरणियलगमणतुरिय-संजणितगयण-पयारो वाघुण्णितविमलकणगपयरगवडिंसगमउडुक्कडाडोवदंसिणिज्जो, अणेगमणि-कणग-रयण-पहकर-परिमंडितभत्तिचित्तविणिउत्तमगुणजणियहरिसे, पेंखोलमाणवरललितकुंडलुज्जलियवयणगुणजनित-सोमरूवे, उदितो विव कोमुदीनिसाए सणिच्छरंगारउज्जलियमज्झभागत्थे णयणाणंदो, सरयचंदो, दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदंसणाभिरामो उउलच्छिसमत्तजायसोहे पइट्ठगंधुद्धुयाभिरामो मेरुरिव नगवरो, विगुव्वियविचित्तवेसे, दीवसमुद्दाणं असंखपरिमाणनामधेज्जाणं मज्झंकारेणं वीइवयमाणो, उज्जोयंतो पभाए विमलाए जीवलोगं बारावइं पुरवरं च कण्हस्स य तस्स पासं उवयइ दिव्वरूवधारी ।

तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिंखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए-(एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो-) ताओ उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सीहाए उद्धुयाए

---

१. वर्ग ३ का सूत्र-५.
२. वर्ग ३ का सूत्र-१२
३. इसी सूत्र में ऊपर आ गया है ।

जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतीए जेणामेव बारवईए नयरे पोसहसालाए कण्हे वासुदेवे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंतरिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिंखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए-कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"अहं णं देवाणुप्पिया ! हरिणेगमेसी देवे महिड्ढिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया ! अहं इहं हव्वमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया ! किं करेमि ? किं दलामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हिय-इच्छितं।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे तं हरिणेगमेसिं देवं अंतलिक्खपडिवन्नं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारित्ता करयलपरिग्गहियं] अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।

उसी समय वहां श्रीकृष्ण वासुदेव स्नान कर, वलिकर्म कर, कौतुक-मंगल और प्रायश्चित्त कर, वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर देवकी माता के चरण-वंदन के लिये शीघ्रतापूर्वक आये। वे कृष्ण वासुदेव देवकी माता के दर्शन करते हैं, दर्शन कर देवकी के चरणों में वंदन करते हैं। चरणवन्दन कर देवकी देवी से इस प्रकार पूछने लगे—

"हे माता ! पहले तो मैं जब-जब आपके चरण-वन्दन के लिये आता था, तब-तब आप मुझे देखते ही हृष्ट तुष्ट यावत् आनंदित हो जाती थीं, पर माँ ! आज आप उदास, चिन्तित यावत् आर्तध्यान में निमग्न-सी क्यों दिख रही हो ?"

कृष्ण द्वारा इस प्रकार का प्रश्न किये जाने पर देवकी देवी कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहने लगी—हे पुत्र ! वस्तुतः बात यह है कि मैंने समान आकृति यावत् समान रूप वाले सात पुत्रों को जन्म दिया। पर मैंने उनमें से किसी एक के भी बाल्यकाल अथवा बाल-लीला का सुख नहीं भोगा। पुत्र ! तुम भी छह छह महीनों के अन्तर से मेरे पास चरण-वंदन के लिये आते हो। अतः मैं ऐसा सोच रही हूँ कि वे माताएं धन्य हैं, पुण्यशालिनी हैं जो अपनी सन्तान को स्तनपान कराती हैं, यावत् उनके साथ मधुर आलाप-संलाप करती हैं, और उनकी बालक्रीडा के आनन्द का अनुभव करती हैं। मैं अधन्य हूँ अकृत-पुण्य हूँ। यही सब सोचती हुई मैं उदासीन होकर इस प्रकार का आर्तध्यान कर रही हूँ।

माता की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव देवकी महारानी से इस प्रकार बोले—"माताजी ! आप उदास अथवा चिन्तित होकर आर्तध्यान मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा जिससे मेरा एक सहोदर छोटा भाई उत्पन्न हो।" इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने देवकी माता को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ वचनों द्वारा धैर्य बंधाया, आश्वस्त किया। इस प्रकार अपनी माता को आश्वस्त कर श्रीकृष्ण अपनी माता के प्रासाद से निकले, निकलकर जहां पौषधशाला थी वहां आये। आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टमभक्त तप (तेला) स्वीकार करके अपने मित्र देव की आराधना की थी, उसी प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव ने भी की। विशेषता यह कि इन्होंने हरिणैगमेषी देव की आराधना की। आराधना में अष्टम भक्त तप ग्रहण किया, ग्रहण करके पौषधशाला में पौषधयुक्त होकर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके, मणि-सुवर्ण आदि के अलंकारों का त्याग करके, माला, वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र-मूसल आदि अर्थात् समस्त आरंभ-समारंभ को छोड़कर

एकाकी होकर, डाभ के संथारे पर स्थित होकर, तेला की तपस्या ग्रहण करके, हरिणैगमेषी देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करने लगे।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव का अष्टम भक्त तप प्रायः पूर्ण होने आया, तब हरिणैगमेषी देव का आसन चलायमान हुआ। अपने आसन को चलित हुआ देखकर उसने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। तब हरिणैगमेषी देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—"जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में दक्षिणार्ध भरत में द्वारका नगरी में, पौषधशाला में, कृष्ण वासुदेव अष्टमभक्त ग्रहण करके मन में पुनः पुनः मेरा स्मरण कर रहा है, अतएव मुझे कृष्ण वासुदेव के समीप प्रकट होना (जाना) योग्य है।" देव इस प्रकार विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में जाता है और वैक्रियसमुद्घात करता है अर्थात् उत्तर वैक्रिय शरीर बनाने के लिये जीव-प्रदेशों को बाहर निकालता है। जीव-प्रदेशों को बाहर निकालकर संख्यात योजन का दंड बनाता है। वह इस प्रकार—(१) कर्केतन रत्न, (२) वज्ररत्न, (३) वैडूर्य रत्न, (४) लोहिताक्ष रत्न, (५) मसारगल्ल रत्न, (६) हंसगर्भ रत्न, (७) पुलक रत्न, (८) सौगंधिक रत्न, (९) ज्योतिरस रत्न, (१०) अंक रत्न, (११) अंजन रत्न, (१२) रजत रत्न, (१३) जातरूप रत्न, (१४) अंजनपुलक रत्न, (१५) स्फटिक रत्न, (१६) रिष्ट रत्न—इन रत्नों के यथाबादर अर्थात् असार पुद्गलों का त्याग करता है और यथासूक्ष्म अर्थात् सारभूत पुद्गलों को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है) फिर कृष्ण वासुदेव पर अनुकंपा करते हुए उस देव ने अपने रत्नों के उत्तम विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर जाने के लिये शीघ्र ही गति का प्रचार किया, अर्थात् वह शीघ्रतापूर्वक चल पड़ा। उस समय चलायमान होते हुए निर्मल स्वर्ण के प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के उत्कट आडम्बर से वह दर्शनीय लग रहा था। अनेक मणियों, सुवर्ण और रत्नों के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्र से उसे हर्ष उत्पन्न हो रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुंडलों से उज्ज्वल मुख की दीप्ति से उसका रूप बड़ा ही सौम्य हो गया। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में, शनि और मंगल के मध्य में स्थित और उदयप्राप्त शारद-निशाकर के समान वह देव दर्शकों के नयनों को आनन्द दे रहा था। तात्पर्य यह है कि शनि और मंगल ग्रह के समान चमकते हुए दोनों कुण्डलों के बीच में उसका मुख शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य ओषधियों (जड़ी-बूटियों) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान, रूप से मनोहर, समस्त ऋतुओं की लक्ष्मी से वृद्धिगत शोभावाले तथा प्रकृष्ट गंध के प्रसार से मनोहर मेरु पर्वत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव ने ऐसे विचित्र वेष की विक्रिया की। वह असंख्य-संख्यक और असंख्य नामों वाले द्वीपों और समुद्रों के मध्य में होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभा से जीवलोक को तथा नगरवर द्वारका नगरी को प्रकाशित करता हुआ दिव्य रूपधारी देव कृष्ण वासुदेव के पास आ पहुँचा।

तत्पश्चात् दश के आधे अर्थात् पाँच वर्णवाले तथा घुंघरूवाले उत्तम वस्त्रों को धारण किया हुआ वह देव आकाश में स्थित होकर [कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोला—(यह एक प्रकार का गम (पाठ) है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है जो इस प्रकार है—] वह देव उत्कृष्ट त्वरावाली, कायिक चपलता वाली, अति उत्कर्ष के कारण उद्धत, शत्रु को जीतने वाली होने से जय करने वाली, निपुणता वाली और दिव्य देवगति से जहाँ जंबूद्वीप था, जहाँ भारतवर्ष था और जहाँ दक्षिणार्ध भरत था, वहीं आता है, आकर के आकाश में स्थित होकर पाँच वर्णवाले एवं

जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतीए जेणामेव बारवईए नयरे पोसहसालाए कण्हे वासुदेवे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंतरिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए-कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"अहं णं देवाणुप्पिया ! हरिणेगमेसी देवे महिड्ढिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया ! अहं इहं हव्वमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया ! किं करेमि ? किं दलामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हिय-इच्छितं।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे तं हरिणेगमेसिं देवं अंतिलिक्खपडिवन्नं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारित्ता करयलपरिग्गहियं] अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।

उसी समय वहां श्रीकृष्ण वासुदेव स्नान कर, बलिकर्म कर, कौतुक-मंगल और प्रायश्चित्त कर, वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर देवकी माता के चरण-वंदन के लिये शीघ्रतापूर्वक आये। वे कृष्ण वासुदेव देवकी माता के दर्शन करते हैं, दर्शन कर देवकी के चरणों में वंदन करते हैं। चरणवन्दन कर देवकी देवी से इस प्रकार पूछने लगे—

"हे माता ! पहले तो मैं जब-जब आपके चरण-वन्दन के लिये आता था, तब-तब आप मुझे देखते ही हृष्ट तुष्ट यावत् आनंदित हो जाती थीं, पर माँ ! आज आप उदास, चिन्तित यावत् आर्तध्यान में निमग्न-सी क्यों दिख रही हो ?"

कृष्ण द्वारा इस प्रकार का प्रश्न किये जाने पर देवकी देवी कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहने लगी—हे पुत्र ! वस्तुतः बात यह है कि मैंने समान आकृति यावत् समान रूप वाले सात पुत्रों को जन्म दिया। पर मैंने उनमें से किसी एक के भी बाल्यकाल अथवा बाल-लीला का सुख नहीं भोगा। पुत्र ! तुम भी छह छह महीनों के अन्तर से मेरे पास चरण-वंदन के लिये आते हो। अतः मैं ऐसा सोच रही हूँ कि वे माताएं धन्य हैं, पुण्यशालिनी हैं जो अपनी सन्तान को स्तनपान कराती हैं, यावत् उनके साथ मधुर आलाप-संलाप करती हैं, और उनकी बालक्रीडा के आनन्द का अनुभव करती हैं। मैं अधन्य हूँ अकृत-पुण्य हूँ। यही सब सोचती हुई मैं उदासीन होकर इस प्रकार का आर्तध्यान कर रही हूँ।

माता की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव देवकी महारानी से इस प्रकार बोले— "माताजी ! आप उदास अथवा चिन्तित होकर आर्तध्यान मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा जिससे मेरा एक सहोदर छोटा भाई उत्पन्न हो।" इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने देवकी माता को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ वचनों द्वारा धैर्य बंधाया, आश्वस्त किया। इस प्रकार अपनी माता को आश्वस्त कर श्रीकृष्ण अपनी माता के प्रासाद से निकले, निकलकर जहां पौषधशाला थी वहां आये। आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टमभक्त तप (तेला) स्वीकार करके अपने मित्र देव की आराधना की थी, उसी प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव ने भी की। विशेषता यह कि इन्होंने हरिणैगमेषी देव की आराधना की। आराधना में अष्टम भक्त तप ग्रहण किया, ग्रहण करके पौषधशाला में पौषधयुक्त होकर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके, मणि-सुवर्ण आदि के अलंकारों का त्याग करके, माला, वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र-मूसल आदि अर्थात् समस्त आरंभ-समारंभ को छोड़कर

एकाकी होकर, डाभ के संथारे पर स्थित होकर, तेला की तपस्या ग्रहण करके, हरिणैगमेषी देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करने लगे।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव का अष्टम भक्त तप प्रायः पूर्ण होने आया, तब हरिणैगमेषी देव का आसन चलायमान हुआ। अपने आसन को चलित हुआ देखकर उसने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। तब हरिणैगमेषी देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—"जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में दक्षिणार्ध भरत में द्वारका नगरी में, पौषधशाला में, कृष्ण वासुदेव अष्टमभक्त ग्रहण करके मन में पुनः पुनः मेरा स्मरण कर रहा है, अतएव मुझे कृष्ण वासुदेव के समीप प्रकट होना (जाना) योग्य है।" देव इस प्रकार विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में जाता है और वैक्रियसमुद्घात करता है अर्थात् उत्तर वैक्रिय शरीर बनाने के लिये जीव-प्रदेशों को बाहर निकालता है। जीव-प्रदेशों को बाहर निकालकर संख्यात योजन का दंड बनाता है। वह इस प्रकार—(१) कर्केतन रत्न, (२) वज्ररत्न, (३) वैडूर्य रत्न, (४) लोहिताक्ष रत्न, (५) मसारगल्ल रत्न, (६) हंसगर्भ रत्न, (७) पुलक रत्न, (८) सौगंधिक रत्न, (९) ज्योतिरस रत्न, (१०) अंक रत्न, (११) अंजन रत्न, (१२) रजत रत्न, (१३) जातरूप रत्न, (१४) अंजनपुलक रत्न, (१५) स्फटिक रत्न, (१६) रिष्ट रत्न—इन रत्नों के यथाबादर अर्थात् असार पुद्गलों का त्याग करता है और यथासूक्ष्म अर्थात् सारभूत पुद्गलों को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है) फिर कृष्ण वासुदेव पर अनुकंपा करते हुए उस देव ने अपने रत्नों के उत्तम विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर जाने के लिये शीघ्र ही गति का प्रचार किया, अर्थात् वह शीघ्रतापूर्वक चल पड़ा। उस समय चलायमान होते हुए निर्मल स्वर्ण के प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के उत्कट आडम्बर से वह दर्शनीय लग रहा था। अनेक मणियों, सुवर्ण और रत्नों के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्र से उसे हर्ष उत्पन्न हो रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुंडलों से उज्ज्वल मुख की दीप्ति से उसका रूप बड़ा ही सौम्य हो गया। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में, शनि और मंगल के मध्य में स्थित और उदयप्राप्त शारद-निशाकर के समान वह देव दर्शकों के नयनों को आनन्द दे रहा था। तात्पर्य यह है कि शनि और मंगल ग्रह के समान चमकते हुए दोनों कुण्डलों के बीच में उसका मुख शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य ओषधियों (जड़ी-बूटियों) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान, रूप से मनोहर, समस्त ऋतुओं की लक्ष्मी से वृद्धिगत शोभावाले तथा प्रकृष्ट गंध के प्रसार से मनोहर मेरु पर्वत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव ने ऐसे विचित्र वेष की विक्रिया की। वह असंख्य-संख्यक और असंख्य नामों वाले द्वीपों और समुद्रों के मध्य में होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभा से जीवलोक को तथा नगरवर द्वारका नगरी को प्रकाशित करता हुआ दिव्य रूपधारी देव कृष्ण वासुदेव के पास आ पहुँचा।

तत्पश्चात् दश के आधे अर्थात् पाँच वर्णवाले तथा घुंघरूवाले उत्तम वस्त्रों को धारण किया हुआ वह देव आकाश में स्थित होकर [कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोला—(यह एक प्रकार का गम (पाठ) है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है जो इस प्रकार है—] वह देव उत्कृष्ट त्वरावाली, कायिक चपलता वाली, अति उत्कर्ष के कारण उद्धत, शत्रु को जीतने वाली होने से जय करने वाली, निपुणता वाली और दिव्य देवगति से जहाँ जंबूद्वीप था, जहाँ भारतवर्ष था और जहाँ दक्षिणार्ध भरत था, वहीं आता है, आकर के आकाश में स्थित होकर पाँच वर्णवाले एवं

घुंघरूवाले उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए वह देव कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहने लगा—हे देवानुप्रिय ! मैं महान् ऋद्धिधारक हरिणैगमेषी देव हूँ। क्योंकि तुम पौषधशाला में अष्टम-भक्त तप ग्रहण करके मुझे मन में रखकर स्थित हो, इस कारण हे देवानुप्रिय ! मैं शीघ्र यहाँ आया हूँ। हे देवानुप्रिय ! बताओ तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ ? तुम्हें क्या दूँ ? तुम्हारे किसी सम्बन्धी को क्या दूँ ? तुम्हारा मनोवांछित क्या है ? तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने आकाशस्थित उस हरिणैगमेषी देव को देखा, और देखकर वह हृष्ट तुष्ट हुआ। पौषध को पाला-पूर्ण किया, फिर दोनों हाथ मस्तक पर जोड़कर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! मेरे एक सहोदर लघुभ्राता का जन्म हो, यह मेरी इच्छा है।

देवकी देवी को आश्वासन

१४—तए णं से हरिणेगमेसी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—होहिइ णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए। से णं उम्मुक्क जाव [बालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणग] मणुपत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडे जाव [भवित्ता आगाराओ अणगारियं] पव्वइस्सइ। कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदइ, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिवत्तइ, पडिणिवत्तित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

"होहिइ णं अम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव [कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं वग्गूहिं] आसासेई, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तब हरिणैगमेषी देव श्रीकृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोला—"हे देवानुप्रिय ! देवलोक का एक देव वहाँ का आयुष्य पूर्ण होने पर देवलोक से च्युत होकर आपके सहोदर छोटे भाई के रूप में जन्म लेगा और इस तरह आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा, पर वह बाल्यकाल बीतने पर, विज्ञ और परिणत होकर युवावस्था प्राप्त होने पर भगवान् श्रीअरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर श्रमण-दीक्षा ग्रहण करेगा।" श्रीकृष्ण वासुदेव को उस देव ने दूसरी बार, तीसरी बार भी यही कहा और यह कहने के पश्चात् जिस दिशा से आया था उसी में लौट गया।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण-वासुदेव पौषधशाला से निकले, निकलकर देवकी माता के पास आये, आकर देवकी देवी का चरण-वंदन किया, चरण-वंदन कर वे माता से इस प्रकार बोले—

"हे माता ! मेरा एक सहोदर छोटा भाई होगा। अब आप चिंता न करें। आपकी इच्छा पूर्ण होगी।" ऐसा कह करके उन्होंने देवकी माता को मधुर एवं इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ वचनों द्वारा आश्वस्त किया। आश्वस्त करके जिस दिशा से प्रादुर्भूत—प्रकट हुए थे उसी दिशा में लौट गये।

विवेचन—प्रसन्न हुआ हरिणैगमेषी देव श्रीकृष्ण को उनके सहोदर भाई होने का आश्वासन देता है परंतु साथ ही उसके दीक्षित हो जाने का सूचन भी करता है। श्रीकृष्ण माता देवकी के पास जाकर इस कार्य-सिद्धि की सूचना देते हैं। प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण द्वारा देवकी देवी को आश्वासन देने का उल्लेख किया गया है।

गजसुकुमार का जन्म

१५—तए णं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव [वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे, बाहिरओ दूमिय-घट्ठमट्ठे, विचित्तउल्लोय-चिल्लियतले, मणि-रयण-पणासियंधयारे, बहुसम-सुविभत्तदेसभाए, पंचवण्ण-सरस-सुरभिमुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलिए, कालागुरुपवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवमघमघंतगंधुद्धयाभिरामे, सुगंधि-वरगंधिए, गंधवट्टिभूए; तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए, उभओविब्बोयणे, दुहओ उण्णए, मज्झे णय-गंभीरे, गंगा-पुलिण-वालुय-उद्दाल-सालिसए, उवचिय-खोमिय-दुगुल्लपट्टपडिच्छायणे, सुविरइयरयत्ताणे, रत्तंसुय-संवुए, सुरम्मे, आइणग-रुय-बूर-णवणीय-तूलफासे, सुगंध-वरकुसुम-चुण्ण-सयणोवयारकलिए, अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्त-जागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी अयमेयारूवं ओरालं, कल्लाणं, सिवं, धण्णं, मंगल्लं सस्सिरियं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुद्धा।

हार-रयय-खीरसागर-ससंककिरण-दगरय-रययमहसिल-पंडुरतरोरुरमणिज्ज-पेच्छणिज्जं, थिर-लट्ठ-पउट्ठ-वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्खदाढाविडंबियमुहं, परिकम्मियजच्चकमलकोमल-माइअसोभंतलट्ठउट्ठं, रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालुजीहं, मूसगयपवर-कणगतावियआवत्तायंत-वट्ट-तडिविमलसरिसणयणं, विसालपीवरोरुं, पडिपुण्णविपुलखंधं, मिउसिविसयसुहुमलक्खण-पसत्थ-विच्छिण्ण-केसरसडोवसोभियं, ऊसिय-सुणिम्मिय-सुजाय-अप्फोडिय-लंगूलं, सोमं, सोमाकारं, लीलायंतं, जंभायंतं, णहयलाओ ओवयमाणं णिययवयणमइवयंतं], सीहं सुविणे पासित्ता पडिबुद्धा।

जाव [तए णं सा देवई देवी अयमेयारूवं ओरालं जाव-सस्सिरियं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूसियरोमकूवा तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव वसुदेवस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वसुदेव-रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं, पियाहिं, मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं मिय-महुर-मंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ, पडिबोहित्ता वसुदेवेणं अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणिरयण-भत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि णिसीयइ णिसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया वसुदेवं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव-संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तरिसगंसि सयणिज्जंसि सालिगण० तं चेव जाव-णियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया! एयस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ? तए णं से कण्हे राया देवईए देवीए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० जाव हयहियए धाराहयणीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयतणुय-ऊसवियरोमकूवे तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ, ईहं पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेइ तस्स० देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव मंगल्लाहिं मिय-महुर-सस्सिरि० संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—

ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, कल्लाणे णं तुमे जाव सस्सिरीए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए! रज्जलाभो देवाणुप्पिए! एवं खलु

तुमं देवाणुप्पिए ! णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणराइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं, कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडेंसयं, कुलतिलगं, कुलकित्तिकरं, कुलणंदिकरं, कुलजसकरं, कुलाधारं, कुलापायवं, कुलविवद्धणकरं, सुकुमालपाणि-पायं, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं, जाव ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं, सुरूवं, देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिसि ।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ । तं उराले णं तुमे जाव सुमिणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि, जाव मंगलकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवूहेइ ।

देवई देवी वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल० जाव एवं वयासी—"एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! से जहेयं तुज्झे वयह" त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता वसुदेवेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणि-रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियम-चवल जाव गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी—'मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अण्णेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्सइ' त्ति कट्टु देव-गुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरयं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

तए णं वसुदेवे राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंगमहाणिमित्त-सुत्तत्थधारए, विविहसत्थकुसले, सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह ।' तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता वसुदेवस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं वेइयं जेणेव सुविणलक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति । तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ० ण्हाया कय० जाव सरीरा सिद्धत्थग-हरियालिय-कयमंगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गेहेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव कण्हस्स रण्णो भवणवरवडेंसए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल वसुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति । तए णं ते सुविणलक्खणपा-ढगा वसुदेवेणं रण्णा वंदिय-पूइअ-सक्कारिअ-सम्माणिआ समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति । तए णं से वसुदेवे राया देवइं देविं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फ-फल पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—"एवं खलुदेवाणुप्पिया ! देवई देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरालस्स जाव के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए णं सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० तं सुविणं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेंति, तस्स० अण्णमण्णेणं सद्धिं संचालेंति, संचालित्ता तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा वसुदेवस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं वयासि—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, बावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा । तत्थ णं देवाणुप्पिया ! तित्थयरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तित्थयरंसि वा चक्कवट्टिंसि

वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति । तं जहा—

"गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभं ।
पउमसर-सागर-विमाण-भवण-रयणुच्चय-सिहिं च ।।"

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे सत्त महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति । बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति । मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे एगं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति । इमे य णं देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग-तुट्ठि० जाव मंगललकारए णं देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो देवाणुप्पिया ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया ! रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एवं खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव वीइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउं जाव पयाहिइ । से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे जाव रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा । तं ओराले णं देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउअ-कल्लाण० जाव दिट्ठे ।

तए णं से वसुदेवराया सुविणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल जाव कट्टु ते सुविणलक्खणपाढगे एवं वयासी—"एवमेयं देवाणप्पिया ! जाव से जहेयं तुब्भे वयह" ति कट्टु सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुविगलक्खण]पाढया [विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइम-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता पडिविसज्जेइ ।] हट्ठहियया तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ ।

तए णं सा देवई देवी नवण्हं मासाणं पडिपुण्णाणं जासुमण-रत्तबंधुजीवयलक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवायर-समप्पभं सव्वणयणकंतं-सुकुमाल जाव [पाणिपायं अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरं लक्खण-वंजण-गुणोववेअं माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगं ससि-सोमाकार-कंत-पिय-दंसणं] सुरूवं गयतालुसमाणं दारयं पयाया । जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव [तए णं ताओ अंगपडियारिओ देवइं देविं नवण्हं मासाणं जाव दारयं पयायं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं, जेणेव वसुदेवे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वसुदेवं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति । वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी नवण्हं मासाणं जाव दारगं पयाया । तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो, पियं भे भवउ ।

तए णं से वसुदेवे राया तासिं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विपुलेण य पुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता मत्थयधोयाओ करेइ, पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेइ, कप्पित्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से वसुदेवे राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बारवइं नयरिं आसित्त जाव परिगीयं करेह, करित्ता चारगपरिसोहणं करेह, करित्ता माणुम्माणवद्धणं करेह, करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । जाव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से वसुदेवे राया अट्ठारससेणीप्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए अब्भितरबाहिरिए उस्सुक्कं उक्करं अभडप्पवेसं अदंडिम-कुडंडिमं अधरिमं अधारणिज्जं अणुद्धुयमुइंगं अमिलायमल्लदामं गणियावरणाडइज्जकलियं अणेग-तालायराणुचरितं पमुइयपक्कीलियाभिरामं जहारिहं ठिइवडियं दसदिवसियं करेह, करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

ते वि करेन्ति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से वसुदेवे राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहिं दाएहिं भोगेहिं दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एवं च णं विहरइ ।

तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेन्ति, करित्ता बितियदिवसे जागरियं करेन्ति, करित्ता ततिय दिवसे चंदसूरदंसणियं करेन्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असूइजातकम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावित्ता मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणं बलं च बहवे गणणायग-दंडनायग जाव आमंतेइ ।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया महइ-महालयंसि भोयणमंडवंसि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ० गणणायग जाव सद्धि आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरइ ।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया तं मित्तनाइनियगसयण-संबंधिपरिजण० गणणायग० विपुलेणं पुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति, संमाणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—] "जम्हा णं अम्हं इमे दारगे गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एयस्स दारगस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले २ । तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरे नामं करेंति गयसुकुमालोत्ति सेसं जहा मेहे जाव[1] अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

तदनन्तर वह देवकी देवी अपने आवासगृह में शय्या पर सोई हुई थी । वह वासगृह (शयनकक्ष) [भीतर से चित्रित था, बाहर से श्वेत और घिसकर चिकना बनाया हुआ था । उसका उपरिभाग विविध चित्रों से युक्त था और नीचे का भाग सुशोभित था । मणियों और रत्नों के प्रकाश से उसका अंधकार नष्ट हो गया था । वह एकदम समतल सुविभक्त भाग वाला, पंचवर्ण के सरस और सुवासित पुष्प-पुंजों के उपचार से युक्त था । उत्तम-कालागुरु, कुन्दरुक और तुरुष्क (शिलारस) की धूप से चारों ओर सुगन्धित, सुगन्धी पदार्थों से सुवासित एवं सुगन्धित द्रव्य की गुटिका के समान था । उसमें जो शय्या थी वह तकिया सहित, सिरहाने और पायते दोनों ओर तकियायुक्त थी । दोनों ओर से उन्नत और मध्य में कुछ नमी (झुकी हुई) थी । विशाल गंगा के किनारे की रेती के अवदाल (पैर रखने से फिसल जाने) के समान कोमल, क्षोमिक—रेशमी दुकूलपट से आच्छादित, रजस्त्राण (उड़ती हुई धूल को रोकने वाले वस्त्र) से ढँकी हुई, रक्तांशुक (मच्छरदानी) सहित, सुरम्य आजिनक (एक प्रकार का चमड़े का कोमल वस्त्र) रुई, बूर, नवनीत, अर्कतूल (आक की रुई) के समान कोमल स्पर्श वाली, सुगन्धित उत्तम पुष्प, चूर्ण और अन्य शयनोपचार से युक्त थी । ऐसी शय्या पर सोई हुई देवकी देवी ने अर्द्ध निद्रित अवस्था में अर्द्ध रात्रि के समय उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलकारक और शोभन महास्वप्न देखा और जागृत हुई ।

१. वर्ग ३, सूत्र २.

मोतियों के हार, रजत, क्षीरसमुद्र, चन्द्रकिरण, पानी के बिन्दु और रजत-महाशैल (वैताढ्य पर्वत के समान) श्वेत वर्णवाला, विशाल, रमणीय और दर्शनीय स्थिर और सुन्दर प्रकोष्ठवाला, गोल-पुष्ट-सुश्लिष्ट, विशिष्ट एवं तीक्ष्ण दाढाओं से युक्त, मुँह को फाड़े हुए, सुसंस्कृत उत्तम कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत, अत्यन्त सुशोभित ओष्ठवाला, रक्तकमल के पत्र के समान अत्यन्त कोमल जीभ और तालुवाला, मूस में रहे हुए एवं अग्नि से तपाये हुए तथा आवर्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के समान वर्णवाली गोल बिजली के समान आँखों वाला विशाल और पुष्ट जंघा वाला, संपूर्ण और विपुल स्कन्ध वाला, कोमल, विशद-सूक्ष्म एवं प्रशस्त लक्षणवाली केशर से युक्त, अपनी सुन्दर तथा उन्नत पूँछ को पृथ्वी पर फटकारता हुआ, सौम्य आकार वाला, लीला करता हुआ एवं उबासी लेता हुआ सिंह अपने मुँह में प्रवेश करता स्वप्न में देखा।]

वह देवकी देवी इस प्रकार के उदार यावत् शोभावाले महास्वप्न को देखकर जागृत हुई। वह हर्षित, संतुष्टहृदय यावत् मेघ की धारा से विकसित कदम्ब पुष्प के समान रोमांचित होती हुई स्वप्न का स्मरण करने लगी। फिर रानी अपनी शय्या से उठी और शीघ्रता, चपलता, संभ्रम एवं विलम्ब से रहित राजहंस के समान उत्तम गति से चलकर, वसुदेव राजा के शयनगृह में आयी। आकर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगल, सुन्दर, मित, मधुर और मंजुल (कोमल) वाणी से बोलती हुई वसुदेव राजा को जगाने लगी। राजा जागृत हुआ। राजा की आज्ञा होने पर, रानी विचित्र मणि और रत्नों की रचना से चित्रित भद्रासन पर बैठी। सुखद आसन पर बैठने के बाद स्वस्थ एवं शांत बनी हुई देवकी देवी इष्ट, प्रिय यावत् मधुर वाणी से इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय! आज तथाप्रकार की (उपर्युक्त वर्णनवाली) सुखशय्या में सोते हुए मैंने, अपने मुख में प्रवेश करते हुए सिंह के स्वप्न को देखा है। हे देवानुप्रिय! इस उदार महास्वप्न का क्या फल होगा? देवकी देवी की यह बात सुनकर और हृदय में धारण करके राजा हर्षित और संतुष्ट हृदयवाला हुआ। मेघ की धारा से विकसित कदम्ब के सुगन्धित पुष्प के समान रोमांचित बना हुआ वह राजा, उस स्वप्न का अवग्रहण (सामान्य विचार) तथा ईहा (विशेष विचार) करने लगा। ऐसा करके अपने स्वाभाविक बुद्धि-विज्ञान से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया। तत्पश्चात् राजा इष्ट, कान्त, मंगल, मित, मधुर वाणी से बोलता हुआ इस प्रकार कहने लगा—

हे देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है। हे देवी! तुमने कल्याणकारक स्वप्न देखा है यावत् हे देवी! तुमने शोभा युक्त स्वप्न देखा है। हे देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुष्य, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है। हे देवानुप्रिये! तुम्हें अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा। देवानुप्रिये! नव मास और साढे सात दिन बीतने के बाद तुम अपने कुल में ध्वजा समान, दीपक समान, पर्वत समान, शिखर समान, तिलक समान और कुल की कीर्ति करने वाले, कुल को आनन्द देने वाले, कुछ का यश बढ़ाने वाले, कुल के लिये आधारभूत, कुल में वृक्ष समान, कुल की वृद्धि करने वाले, सुकुमाल हाथ पांव वाले, हीनतारहित पंचेन्द्रिय युक्त संपूर्ण शरीर वाले यावत् चन्द्र के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रिय-दर्शन, सुरूप एवं देवकुमार के समान कान्ति-वाले पुत्र को तुम जन्म दोगी।

वह बालक बाल वय से मुक्त होकर विज्ञ और परिणत होकर, युवावस्था को प्राप्त करके शूरवीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण और विपुल बल (सेना) तथा वाहन वाला, राज्य का स्वामी होगा। हे देवी! तुमने उदार (प्रधान) स्वप्न देखा है। इस प्रकार हे देवी! तुमने आरोग्य तुष्टि यावत

मंगलकारक स्वप्न देखा है। इस प्रकार वसुदेव राजा ने इष्ट यावत् मधुर वचनों से देवकी देवी को यही बात दो तीन बार कही। वसुदेव राजा की पूर्वोक्त बात सुनकर और अवधारण कर देवकी देवी हर्षित एवं संतुष्ट हुई और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—"हे देवानुप्रिय! आपने जो कहा है वह यथार्थ है, सत्य है और सन्देह रहित है। मुझे इच्छित और स्वीकृत है। पुनः पुनः इच्छित एवं स्वीकृत है। इस प्रकार स्वप्न के अर्थ को स्वीकार कर वसुराजा की अनुमति से भद्रासन से उठी और शीघ्रता एवं चपलता रहित गति से अपने शयनागार में आकर शय्या पर बैठी। रानी ने विचार किया 'यह मेरा उत्तम, प्रधान और, मंगलरूप स्वप्न दूसरे पाप-स्वप्नों से विनष्ट न हो जाय' अतः वह देव गुरु सम्बन्धी प्रशस्त और मंगलरूप धार्मिक कथाओं और विचारणाओं से स्वप्न-जागरण करती हुई बैठी रही।

प्रातःकाल होने पर वसुदेव राजा ने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो! तुम शीघ्र जाओ और ऐसे स्वप्नपाठकों को बुलाओ—जो अष्टांग महानिमित्त के सूत्र एवं अर्थ के ज्ञाता हों और विविध शास्त्रों के ज्ञाता हों! राजाज्ञा को स्वीकार कर कौटुम्बिक पुरुष शीघ्र, चपलतायुक्त, वेगपूर्वक एवं तीव्र गति से द्वारका नगरी के मध्य होकर स्वप्नपाठकों के घर पहुंचे और उन्हें राजाज्ञा सुनायी। स्वप्नपाठक प्रसन्न हुए। उन्होंने स्नान करके शरीर को अलंकृत किया। वे मस्तक पर सर्षप और हरी दूब से मंगल करके अपने-अपने घर से निकले और राज्य-प्रासाद के द्वार पर पहुंचे। फिर वे सभी स्वप्नपाठक एकत्रित होकर बाहर की उपस्थानशाला में आये। उन्होंने हाथ जोड़कर जय-विजय शब्दों से वसुराजा को वधाया। वसुदेव राजा से वन्दित, पूजित, सत्कृत और सम्मानित किये हुए वे स्वप्नपाठक, पहले से रखे हुए उन भद्रासनों पर बैठे। वसुराजा ने देवकी देवी को बुलाकर यवनिका के भीतर बैठाया। तत्पश्चात् हाथों में पुष्प और फल लेकर राजा ने अतिशय विनयपूर्वक उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो! आज देवकी देवी ने तथारूप (पूर्ववर्णित) वासगृह में शयन करते हुए स्वप्न में सिंह देखा। हे देवानुप्रियो! इस प्रकार के स्वप्न का क्या फल होगा?"

वसु राजा का प्रश्न सुनकर, उसका अवधारण करके स्वप्नपाठक प्रसन्न हुए। उन्होंने उस स्वप्न के विषय में सामान्य विचार किया, विशेष विचार किया, स्वप्न के अर्थ का निश्चय किया, परस्पर एक दूसरे के साथ विचार-विमर्श किया और स्वप्न का अर्थ स्वयं जानकर, दूसरे से ग्रहण कर तथा शंका-समाधान करके अर्थ का अन्तिम निश्चय किया और वसुदेव राजा को संबोधित करते हुए इस प्रकार बोले—"देवानुप्रिय! स्वप्नशास्त्र में बयालीस प्रकार के सामान्य स्वप्न और तीस महास्वप्न, इस प्रकार कुल बहत्तर प्रकार के स्वप्न कहे हैं। इनमें से तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती की माताएं, जब तीर्थंकर या चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं, चौदह महास्वप्न देखती हैं—(१) हाथी, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) अभि-षेक की हुई लक्ष्मी, (५) पुष्पमाला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य, (८) ध्वजा, (९) कुम्भ (कलश), (१०) पद्म-सरोवर, (११) समुद्र, (१२) विमान अथवा भवन, (१३) रत्न-राशि और (१४) निर्धूम अग्नि।

इन चौदह महास्वप्नों में से वासुदेव की माता, जब वासुदेव गर्भ में आते हैं तब, सात स्वप्न देखती हैं। बलदेव की माता, जब बलदेव गर्भ में आते हैं तब, इन चौदह स्वप्नों में से चार महास्वप्न देखती हैं और मांडलिक राजा की माता, इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखती हैं। हे देवानुप्रिय! देवकी देवी ने एक महास्वप्न देखा है। यह स्वप्न उदार, कल्याणकारी, आरोग्य, तुष्टि एवं मंगलकारी है। सुखसमृद्धि का सूचक है। इससे आपको अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ

और राज्य लाभ होगा। नव मास और साढे सात दिन व्यतीत होने पर देवकी देवी आपके कुल में ध्वज समान पुत्र को जन्म देंगी। यह बालक बाल्यावस्था पार कर युवक होने पर राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगार होगा। अतः हे देवानुप्रिय ! देवकी देवी ने यह उदार यावत् महाकल्याणकारी स्वप्न देखा है।

स्वप्नपाठकों से यह स्वप्न-फल सुनकर एवं अवधारण करके वसुदेव राजा हर्षित हुआ, सन्तुष्ट हुआ और हाथ जोड़कर यावत् स्वप्नपाठकों से इस प्रकार बोला—"देवानुप्रियो ! जैसा आपने स्वप्नफल बताया वह उसी प्रकार है। इस प्रकार कहकर स्वप्न का अर्थ भली-भांति स्वीकार किया। फिर स्वप्न-पाठकों को विपुल असन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकारों से सत्कृत किया, सन्मानित किया और जीविका के योग्य बहुत प्रीतिदान दिया और उन्हें जाने की अनुमति दी।] तत्पश्चात् हर्षित एवं हृष्ट-तुष्ट-हृदया होती हुई वह देवकी देवी सुखपूर्वक अपने गर्भ का पालन-पोषण करने लगी।

राजपुरुषों का प्रवेश निषिद्ध किया जाय, दंड (अपराध के अनुसार लिया जाने वाला द्रव्य) और कुदंड (अल्प दंड—बड़ा अपराध करने पर भी लिया जाने वाला थोड़ा द्रव्य) न लिया जाय, किसी को ऋणी न रहने दिया जाय अर्थात् राजा की ओर से सब का ऋण चुका दिया जाय। किसी देनदार को पकड़ा न जाय, ऐसी घोषणा कर दो। तथा सर्वत्र मृदंग आदि बाजे बजवाओ। चारों ओर विकसित ताजा फूलों की मालाएँ लटकाओ। गणिकाएँ जिनमें प्रधान हैं, ऐसे पात्रों से नाटक करवाओ। अनेक तालाचारों (प्रेक्षाकारियों) से नाटक करवाओ। ऐसा करो कि लोग हर्षित होकर क्रीडा करें। इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका करो कराओ और मेरी यह आज्ञा मुझे वापिस सौंपो।

राजा वसुदेव का यह आदेश सुनकर वे इसी प्रकार करते हैं और राजाज्ञा वापिस करते हैं।

तत्पश्चात् वसुदेव राजा बाहर की उपस्थानशाला (सभा) में, पूर्व की ओर मुख करके, श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा और सैंकड़ों, हजारों और लाखों के द्रव्य से याग (पूजन) एवं दान दिया। आय में से अमुक भाग दिया। और प्राप्त होने वाले द्रव्य को ग्रहण करता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन जातकर्म (नाल काटना आदि) किया। दूसरे दिन जागरिका (रात्रि-जागरण) किया। तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य का दर्शन कराया। इस प्रकार अशुचि जातकर्म की क्रिया सम्पन्न हुई। फिर बारहवाँ दिन आया तो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रों, बन्धु आदि ज्ञातिजनों, पुत्र आदि निजकों, काका आदि स्वजनों, श्वसुर आदि सम्बधिजनों, दास आदि परिजनों तथा सेना—और बहुत से गणनायक, दंडनायक आदि को आमंत्रण दिया।

उसके पश्चात् स्नान किया, बलिकर्म किया, मषितिलक आदि कौतुक किया, मंगल किया, प्रायश्चित्त किया और सर्व अलंकारों से विभूषित हुआ। फिर बहुत विशाल भोजन-मंडप में, उस अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का मित्र, ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परस्पर विभाजन और परिभोग करता हुआ विचरने लगा।

तीर्थंकर और चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर उनकी माताएं चौदह महास्वप्न देखती हैं। उनमें से बारहवें स्वप्न में 'विमान या भवन' देखती है। यहाँ विमान या भवन के विकल्प का आशय यह है कि जो जीव देवलोक से आकर तीर्थंकर रूप में जन्म लेता है उसकी माता स्वप्न में विमान देखती है और जो जीव नरक से आकर तीर्थंकर के रूप में जन्म लेता है उसकी माता स्वप्न में भवन देखती है।

जासुमणा..........समप्पभं पद की व्याख्या इस प्रकार है—जासुमणा-जयसुमन—जया एक वनस्पति विशेष का नाम है। इसे जासु या अडहुल भी कहते हैं। संस्कृत-शब्दार्थकौस्तुभ नामक संस्कृत कोष में जया का अर्थ—"सदावहार गुलाव का फूल या पौधा" ऐसा लिखा है। जया के फूलों को 'जासुमन' कहा जाता है, ये पुष्प रक्तवर्ण होते हैं।

रत्तबंधुजीवग—रक्तबंधु-जीवक यह शब्द रक्त और बन्धुजीवक इन दो पदों से बना है। रक्त लाल वर्ण को कहते हैं, बंधुजीवक शब्द का अर्थ होता है—गुल्म-विशेष—दुपहरिया का पौधा, जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं और जो बरसात में फूलता है। दोनों का सम्मिलित अर्थ है—लाल रंग का दुपहरियानामक एक गुल्म विशेष। आचार्य अभयदेव सूरि के अनुसार बन्धुजीवक पांच वर्णवाले पुष्प विशेष होते हैं।[1] प्रस्तुत में रक्तवर्ण अभीष्ट है, अतः सूत्रकार ने बन्धुजीवक शब्द के साथ रक्त शब्द का प्रयोग किया है। सचित्र अर्धमागधी कोष में रक्त बंधुजीवक का अर्थ—वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाला, गोगलगाय, देवगाय, इन्द्रगोप, नामक लाल रंग का जीव। अर्धमागधी कोषकार ने रक्तबन्धुजीवक शब्द का जो अर्थ लिखा है, उसे लोकभाषा में इन्द्रगोप या (वीर बहूटी) कहते हैं। यह जीव रक्तवर्ण का तथा मखमल जैसा नरम होता है।

लक्खारस—लाक्षारस—महावर, लाख के रंग का नाम है। यह रक्त होता है, इसे स्त्रियां अपने पांवों में लगाती हैं।

सरस—पारिजातक—में सरस शब्द विकसित—खिला हुआ, इस अर्थ का बोधक है। पारिजातक शब्द के अनेकों अर्थ उपलब्ध होते हैं, १—पुष्प-विशेष, २—फरहद का फूल जो रक्त वर्ण का और अत्यन्त शोभायमान होता है, ३—देववृक्ष-विशेष, ४—कल्पतरु-विशेष। प्रस्तुत में पारिजातक का अर्थ रक्तवर्णीय पुष्प ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

तरुण दिवायर—इस पद में प्रयुक्त 'तरुण' शब्द युवा अर्थ का बोधक है और मध्याह्नकाल में ही सूर्य तरुण-युवा अवस्था को प्राप्त हुआ माना जाता है, अतः मध्याह्न के सूर्य को ही 'तरुण दिवाकर' कह सकते हैं, परन्तु प्रस्तुत में यह अर्थ इष्ट नहीं है। राजकुमार गजसुकुमार का वर्ण रक्त होने से दोपहर के सूर्य के साथ उसका सादृश्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि आचार्य अभयदेव सूरि ने तरुण-दिवाकर का अर्थ उदीयमान—उदय होता हुआ सूर्य किया है। यह अर्थ उचित भी है, क्योंकि उदीयमान सूर्य का वर्ण लाल होता है, अतः राजकुमार गजसुकुमार के रक्त वर्ण के साथ इसका सम्बन्ध ठीक बैठ जाता है। इसके अतिरिक्त तरुण शब्द रक्त अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के ३४ वें अध्ययन के तेजोलेश्या-प्रकरण में लिखा है—

"हिंगुल धाउ संकासा, तरुणाइच्चसंनिभा।
सुयतुंडपईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ॥"

१. वृत्ति-पत्र-९

अर्थात् हिंगुल धातु, तरुण सूर्य, तोते की चोंच और दीपशिखा के समान तेजोलेश्या का वर्ण होता है। प्रस्तुत सूत्र में तरुण शब्द रक्त अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा तेजोलेश्या के वर्ण सम्बन्धी अर्थ की संगति नहीं हो सकती।

जपासुमन, रक्तबन्धु-जीवक, लाक्षारस, सरस पारिजातक और तरुण दिवाकर समान जिसकी प्रभा हो, कान्ति हो, चमक हो, वर्ण हो, उसको 'जपासुमन—रक्तबन्धुजीवक-लाक्षारस-सरस पारिजातक-तरुण दिवाकर-समप्रभ' कहते हैं।

गय-तालुय-समाणं—अर्थात्—गज हाथी को कहते हैं। तालु अर्थात् ऊपर के दांतों और कौवे के बीच का गड्ढा। गज के तालु को गजतालु कहते हैं। गज के तालु के समान जिसका तालु हो वह 'गज-तालु-समान' कहलाता है। वैसे सभी प्राणियों का तालु रक्त और कोमल होता है पर हाथी का तालु विशेष रूप से रक्त और कोमल माना गया है।

राजकुमार गजसुकुमार के युवक हो जाने पर उसके विवाह आदि के सम्बन्ध में क्या हुआ? इस जिज्ञासा के सम्बन्ध में सूत्रकार कहते हैं—

सोमिल ब्राह्मण

१६—तत्थ णं बारवईए नयरीए सोमिले नाम माहणे परिवसइ—अड्ढे। रिउव्वेय जाव [जजुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहासपंचमाणं, निघंटुछट्ठाणं चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं-सरहस्साणं सारए, वारए, धारए, पारए, सडंगवी, सट्ठितंतविसारए, संखाणे, सिक्खाकप्पे, वागरणे, छंदे, निरुत्ते, जोइसामयणे, अन्नेसु य बहूसु बम्हण्णएसु परिवायएसु नयेसु] सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था। तस्स सोमिल-माहणस्स सोमसिरी नामं माहणी होत्था। सूमाल०। तस्स णं सोमिलस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था। सोमाला जाव[1] सुरूवा। रूवेण जाव (जोव्वणेणं) लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था। तए णं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया जाव[2] विभूसिया, बहूहिं खुज्जाहिं जाव[3] परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी चिट्ठइ।

उस द्वारका नगरी में सोमिल नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समृद्ध था और ऋग्वेद, [यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारों वेदों, पांचवें इतिहास, तथा छट्ठे निघण्टु, इन सबके अंगोपांग सहित रहस्य का ज्ञाता था। वह इनका 'सारक' (स्मारक) अर्थात् इनको पढ़ानेवाला था, अतः इनका प्रवर्तक था अथवा जो कोई वेदादि को भूल जाता था उसको पुनः याद कराता था, अतः वह स्मारक था। वह वारक था अर्थात् जो कोई दूसरे लोग वेदादि का अशुद्ध उच्चारण करते थे, उनको रोकता था, इसलिये वह 'वारक' था। वह 'धारक' था अर्थात् पढ़े हुए वेदादि को नहीं भूलनेवाला था अपितु उनको अच्छी तरह धारण करनेवाला था। वह वेदादि का 'पारक'—पारंगत था। छह अंगों का ज्ञाता था। षष्ठितन्त्र (कापिलीय शास्त्र) में विशारद (पंडित) था। वह गणितशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, आचारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, छन्दशास्त्र, व्युतपत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, इन सब शास्त्रों में तथा दूसरे बहुत से] ब्राह्मण और पारिव्राजक सम्बन्धी शास्त्रों

१. देखिए, तृतीय वर्ग का प्रथमसूत्र।
२. देखिए, तृतीय वर्ग का नवमसूत्र।
३. देखिए, वर्ग ३, अ. १, सूत्र २।

में बड़ा निपुण था। उस सोमिल ब्राह्मण के सोमश्री नामकी ब्राह्मणी (पत्नी) थी। सोमश्री सुकुमार एवं रूपलावण्य और यौवन से सम्पन्न थी। उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री और सोमश्री ब्राह्मणी की आत्मजा सोमा नाम की कन्या थी, जो सुकोमल यावत् बड़ी रूपवती थी। रूप, आकृति तथा लावण्य-सौन्दर्य की दृष्टि से उस में कोई दोष नहीं था, अतएव वह उत्तम तथा उत्तम शरीरवाली थी। वह सोमा कन्या अन्यदा किसी दिन स्नान कर यावत् वस्त्रालंकारों से विभूषित हो, बहुत सी कुब्जाओं, यावत् महत्तरिकाओं से घिरी हुई अपने घर से बाहर निकली। घर से बाहर निकल कर जहां राजमार्ग था, वहाँ आई और राजमार्ग में स्वर्ण की गेंद से खेल खेलने लगी।

सोमिलकन्या का अन्तःपुर में प्रवेश

१७—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे। परिसा निग्गया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामरांहिं उद्धुव्वमाणीहिं बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवंदए निग्गच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गेण्हह, गेण्हित्ता कण्णंतेउरंसि पक्खिवह। तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ। तए णं कोडुंबिय जाव [पुरिसा सोमं दारियं गेण्हित्ता कण्णंतेउरंसि] पक्खिवंति।

उस काल और उस समय में अरिहंत अरिष्टनेमि द्वारका नगरी में पधारे। परिषद् धर्म-कथा सुनने को आई।

उस समय कृष्ण वासुदेव भी भगवान् के शुभागमन के समाचार से अवगत हो, स्नान कर, यावत् वस्त्रालंकारों से विभूषित हो गजसुकुमाल कुमार के साथ हाथी के होदे पर आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की माला सहित छत्र धारण किये हुए, श्वेत एवं श्रेष्ठ चामरों से दोनों ओर से निरन्तर वीज्यमान होते हुए, द्वारका नगरी के मध्य भाग से होकर अर्हत् अरिष्टनेमि के चरण-वन्दन के लिये जाते हुए, राज-मार्ग में खेलती हुई उस सोमा कन्या को देखते हैं। सोमा कन्या के रूप, लावण्य और कान्ति-युक्त यौवन को देखकर कृष्ण वासुदेव अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए। तब वह कृष्ण वासुदेव आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाते हैं। बुलाकर इस प्रकार कहते हैं—

"हे देवानुप्रियो! तुम सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ और उससे इस सोमा कन्या की याचना करो, उसे प्राप्त करो और फिर उसे लेकर कन्याओं के अन्तःपुर में पहुँचा दो। यह सोमा कन्या, मेरे छोटे भाई गजकुसुमाल की भार्या होगी।" तब आज्ञाकारी पुरुषों ने यावत् वैसा ही किया।

विवेचन—'कन्नंतेउरंसि'—इस पद में कन्या और अन्तःपुर ये दो शब्द हैं। कन्या, कुमारी या अविवाहिता लड़की का नाम है। अन्तःपुर—स्त्रियों के राजकीय आवास भवन को कहते हैं। दोनों शब्दों को मिलाने पर अर्थ होता है—वह राजमहल जिसमें अविवाहित लड़कियाँ रहती हैं। प्रस्तुत सूत्र में 'कन्नंतेउरंसि' शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि उस समय गजसुकुमाल के विवाहार्थ अनेक कुमारियां एकत्रित की गई थीं।

भगवान् अरिष्टनेमि की उपासना

१८—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जाव [जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स छत्तातिछत्तं पडागातिपडागं विज्जाहरचारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ। तंजहा—(१) सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए (२) अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए (३) एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं (४) चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं (५) मणसो एगत्तीकरणेणं। जेणामेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं] पज्जुवासइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य भाग से होते हुए निकले, [निकलकर जहां सहस्राम्रवन उद्यान था और भगवान् अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये। आकर अरिहंत अरिष्टनेमि स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओं पर पताका आदि अतिशयों को देखा तथा विद्याधरों, चारण मुनियों और जृंभक देवों को नीचे उतरते हुए एवं ऊपर उठते हुए देखा। देखकर पांच प्रकार अभिगम करके अरिहंत अरिष्टनेमि स्वामी के सन्मुख चले। वे पांच अभिगम इस प्रकार हैं—(१) पुष्प-पान आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग, (२) वस्त्र-आभूषण आदि अचित्त द्रव्यों का अत्याग, (३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासंग, (४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोड़ना और (५) मन को एकाग्र करना। ये अभिग्रह करके जहां अर्हत् भगवान् अरिष्टनेमि थे वहां आये। आकर अरिहंत अरिष्टनेमि को दक्षिण दिशा से आरम्भ करके (तीन वार) प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान् को स्तुतिरूप वन्दन किया और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके भगवान् के अत्यन्त समीप नहीं और अत्यन्त दूर भी नहीं, ऐसे समुचित स्थान पर बैठकर, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करते हुए, नमस्कार करते हुए, दोनों हाथ जोड़े, सन्मुख रहकर] उपासना करने लगे।

धर्मदेशना और विरक्ति

१९—तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मं कहेइ, कण्हे पडिगए। तए णं से गयसुकुमाले अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा, [जं नवरं, अम्मापियरं आपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्जं जाव वड्ढियकुले][1] [निसम्म हट्ठतुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं,

१. यहाँ सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जीवन को "जहा मेहो" यह कहकर मेघकुमार के समान बताकर आगे "महेलियावज्जं" पाठ दिया है, जिसका अर्थ होता है महिलारहित या अविवाहित। ज्ञाता० में मेघकुमार को विवाहित व्यक्त किया है। अतः यहाँ प्रस्तुत शब्द से दोनों की स्थिति की विभिन्नता दर्शायी है। यहाँ 'जाव' पाठ की पूर्ति हेतु इस विभिन्नता को दृष्टि में रख कर उपयुक्त पूर्ति-पाठों को नये पैरेग्राफ से शुरू किया गया है।

अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह ! नवरि देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि। तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।

तए णं से गयसुकुमाले अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव हत्थिरयणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधवरगए महयाभड—चडगर—पहकरेणं बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो एवं वयासी धन्नोसि तुमं जाया ! संपुण्णोसि तुमं जाया ! कयत्थोसि तुमं जाया ! कयलक्खणोसि तुमं जाया ! जण्णं तुमे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तए णं सा देवई देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं अस्सुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागय—रोमकूवपगलंत-चिलिणगाया[1] सोयभर-पवेवियंगी नित्तेया दीण-विमण-वयणा करयलमालिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीर-लावण्णसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण-पडंतखुम्मिय-संचुण्णियधवलवलय-पब्भट्ठ-उत्तरिज्जा सूमालविकिण्ण-केसहत्था मुच्छावसनट्ठचेय-गरुई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्कसंधि-बंधणा कोट्टिमलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिया।

तए णं सा देवई देवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गय-सीयल-जलविमल-धाराए परिसिंचमाणनिव्वावियगायलट्ठी उक्खेवय-तालविंट-वीयणग-जणियवाएणं सफुसिएणं अंतेउर-परिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगास-पवडंत-अंसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे, कलुण-विमण-दीणा रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—

"तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-ऊसासिए हियय-णंदि-जणणे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो ! तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतु-कज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

---

१. पाठान्तर—विलीणगाया

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मो ! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह—"तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदि करे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतुकज्जम्मि निराव-यक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।" एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे संझब्भरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ। के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहुं हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणिमोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरं एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—"इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए जाव पव्वइस्ससि।"- एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चु-साहिए, अग्गिसामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स विप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ ! किं पुव्विं गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति गयसुकुमालं कुमारं बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहिं संजमभउव्वेयकारियाहिं पण्णवणाहिं पण्णवेमाणा एवं वयासी—

एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खपहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोय-गमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा।

तुमं च णं जाया ! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइए विविहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए, बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे। तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी— तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—"एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे पुणरवि तं चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।" एवं खलु अम्मयाओ ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगनिप्पिवासाणं दुरणुचरे पाययजणस्स, नो चेव णं धीरस्स। निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।]

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालं आलिंगइ, आलिंगित्ता उच्छंगे निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी—'तुमं ममं सहोदरे कणीयसे भाया। तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणिं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वयाहि। अहण्णं तुमे बारवईए नयरीए महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि।' तए णं से गयसुकुमाले कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं से गयसुकुमाले कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया काम [भोगा असुई वंतासवा पित्तासवा] खेलासवा जाव [सुक्कासवा सोणियासवा दुरूय-उस्सास नीसासा दुरूय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवा अधुवा अणितिया असासया सडण-पडण-विद्धंसणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्स] विप्पजहियव्वा भविस्संति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव [मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइत्तए।

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव और गजसुकुमार कुमार प्रमुख उस सभा को धर्मोपदेश दिया। प्रभु की अमोघ वाणी सुनने के पश्चात् कृष्ण अपने आवास को लौट गये। तदनन्तर गजसुकुमार कुमार भगवान् श्री अरिष्टनेमि के पास धर्मकथा सुनकर विरक्त होकर बोले—भगवन् ! माता-पिता से पूछकर मैं आपके पास दीक्षा ग्रहण करूंगा। मेघ कुमार की तरह, विशेष रूप से माता-पिता ने उन्हें महिलावर्ज (अविवाहित अवस्था-अर्थात् विवाह और) वंशवृद्धि होने के बाद दीक्षा ग्रहण करने को कहा।

[तत्पश्चात् गजसुकुमाल (र) कुमार ने अरिहंत अरिष्टनेमि स्वामी के पास से धर्म-श्रवण करके और उसे हृदय में धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होकर अरिहंत अरिष्टनेमि स्वामी को तीन वार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूँ। मैं उस पर प्रतीति करता हूँ। मुझे निर्ग्रन्थ-प्रवचन रुचता है, अर्थात् जिनशासन के अनुसार आचरण करने की अभिलाषा करता हूँ। भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन को अंगीकार करना

चाहता हूँ। भगवन् ! यह ऐसा ही है (जैसा आप कहते हैं), यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है। भगवन् ! मैंने इसकी इच्छा की है, पुनः पुनः इच्छा की है, भगवन् ! यह इच्छित और पुनः पुनः इच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आप फरमाते हैं। विशेष बात यह है कि, हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा ले लूँ, तत्पश्चात् मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करूँगा।"

भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय ! जिससे तुझे सुख उपजे वह कर, परंतु उसमें विलम्ब न करना।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल (र) कुमार ने अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दन किया, अर्थात् उनकी स्तुति की, नमस्कार किया, स्तुति-नमस्कार करके जहां हस्तिरत्न था, वहां गये। जाकर हाथी के कन्धे पर बैठकर महान् सुभटों और विपुल समूह वाले परिवार के साथ द्वारका नगरी के बीचों-बीच होकर जहां अपना घर था, वहां आये, आकर हस्ति-स्कन्ध से उतरकर, माता-पिता के पैरों में प्रणाम करके इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैंने भगवान् अरिष्टनेमि के समीप धर्म श्रवण किया है और मैंने उसकी प्राप्ति की इच्छा की है, वार-वार इच्छा की है। वह मुझे रुचा है।'

तत्पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता इस प्रकार बोले—'पुत्र ! तुम धन्य हो, पुत्र ! तुम पुण्यवान् हो, हे पुत्र ! तुम कृतार्थ हो, कि तुमने भगवान् अरिष्टनेमि के निकट धर्म श्रवण किया है और वह धर्म भी तुम्हें इष्ट पुनः पुनः इष्ट और रुचिकर हुआ है।'

तत्पश्चात् गजसुकुमाल माता-पिता को दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगा—माता-पिता ! मैंने अरिहंत भगवान् अरिष्टनेमि के पास धर्म श्रवण किया है। उस धर्म की मैंने इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रुचिकर हुआ है। अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी अनुमति पाकर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् देवकी देवी उस अनिष्ट (अनिच्छित) अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम (मन को न रुचने वाली) पहले कभी न सुनी हुई, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण करके मनोगत महान् पुत्र-वियोग के दुःख से पीड़ित हुई। उसके रोमकूपों में पसीना आने से अंगों से पसीना झरने लगा। शोक की अधिकता से उसके अंग काँपने लगे। वह निस्तेज हो गई। दीन और विमनस्क हो गई। हथेली से मली हुई कमल की माला के समान हो गई। "मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ," यह शब्द सुनने के क्षण में ही वह दुखी और दुर्बल हो गई। वह लावण्यरहित हो गई, कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई, शरीर दुर्बल होने से उसके पहने हुए अलंकार अत्यंत ढीले हो गये, हाथों में पहने हुए, उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पड़े और चूर-चूर हो गये। उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया। सुकुमार केशपाश बिखर गया। मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट होने के कारण शरीर भारी हो गया। परशु से काटी हुई चंपकलता के समान तथा महोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् इन्द्रध्वज के समान (शोभाहीन) प्रतीत होने लगी। उसके शरीर के जोड़ ढीले पड़ गये। ऐसी वह देवकी देवी सर्व अंगों से धस्-धड़ाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पड़ी।

तत्पश्चात् वह देवकी देवी, संभ्रम के साथ शीघ्रता से, सुवर्णकलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचन की गई। अतएव उसका शरीर शीतल हो गया। उत्क्षेपक (एक प्रकार के बांस के पंखे) से, तालवृन्त (ताड़ के पत्ते के पंखे

से पकड़ी जाय, ऐसे वांस के पंखे) से उत्पन्न हुए तथा जलकणों से युक्त वायु से अन्तःपुर के परिजनों द्वारा उसे आश्वासन दिया गया। तव देवकी देवी मोतियों की लड़ी के समान अश्रुधारा से अपने स्तनों को सींचने-भिगोने लगी—रुदन करने लगी। वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना एवं लार टपकाती हुई हृदय में शोक करती हुई और विलाप करती हुई गजसुकुमाल से इस प्रकार कहने लगी—

"हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमें इष्ट है, कांत है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैर्य और विश्वास का स्थान है। कार्य करने में सम्मत (माना हुआ) है, वहुत कार्यों में वहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणों की पेटी के समान है। मनुष्य जाति में उत्तम होने के कारण रत्न है। रत्न रूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की तो बात क्या है ? हे पुत्र ! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नहीं सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र ! प्रथम तो जब तक हम जीवित हैं, तब तक मनुष्य संवंधी विपुल काम-भोगों को भोग। फिर जब हम कालगत हो जाएँ और तू परिपक्व उम्र का हो जाय-तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, कुल-वंश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप तंतु का कार्य वृद्धि को प्राप्त जाय, जव सांसारिक कार्य की अपेक्षा न रहे, उस समय तू भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना।"

तत्पश्चात् माता-पिता के द्वारा इस प्रकार कहने पर गजसुकुमाल ने माता-पिता से इस प्रकार कहा "हे माता-पिता ! आप मुझ से यह जो कहते हैं कि हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इत्यादि सब पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् सांसारिक कार्य से निरपेक्ष होकर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रजित होना—सो ठीक है, परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्य भव ध्रुव नहीं है, अर्थात् सूर्योदय के समान नियमित समय पर पुनः पुनः प्राप्त होने वाला नहीं है, नियत नहीं है अर्थात् इस जीवन में उलट-फेर होते रहते हैं, अशाश्वत है अर्थात् क्षण विनश्वर है, सैंकड़ों संकटों एवं उपद्रवों से व्याप्त है, बिजली की चमक के समान चंचल है, अनित्य है, जल के बुलबुले के समान है, दूब की नोक पर लटकने वाले जलबिन्दु के समान है, सन्ध्यासमय के बादलों के सदृश है, स्वप्न-दर्शन के समान है—अभी है और अभी नहीं है, कुष्ठ आदि से सड़ने, तलवार आदि से कटने और क्षीण होने के स्वभाव वाला है। तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता ! कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा ? अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके भगवान् अरिष्टनेमि के समीप यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।"

तत्पश्चात् माता-पिता ने गजसुकुमाल से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यह बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांसा, दूष्य-वस्त्र, मणि, मोती, शंख, सिला, मूंगा, लाल रत्न आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह इतना है कि सात पीढ़ियों तक भी समाप्त न हो। इसका तुम खूब दान करो, स्वयं भोग करो और बंटवारा करो। हे पुत्र ! यह जितना मनुष्य सम्वन्धी ऋद्धि-सत्कार का समुदाय है, उतना सव तुम भोगो। उसके वाद अनुभूत-कल्याण होकर तुम भगवान् अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेना।'

तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने माता-पिता से कहा—हे माता-पिता ! आप जो कहते हैं सो ठीक

है कि—हे पुत्र ! यह दादा, पडदादा और पिता के पडदादा से आया हुआ यावत् उत्तम द्रव्य है, इसे भोगो और फिर अनुभूतकल्याण होकर दीक्षा ले लेना। परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य सुवर्ण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है—इसे अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बँटवारा करा सकते हैं और मृत्यु आने पर यह अपना नहीं रहता है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिये समान है, अर्थात् द्रव्य उसके स्वामी का है, उसी प्रकार अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिये भी सामान्य है। यह सड़ने, पड़ने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है। (मरण) के पश्चात् या पहले अवश्य त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता ! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा ? अतएव मैं यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता जब गजसुकुमाल को विषयों के अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, संज्ञापना (संबोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से समझाने बुझाने, संबोधन करने और अनुनय करने में समर्थ न हुए तब प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य (सत्पुरुषों के लिये हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक-सर्वज्ञ कथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणों से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, संशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्तन अर्थात् माया आदि शल्यों का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग (पापों के नाश का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धि क्षेत्र का) मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है और समस्त दु:खों को पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है। जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने में निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन में दृष्टि निश्चल रखनी पड़ती है। यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इस में दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओं का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषयसुख से रहित है। इसका पालन करना गंगा नामक महानदी के पूर में सामने तिरने के समान कठिन है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है। महाशिला जैसी भारी वस्तुओं को गले में बाँधने के समान है। तलवार की धार पर चलने के समान है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों को आधाकर्मी, औद्देशिक क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोड़ा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुन: साधु के लिए मोदक रूप में तैयार किया हुआ, दुर्भिक्ष भक्त (साधु के लिये दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन) कान्तार भक्त (साधु के निमित्त अरण्य में बनाया हुआ आहार), वर्दलिका भक्त (वर्षा के समय उपाश्रय में आकर बनाया भोजन) ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कंद का भोजन, फल का भोजन, बीजों का भोजन अथवा हरित का भोजन करना भी नहीं कल्पता है। इसके अतिरिक्त हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, दु:ख सहने योग्य नहीं है। तू शीत सहने में समर्थ नहीं है, उष्ण सहने में समर्थ नहीं है। भूख नहीं सह सकता,

प्यास नहीं सह सकता, वात, पित्त, कफ और सन्निपात से होने वाले विविध रोगों (कोढ आदिको) तथा आतंकों (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊँचे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनों को, उत्पन्न हुए बाईस परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार सहन नहीं कर सकता। अतएव हे लाल ! तू मनुष्य संबंधी कामभोगों को भोग। बाद में भुक्तभोगी होकर अरिहंत अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या अंगीकार करना।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर गजसुकुमार कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आप मुझे जो यह कहते हैं सो ठीक है कि—'हे पुत्र ! निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, आदि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिए, यावत् बाद में मुक्तभोगी होकर प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना। परन्तु हे माता-पिता ! इस प्रकार यह निर्ग्रन्थ प्रवचन क्लीव-हीन संहनन वाले, कायर-चित्त की स्थिरता रहित, कुत्सित, इस लोक संबंधी विषय सुख की अभिलाषा करने वाले, परलोक के सुख की इच्छा न करने वाले, सामान्य जन के लिये ही दुष्कर है। धीर एवं दृढ़ संकल्प वाले पुरुष को इसका पालन करना कठिन नहीं है। इसका पालन करने में कठिनाई क्या है ? अतएव हे माता-पिता ! आपकी अनुमति पाकर मैं अरिहंत अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ]।

तदनन्तर कृष्ण वासुदेव गजसुकुमार के विरक्त होने की बात सुनकर गजसुकुमार के पास आये और आकर उन्होंने गजसुकुमार कुमार का आलिंगन किया, आलिंगन कर गोद में बिठाया, गोद में बिठाकर इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे सहोदर छोटे भाई हो, इसलिये मेरा कहना है कि इस समय भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर अगार से अनगार बनने रूप दीक्षा ग्रहण मत करो। मैं तुमको द्वारका नगरी में बहुत बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक से अभिषिक्त करूंगा।" तब गजसुकुमार कुमार कृष्ण वासुदेव द्वारा ऐसा कहे जाने पर मौन रहे। कुछ समय मौन रहने के बाद गजसुकुमार अपने बड़े भाई कृष्ण वासुदेव एवं माता-पिता को दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार बोले—

"हे देवानुप्रियो ! वस्तुतः मनुष्य के कामभोग एवं देह [अपवित्र, अशाश्वत क्षणविध्वंसी और मल-मूत्र-कफ-वमन-पित्त-शुक्र एवं शोणित के भंडार हैं। गंदे उच्छ्वास-निश्वास वाले हैं, खराब मूत्र, मल और पीव से अत्यन्त परिपूर्ण हैं, मल, मूत्र, कफ, नासिकामल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं। यह मनुष्य-शरीर और ये कामभोग अस्थिर हैं, अनित्य हैं एवं सड़न-गलन एवं विध्वंसी होने के कारण आगे पीछे कभी न कभी अवश्य] नष्ट होने वाले हैं। इसलिये हे देवानुप्रियो ! मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा मिलने पर मैं अरिहंत अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या (श्रमण दीक्षा) ग्रहण कर लूं।"

गजसुकुमार की दीक्षा

२०—तए णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएन्ति बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव[1] आघवित्तए ताहे अकामाइं चेव (गयसुकुमालं कुमारं) एवं वयासी—तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए।

१. पूर्व सूत्र में आगया है।

तए णं गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरं च अणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। जाव—[तए णं से गयसुकुमालस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थं, महग्घं, महरिहं विपुलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणंति। तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मा-पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं णिसीयावेंति जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं सव्विड्ढीए जाव महया रवेणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति।

महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचित्ता करयल—जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एवं वयासी—भण जाया ! किं देमो, किं पयच्छामो, किणा वा ते अट्ठो ?

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मा-पियरो एवं वयासी—इच्छामि णं अम्म-याओ कुत्तिया-वणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं कासवगं च सद्दाविउं। णिक्खमणं जहा महब्बलस्स[1]।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो कोडंबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, सयसहस्सेण कासवगं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं, तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति। तए णं से कासवए गय-कुमारस्स पिउणा कोडुंबिय-पुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल॰ गयसुकुमालस्स कुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए करणिज्जं ? तए णं से गय-सुकुमालस्स पिया तं कासवगं एवं वयासी—तुमं देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेहि। तए णं से कासवे एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ करयल जाव एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठ-पडलाए पोत्तीए मुहं बंधइ, मुहं बंधित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ।

तए णं सा गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया देवई देवी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चेइ, अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चित्ता सुद्धे वत्थे बंधइ, सुद्धे वत्थे बंधित्ता रयणकरंडगंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिण्णमुत्तावलिप्पगासाइं सुयवियोग-दूसहाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एवं वयासी—एस णं अम्हं गयसुकुमालस्स कुमारस्स बहुसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ इत्ति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेइ।

तए णं तस्स गय-सुकुमालस्स अम्मापियरो दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति

---

१. महाबल के वर्णन में इस पाठ हेतु—"किं पयच्छामो, सेसं जहा जमालिस्स तहेव जाव तएणं"—दिया है। अतः प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ महाबल, जमालि आदि के वर्णनों के आधार पर यथावश्यक रूप से गुंफित किया है।

सेया० ण्हावित्ता पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेंति, लूहित्ता सरसेणं गोसीस-चंदणेणं गायाइं अणुलिंपंति अणुलिंपित्ता णासाणिस्सासवायवोज्झं, चक्खुहरं, वण्ण-फरिसजुत्तं, हयलालापेलवाऽइरेगं, धवलं, कणगखचितंतकम्मं, महरिहं, हंसलक्खणपडसाडगं परिहिंति, परिहित्ता हारं पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता अद्धहारं पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता एवं जहा सूरियाभस्स अलंकारो तहेव जाव चित्तं रयणसंकडुक्कडं मउडं पिणिद्धंति; किं बहुणा ? गंथिम-वेढिम-पूरिम संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेंति।

तए णं तस्स गय-कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं, लीलट्ठियसालभंजियागं जहा रायप्पसेणइज्जे विमाण-वण्णओ, जाव मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति। तए णं से गयसुकुमाले कुमारे केसालंकारेणं, वत्थालंकारेणं, मल्लालंकारेणं, आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता सीयं अणुप्पदा-हिणीकरेमाणे सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाऽभिमुहे सण्णिसण्णे।

तए णं तस्स गयकुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मधाई ण्हाया जाव सरीरा, रयहरणं पडिग्गहं च गहाय सीहं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरूहइ, सीयं दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगयगय जाव रूप-जोव्वण-विलासकलिया सुंदर-थण० हिम-रयय-कुमुद-कुंदेन्दुप्पगासं सकोरंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं उवरिं धारेमाणी धारमाणी चिट्ठइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स उभओ पासिं दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारु जाव कलियाओ, णाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिहतवणिज्जुज्जलविचित्त-दंडाओ, चिल्लियाओ, संखंक-कुन्देन्दु-दगरय-अमयमहियफेणपुंजसण्णिकासाओ धवलाओ चामराओ गहाय सलीलं वीयमाणीओ वीयमाणीओ चिट्ठंति। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारगार जाव कलिया सेयं रययामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकिइसमाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ। तए णं तस्स गयसुकुमा-लस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारागार जाव कलिया चित्तकणगदंडं तालवेंटं गहाय चिट्ठइ।

तए णं तस्स गयसुकुमाल-कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसयं, सरित्तयं, सरिव्वयं, सरिसलावण्ण-रूप-जोव्वण-गुणोववेयं, एगाभरण-वसणगहियणिज्जोयं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सरिसयं सरित्तयं जाव सद्दावेंति। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठ ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता एगाभरण-वसण-गहिय-णिज्जोया जेणेव गयकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावित्ता एवं वयासी-संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं अम्हेहिं करणिज्जं। तए णं से गयकुमारस्स पिया तं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं पि एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियणिज्जोआ गयसुकुमालस्स कुमारस्स सीयं परिवहेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स जाव पडिसुणित्ता ण्हाया जाव गहिय-णिज्जोआ गयसुकु-मालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं परिवहंति।

तए णं गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरं च अणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। जाव—[तए णं से गयसुकुमालस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थं, महग्घं, महरिहं विपुलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणंति। तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मा-पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं णिसीयावेंति जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं सव्विड्ढीए जाव महया रवेणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति।

महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचित्ता करयल—जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एवं वयासी—भण जाया ! किं देमो, किं पयच्छामो, किणा वा ते अट्ठो ?

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मा-पियरो एवं वयासी—इच्छामि णं अम्म-याओ कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं कासवगं च सद्दाविउं। णिक्खमणं जहा महब्बलस्स[1]।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो कोडंबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, सयसहस्सेण कासवगं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं, तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति। तए णं से कासवए गय-कुमारस्स पिउणा कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० गयसुकुमालस्स कुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए करणिज्जं ? तए णं से गय-सुकुमालस्स पिया तं कासवगं एवं वयासी—तुमं देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेहि। तए णं से कासवे एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ करयल जाव एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुहं बंधइ, मुहं बंधित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ।

तए णं सा गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया देवई देवी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चेइ, अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चित्ता सुद्धे वत्थे बंधइ, सुद्धे वत्थे बंधित्ता रयणकरंडगंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिण्णमुत्तावलिप्पगासाइं सुयवियोग-दूसहाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एवं वयासी—एस णं अम्हं गयसुकुमालस्स कुमारस्स बहुसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ इत्ति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेइ।

तए णं तस्स गय-सुकुमालस्स अम्मापियरो दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति

---

१. महाबल के वर्णन में इस पाठ हेतु—किं पयच्छामो, सेसं जहा जमालिस्स तहेव जाव तएणं"—दिया है। अतः प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ महाबल, जमालि आदि के वर्णनों के आधार पर यथावश्यक रूप से गुंफित किया है।

सेया० ण्हावित्ता पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेंति, लूहित्ता सरसेणं गोसीस-चंदणेणं गायाइं अणुलिंपंति अणुलिंपित्ता णासाणिस्सासवायवोज्झं, चक्खुहरं, वण्ण-फरिसजुत्तं, हयलालापेलवाऽइरेगं, धवलं, कणगखचितंतकम्मं, महरिहं, हंसलक्खणपडसाडगं परिहिंति, परिहित्ता हारं पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता अद्धहारं पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता एवं जहा सूरियाभस्स अलंकारो तहेव जाव चित्तं रयणसंकडुक्कडं मउडं पिणिद्धेंति; किं बहुणा ? गंथिम-वेढिम-पूरिम संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेंति ।

तए णं तस्स गय-कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं, लीलट्ठियसालभंजियागं जहा रायप्पसेणइज्जे विमाण-वण्णओ, जाव मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति । तए णं से गयसुकुमाले कुमारे केसालंकारेणं, वत्थालंकारेणं, मल्लालंकारेणं, आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता सीयं अणुप्पदा-हिणीकरेमाणे सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाऽभिमुहे सण्णिसण्णे ।

तए णं तस्स गयकुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा । तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मधाई ण्हाया जाव सरीरा, रयहरणं पडिग्गहं च गहाय सीहं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरूहइ, सीयं दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा । तए णं तस्स गयसुकुमालस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगयगय जाव रूप-जोव्वण-विलासकलिया सुंदर-थण० हिम-रयय-कुमुद-कुंदेन्दुप्पगासं सकोरंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं उवरिं धारेमाणी धारमाणी चिट्ठइ । तए णं तस्स गयसुकुमालस्स उभओ पासिं दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारु जाव कलियाओ, णाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिहतवणिज्जुज्जलविचित्त-दंडाओ, चिल्लियाओ, संखंक-कुन्देन्दु-दगरय-अमयमहियफेणपुंजसण्णिकासाओ धवलाओ चामराओ गहाय सलीलं वीयमाणीओ वीयमाणीओ चिट्ठंति । तए णं तस्स गयसुकुमालस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारगार जाव कलिया सेयं रययामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकिइसमाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ । तए णं तस्स गयसुकुमा-लस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारागार जाव कलिया चित्तकणगदंडं तालवेंटं गहाय चिट्ठइ ।

तए णं तस्स गयसुकुमाल-कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसयं, सरित्तयं, सरिव्वयं, सरिसलावण्ण-रूप-जोव्वण-गुणोववेयं, एगाभरण-वसणगहियणिज्जोयं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सद्दावेह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सरिसयं सरित्तयं जाव सद्दावेंति । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठ ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता एगाभरण-वसण-गहिय-णिज्जोया जेणेव गयकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावित्ता एवं वयासी-संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं अम्हेहिं करणिज्जं । तए णं से गयकुमारस्स पिया तं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं पि एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियणिज्जोआ गयसुकुमालस्स कुमारस्स सीयं परिवहेह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स जाव पडिसुणित्ता ण्हाया जाव गहिय-णिज्जोआ गयसुकु-मालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं परिवहंति ।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया; तं जहा-सोत्थिय-सिरिवच्छ जाव दप्पणा; तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं जहा उववाइए, जाव गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया; एवं जहा उववाइए तहेव भाणियव्वं जाव आलोयं च करेमाणा जयजयसद्दं च पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं बहवे उग्गा भोगा जहा उववाइए जाव महापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता, गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तए णं से गयसुकुमाल-कुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, महयाभडचडगर जाव परिक्खित्ते गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स—कुमारस्स पुरओ महं आसा आसवरा, उभओ पासिं णागा, णागवरा, पिट्ठओ रहा, रहसंगेल्ली। तए णं से गयसुकुमाल-कुमारे अब्भुग्गयभिंगारे, परिग्गहियतालियंटे, ऊसवियसेयछत्ते, पवीइयसेयचामरबालवीयणाए, सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं, तयाणंतरं च बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा, जाव वीणग्गाहा; तयाणंतरं च णं अट्ठसयं गयाणं, अट्ठसयं तुरयाणं अट्ठसयं रहाणं; तयाणंतरं च णं लउड-असि-कोंतहत्थाणं बहूणं पायत्ताणीणं पुरओ संपट्ठियं; तयाणंतरं च णं बहवे राईसर-तलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ संपट्ठिया बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहओ अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं तस्स गयसुकुमाल-कुमारस्स बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छमाणस्स सिंघाडगतिय-चउक्क जाव पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा उववाइए, जाव अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी-जय जय णंदा! धम्मेणं, जय जय णंदा! तवेणं, जय जय णंदा! भद्दं ते अभग्गेहिं णाणदंसण-चरित्तमुत्तमेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं; जियविग्घो वि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, णिहणाहि य राग-दोसमल्ले, तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठ कम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च धीर! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं च णाणं, गच्छ य मोक्खं परं पदं जिणवरोवदिट्ठेणं सिद्धिमग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमुं, अभिभविय गामकंटकोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घमत्थु, त्ति कट्टु अभिणंदंति, य अभित्थुणंति य।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे बारवईए नयरीए मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थगराइसेए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ। तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु भंते! गयसुकुमाले कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव किमंग! पुण पासणयाए, से जहाणामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव सहस्सपत्ते इ वा पंके जाए जले संवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएणं, णोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव गयसुकुमाले कुमारे कामेहिं जाए, भोगेहिं संवुड्ढे णोवलिप्पइ कामरएणं णोवलिप्पइ भोगरएणं णोवलिप्पइ मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधिपरिजणेणं। एस णं देवाणुप्पिया! संसारभयुव्विग्गे भीए

जम्मण-मरणेणं; देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वतेइ; तं एयं णं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सीसभिक्खं।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी-अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ! तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहया अरिट्ठणेमिणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता उत्तर—पुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्ला-लंकारं ओमुयइ। तए णं सा गयसुकुमाल-कुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्ला-लंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारि जाव विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी-घडियव्वं जाया ! जइयव्वं जाया ! परिक्कमियव्वं जाया ! अस्सिं च णं अट्ठे, णो पमाएयव्वं ति कट्टु गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मा-पियरो अरिट्ठणेमिं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता जाव नमंसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य। से जहाणामए केई गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि, जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए, तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ एस से नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि एगे आया भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेस्सासिए संमए अणुमए बहुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खेमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयरं विणयवेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।

तए णं अरिट्ठनेमी अरहा गयसुकुमालं कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि वि पमाइयव्वं। तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ], तमाणाए तहा जाव [गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमेइ,] से गयसुकुमाले अणगारे जाए ईरियासमिए जाव [भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए, उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्तिंदिए] गुत्तबंभयारी, इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।

तदन्तर गजसुकुमाल कुमार को कृष्ण-वासुदेव और माता-पिता जब बहुत-सी अनुकूल और स्नेह भरी युक्तियों से भी समझाने में समर्थ नहीं हुए तब निराश होकर श्रीकृष्ण एवं माता-पिता इस प्रकार बोले—

"यदि ऐसा ही है तो हे पुत्र ! हम एक दिन ही तुम्हारी राज्यश्री (राजवैभव की शोभा) देखना चाहते हैं । इसलिये तुम कम से कम एक दिन के लिये तो राजलक्ष्मी को स्वीकार करो ।" तब गजसुकुमार कुमार वासुदेव कृष्ण और माता-पिता की इच्छा का अनुसरण करके चुप रह गए ।

इसके बाद गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और इस प्रकार कहा—[देवानुप्रियो ! शीघ्र ही इस द्वारका नगरी के बाहर और भीतर पानी का छिटकाव करो । झाड़-बुहार कर जमीन को साफ करो, इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार कार्य करके उन पुरुषों ने आज्ञा वापस सौंपी ।] इसके पश्चात् उसने सेवक पुरुषों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र गजसुकुमाल कुमार के महार्थ, महामूल्य, महार्ह (महान् पुरुषों के योग्य) और विपुल राज्याभिषेक की तैयारी करो । सेवक पुरुषों ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी । इसके पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता ने उन्हें उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुंह करके बैठाया । और एक सौ आठ सुवर्ण-कलशों से राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से सर्वऋद्धि द्वारा यावत् महाशब्दों द्वारा राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया । अभिषेक करके हाथ जोड़कर यावत् जय-विजय शब्दों से बधाया । बधाकर वे इस प्रकार बोले—"हे पुत्र ! हम तुझे क्या देवें ? तेरे लिये क्या कार्य करें ? तेरा क्या प्रयोजन है ?" तब गजसुकुमाल ने इस प्रकार कहा —"हे माता-पिता ! मैं कुत्रिकापण (कु अर्थात् पृथ्वी, त्रिक अर्थात् तीन, आपण अर्थात् दूकान । स्वर्ग, मर्त्य और पाताल रूप तीन लोकों में रही हुई वस्तुएँ मिलने का देवाधिष्ठित स्थान,) से रजोहरण और पात्र मंगवाना तथा नापित को बुलाना चाहता हूँ । तब गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही भंडार में से तीन लाख सोनैये निकालो । उनमें से दो लाख सोनैया देकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मँगाओ और एक लाख सोनैया देकर नाई को बुलाओ । उपर्युक्त आज्ञा सुनकर हर्षित और तुष्ट हुए सेवकों ने हाथ जोड़कर स्वामी के वचनों को स्वीकार किया और भंडार में से तीन लाख सुवर्ण-मुद्राएं निकालकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए तथा नाई को बुलाया । गजसुकुमाल के पिता के सेवक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर नाई बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने स्नानादि किया और अपने शरीर को अलंकृत किया । फिर गजसुकुमाल के पिता के पास आया, आकर उन्हें जय-विजय शब्दों से बधाया और इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय ! मेरे करने योग्य कार्य कहिये ।" गजसुकुमाल के पिता ने नापित से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय ! गजसुकुमाल कुमार के अग्रकेश अत्यन्त यत्नपूर्वक चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण के योग्य काटो ।" तब गजसुकुमाल कुमार के पिता की आज्ञा सुनकर नापित अत्यंत प्रसन्न हुआ और दोनों हाथ जोड़कर बोला—'स्वामिन् ! जैसी आपकी आज्ञा' इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार किया । फिर सुगन्धित गन्धोदक से हाथ-पैर धोये और शुद्ध आठ पट वाले वस्त्र से मुँह बाँधा, फिर अत्यन्त यत्नपूर्वक गजसुकुमाल कुमार के, निष्क्रमण योग्य चार अंगुल अग्रकेश छोड़कर शेष केशों को काटा ।

तदनन्तर गजसुकुमाल की माता ने हंस के समान श्वेत वस्त्र में उन अग्रकेशों को ग्रहण किया । सुगन्धित गन्धोदक से धोया । उत्तम और प्रधान गन्ध तथा माला द्वारा उनका अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र में बाँधकर उन्हें रत्नकरंडिये में रखा । इसके बाद गजसुकुमाल कुमार की माता, पुत्र-वियोग से रोती हुई हार, जल-धारा, सिन्दुवार वृक्ष के पुष्प और टूटी हुई मोतियों

की माला के समान आँसू गिराती हुई इस प्रकार बोली—"ये केश हमारे लिये बहुत-सी तिथियों, पर्वों, उत्सवों, नागपूजादि रूप यज्ञों और महोत्सवों में गजसुकुमाल कुमार के अन्तिम दर्शन-रूप या पुनः पुनः दर्शनरूप होंगे। ऐसा विचार कर उसने उन्हें अपने तकिये के नीचे रख लिया।

इसके बाद गजसुकुमाल कुमार के माता-पिता ने उत्तर दिशा की ओर दूसरा सिंहासन रखवाया और गजसुकुमाल कुमार को सोने चाँदी के कलशों से स्नान करवाया। फिर सुगन्धित गन्धकाषायित (गन्ध-प्रधान लाल) वस्त्र से उसके अंग पोंछे। गोशीर्ष चन्दन से गात्रों का विलेपन किया। तत्पश्चात् उसे पटशाटक (रेशमी वस्त्र) पहनाया। वह नासिका के निश्वास की वायु से भी उड़ जाय ऐसा हल्का था, नेत्रों को अच्छा लगने वाला, सुन्दर वर्ण और कोमल स्पर्श से युक्त था। वह वस्त्र घोड़े के मुख की लार से भी अधिक मुलायम था, श्वेत था, उसके किनारों में सोने के तार थे। महामूल्यवान् और हंस के चिह्न से युक्त था। फिर हार (अठारह लड़ी वाला) और अर्द्धहार पहनाया। अधिक क्या कहा जाय, ग्रंथिम (गूँथी हुई) वेष्टित (वींटी हुई) पूरिम (पूर कर बनाई हुई) और संघातिम (परस्पर संघात की हुई) मालाओं से कल्प वृक्ष के समान गजसुकुमार को अलंकृत एवं विभूषित किया गया। इसके बाद उसके पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! सैकड़ों स्तम्भों से युक्त लीला करती पुतलियों से युक्त इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित विमान के समान यावत् मणिरत्नों की घण्टिकाओं के समूहों से युक्त, हजार पुरुषों द्वारा उठाने योग्य शिबिका (पालकी) तैयार करके मुझे निवेदन करो।" इसके बाद गजसुकुमाल कुमार केशालंकार, वस्त्रालंकार, मालालंकार और आभरणालंकार, इन चार प्रकार के अलंकारों से अलंकृत और विभूषित होकर सिंहासन से उठा। वह प्रदक्षिणा करके शिबिका पर चढ़ा और पूर्व की ओर मुँह करके श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार की माता, स्नानादि करके यावत् शरीर को अलंकृत करके हंस के चिह्न का पटशाटक लेकर प्रदक्षिणा करके शिबिका पर चढ़ी और गजसुकुमाल के दाहिनी ओर उत्तम भद्रासन पर बैठी। फिर गजसुकुमाल की धायमाता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलंकृत करके रजोहरण और पात्र लेकर प्रदक्षिणा करके शिविका पर चढ़ी और गजसुकुमाल के बाँई ओर उत्तम भद्रासन पर बैठी। इसके बाद गजसुकुमाल के पीछे मनोहर आकार और सुन्दर वेष वाली, सुन्दर गतिवाली, सुन्दर शरीरवाली यावत् रूप और यौवन के विलास से युक्त एक युवती हिम, रजत, कुमुद, मोगरे के फूल और चन्द्रमा के समान श्वेत कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र हाथ में लेकर, लीलापूर्वक धारण करती हुई खड़ी हुई। फिर गजसुकुमाल के दाहिनी तथा बाँयी ओर, शृंगार के आगार के समान मनोहर आकार वाली और सुन्दर वेषवाली उत्तम दो युवतियाँ दोनों ओर चामर ढुलाती हुई खड़ी हुईं। वे चामर मणि, कनक, रत्न, और महामूल्यवान् विमल तपनीय (रक्त सुवर्ण) से बने हुए, विचित्र दण्ड वाले थे और शंख, अंकरत्न, मोगरा के फूल, चन्द्र, जल-बिन्दु और मथे हुए अमृत के फेन के समान श्वेत थे। इसके बाद गजसुकुमाल के उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान कोण) में शृंगार सहित उत्तम वेषवाली एक उत्तम स्त्री श्वेत रजतमय पवित्र पानी से भरा हुआ, उन्मत्त हाथी के मुख के आकार वाला कलश लेकर खड़ी हुई। गजसुकुमाल के दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) में, शृंगार के घर के समान उत्तम वेषवाली एक उत्तम स्त्री विचित्र सोने के दण्डवाला पंखा लेकर खड़ी हुई।

तब गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानु-

प्रियो ! समान त्वचावाले, समान उम्रवाले, समान रूप-लावण्य और यौवन गुणों से युक्त तथा एक समान आभूपण और वस्त्र पहने हुए एक हजार उत्तम युवक पुरुषों को बुलाओ।" सेवक पुरुषों ने स्वामी के वचन स्वीकार कर शीघ्र ही हजार पुरुषों को बुलाया। वे हजार पुरुष हर्षित और तुष्ट हुए। वे स्नानादि करके एक समान आभूषण और वस्त्र पहनकर गजसुकुमाल के पिता के पास आये और हाथ जोड़कर, बधाकर, इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय ! हमारे योग्य जो कार्य हो वह कहिये।' तब गजसुकुमाल के पिता ने उनसे कहा—"देवानुप्रियो ! तुम सब गजसुकुमाल कुमार की शिविका को वहन करो। उन्होंने शिविका वहन की। जब गजसुकुमार शिविका पर आरूढ हो गए तो सब से आगे आठ मंगल अनुक्रम से चले। यथा :—(१) स्वस्तिक, (२) श्रीवत्स, (३) नन्दावर्त, (४) वर्धमानक, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य और (८) दर्पण। इन आठ मंगलों के पीछे पूर्ण कलश चला, इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् गगनतल को स्पर्श करती हुई वैजयन्ती (ध्वजा) चली। लोग जय-जयकार करते हुए अनुक्रम से आगे चले। इसके बाद उग्रकुल, भोगकुल में उत्पन्न पुरुष यावत् बहुसंख्यक पुरुषों के समूह गजसुकुमाल के आगे पीछे और आसपास चलने लगे।

स्नात एवं विभूषित गजसुकुमाल के पिता हाथी के उत्तम कंधे पर चढ़े। कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किये हुए, दो श्वेत चामरों से बिंजाते हुए, अश्व, हाथी, रथ और सुभटों से युक्त, चतुरंगिनी सेना सहित और महासुभटों के वृन्द से परिवृत गजसुकुमाल के पिता उसके पीछे चलने लगे।

गजसुकुमाल के आगे महान् और उत्तम घोड़े, दोनों ओर उत्तम हाथी, पीछे रथ और रथ का समूह चला। इस प्रकार ऋद्धि सहित यावत् वाद्यों के शब्दों से युक्त गजसुकुमाल चलने लगे। उनके आगे कलश और तालवृन्त लिये हुए पुरुष चले। उनके सिर पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था। दोनों ओर श्वेत चामर और पंखे बिंजाये जा रहे थे। इनके पीछे बहुत-से लाठी वाले, भाला वाले, पुस्तकवाले यावत् वीणावाले पुरुष चले। उनके पीछे एक सौ आठ हाथी, एक सौ आठ घोड़े और एक सौ आठ रथ चले। उसके बाद लकड़ी, तलवार, भाला लिये हुए पदाति पुरुष चले। उनके पीछे बहुत-से युवराज, धनिक, तलवर, यावत् सार्थवाह आदि चले। इस प्रकार द्वारका नगरी के बीच में चलते हुए नगर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में अरिहंत अरिष्टनेमि के पास जाने लगे।

द्वारका नगरी के बीच से निकलते हुए गजसुकुमाल कुमार को शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गों में बहुत से धनार्थी, भोगार्थी और कामार्थी पुरुष, अभिनन्दन करते हुए एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्द (आनन्द दायक)! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। हे नन्द ! अखण्डित उत्तम ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा अविजित इन्द्रियों को जीतो और श्रमण धर्म का पालन करो। धैर्य रूपी कच्छ को मजबूत बाँधकर सर्व विघ्नों को जीतो। इन्द्रियों को वश करके परिषह रूपी सेना पर विजय प्राप्त करो। तप द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लों पर विजय प्राप्त करो और उत्तम शुक्ल-ध्यान द्वारा अष्ट कर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करो। हे धीर ! तीन लोक रूपी विश्व-मण्डप में आप आराधना रूपी पताका लेकर अप्रमत्ततापूर्वक विचरण करें और निर्मल, विशुद्ध, अनुत्तर केवल-ज्ञान प्राप्त करें तथा जिनवरोपदिष्ट सरल सिद्धि-मार्ग द्वारा परम पद रूप मोक्ष को प्राप्त करें। आपके धर्म-मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न नहीं हो।" इस प्रकार लोग अभिनन्दन और स्तुति करने लगे।

तब वे गजसुकुमाल कुमार द्वारका नगरी के मध्य से होते हुए नगरी के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में आये और तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयों को देखते ही सहस्रपुरुषवाहिनी शिविका से नीचे उतरे। फिर गजसुकुमाल को आगे करके उनके माता-पिता, अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए और भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोले—"भगवन् ! यह गजसुकुमाल कुमार हमारा इकलौता प्रिय और इष्ट पुत्र है। इसका नाम सुनना भी दुर्लभ है, तो दर्शन दुर्लभ हो इसमें तो कहना ही क्या। जिस प्रकार कीचड़ में उत्पन्न और पानी में बड़ा होने पर भी कमल, पानी और कीचड़ से निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार गजसुकुमाल कुमार भी काम से उत्पन्न हुआ और भोगों से बड़ा हुआ, परन्तु वह काम-भोगों में किंचित् भी आसक्त नहीं है। मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों में लिप्त नहीं है। भगवन् ! यह गजसुकुमाल संसार के भय से उद्विग्न हुआ है, जन्म-मरण के भय से भयभीत हुआ है। यह आपके पास मुण्डित होकर अनगारधर्म स्वीकार करना चाहता है। अतः हे भगवन् ! हम आपको शिष्य रूपी भिक्षा देते हैं। आप इसे स्वीकार करें।"

तत्पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल कुमार से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।" भगवान् के ऐसा कहने पर गजसुकुमाल कुमार हर्षित और तुष्ट हुआ और भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा कर यावत् वन्दना नमस्कार कर, उत्तर पूर्व (ईशानकोण) में गया। उसने स्वयमेव आभरण माला और अलंकार उतारे। उसकी माता ने उन्हें हंस के चिह्न वाले पटशाटक (वस्त्र) में ग्रहण किया। फिर हार और जलधारा के समान आंसू गिराती हुई, अपने पुत्र से इस प्रकार बोली—"हे पुत्र ! संयम में यत्न करना, संयम में पराक्रम करना। संयम में किंचित्मात्र भी प्रमाद मत करना।" इस प्रकार कहकर गजसुकुमाल कुमार के माता-पिता भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में वापस लौट गये।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया और लोच करके जहाँ अरिहंत अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये। आकर भगवान् अरिष्टनेमि को तीन बार दाहिनी ओर से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—

"भगवन् ! यह संसार जरा-मरण रूप अग्नि से आदीप्त है, प्रदीप्त है। हे भगवन् ! यह संसार आदीप्त-प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथापति घर में आग लग जाने पर, उस घर में जो अल्प भार वाली और बहुमूल्य वस्तु होती है उसे, ग्रहण करके स्वयं एकान्त में चला जाता है। वह सोचता है कि—"अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिये आगे-पीछे हित के लिये, सुख के लिये, क्षमा (समर्थता) के लिये, कल्याण के लिये और भविष्य में उपयोग के लिये होगा। इसी प्रकार मेरा भी यह आत्मा रूपी भांड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है। इस आत्मा को मैं निकाल लूँगा—जरा-मरण की अग्नि में भस्म होने से बचा लूँगा, तो यह संसार का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूँ कि देवानुप्रिय (आप) स्वयं ही मुझे प्रव्रजित करें—मुनिवेष प्रदान करें, स्वयं ही मुझे मुंडित करें—मेरा लोच करें, स्वयं ही प्रतिलेखन आदि सिखाएँ, स्वयं ही सूत्र और उसका अर्थ प्रदान करके शिक्षा दें, स्वयं ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल) चरणसत्तरी, करणसत्तरी, संयमयात्रा और मात्रा (भोजन के परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करें।

तत्पश्चात् अरिहंत अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल को स्वयं ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वयं ही यावत् आचार गोचर आदि धर्म की शिक्षा दी कि—हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार—पृथ्वी पर युग मात्र दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार—निर्जीव भूमि पर खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार—भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार सामायिक का उच्चारण करके शरीर की प्रमार्जना करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार—वेदना आदि के कारणों से निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार—हित, मित और मधुर भाषण करना चाहिए। इस प्रकार अप्रमत्त एवं सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय) भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पंचेन्द्रियों) और सत्त्व (शेष एकेन्द्रिय) की रक्षा करके संयम का पालन करना चाहिए। इस विषय में तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने अरिष्टनेमि अर्हत् के निकट इस प्रकार का धर्म सम्बन्धी यह उपदेश सुनकर और हृदय में धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अंगीकार किया। वह भगवान् की आज्ञा के अनुसार गमन करते, उसी प्रकार बैठते, यावत् सावधान रहकर अर्थात् प्रमाद और निद्रा का त्याग करके प्राणों भूतों जीवों और सत्वों की यतना करके संयम की आराधना करने लगे] अनगार बनकर वे गजसुकुमाल मुनि ईर्यासमिति, [भाषा समिति, एषणासमिति, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणसमिति और उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिस्थापनिकासमिति, एवं मनःसमिति, वचनसमिति, काय समिति का सावधानीपूर्वक पालन करने लगे। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से रहने लगे। इन्द्रियों को वश में रखने वाले] गुप्तब्रह्मचारी बन कर एवं इसी निर्ग्रन्थप्रवचन को सन्मुख रख कर विचरने लगे।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रों में श्रीकृष्ण महाराज तथा राजकुमार गजसुकुमाल का भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होना, भगवान् का मंगलमय उपदेश सुनकर चरमशरीरी गजसुकुमाल के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होना, फिर दीक्षित होने के लिये माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करना, कृष्ण महाराज द्वारा तथा माता देवकी द्वारा उन्हें दीक्षा न लेने के लिये समझाना (इस विषय में विस्तृत संवाद), गजसुकुमाल को एक दिन के लिये राज्याभिषिक्त करना, प्रव्रज्याभिषेक महोत्सव और अन्त में अनगार बनकर यथाविधि विचरण आदि अनेक विषयों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

'महेलियावज्जं'—इस पद के दो अर्थ किये जाते हैं। महिलारहित और अविवाहित। जिस का विवाह नहीं हुआ वह महिलावर्ज है। सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जीवन को 'जहा मेहो' यह कह कर मेघकुमार के समान बताया है। 'ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र' के प्रथमाध्ययन में मेघकुमार को विवाहित कहा है और गजसुकुमाल अविवाहित थे, अतः सूत्रकार ने इस विभिन्नता को 'महेलियावज्जं' शब्द से सूचित किया है।

अभिषेक का अर्थ है—सर्व औषधियों से युक्त पवित्र जलद्वारा मन्त्रोपचारपूर्वक पदवी का आरोपण करने के लिये मस्तक पर जल छिड़कने की क्रिया—राज्याभिषेकक्रिया, राजगद्दी पर बैठने का महोत्सव, राजा का सिंहासनारोहण, राजतिलक।

गजमुनि का महाप्रतिमा-वहन

२१—तए णं से गयसुकुमाले जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयंसि[1]

---

१. पाठान्तर—अंगसुत्ताणि—"पच्चावरण्ह०" ३/५६३।

जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पड़िणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं जाव [वग्घारियपाणी अणिमिसनयणे सुक्कपोग्गल-निरुद्धदिट्ठी] दोवि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

श्रमणधर्म में दीक्षित होने के पश्चात् गजसुकुमाल मुनि जिस दिन दीक्षित हुए, उसी दिन के पिछले भाग में जहाँ अरिहंत अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने भगवान् नेमिनाथ की दक्षिण की ओर से तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वे इस प्रकार बोले—'भगवन् ! आपकी अनुज्ञा प्राप्त होने पर मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महापडिमा (महाप्रतिमा) धारण कर विचरना चाहता हूँ।'

प्रभु ने कहा—"हे देवानुप्रिय ! जिससे तुम्हें सुख प्राप्त हो वही करो।"

तदनन्तर वह गजसुकुमाल मुनि अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा मिलने पर, भगवान् नेमिनाथ को वंदन नमस्कार करते हैं। वंदन-नमस्कार कर, अर्हत् अरिष्टनेमि के सान्निध्य से चलकर सहस्राम्रवन उद्यान से निकले। वहाँ से निकलकर जहाँ महाकाल श्मशान था, वहाँ आते हैं। महाकाल श्मशान में आकर प्रासुक स्थंडिल भूमि की प्रतिलेखना करते हैं। प्रतिलेखन करने के पश्चात् उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र) त्याग के योग्य भूमि का प्रतिलेखन करते हैं। प्रतिलेखन करने के पश्चात् एक स्थान पर खड़े हो अपनी देह-यष्टि को किंचित् झुकाये हुए, [हाथों को घुटनों तक लंबा करके, शुक्ल पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए अनिमेष नेत्रों से निश्चलतापूर्वक सब इन्द्रियों को गोपन करके दोनों पैरों को (चार अंगुल के अन्तर से) एकत्र करके एक रात्रि की महाप्रतिमा अंगीकार कर ध्यान में मग्न हो जाते हैं।

विवेचन—'पुव्वावरण्हकालसमयंसि-' अर्थात् दिन के पिछले आधे भाग—दोपहर से लेकर सूर्यास्त तक के काल को अपराह्ण कहते हैं। दिन का तीसरा प्रहर पूर्वापराह्ण कहा जाता है। काल सामान्य और समय विशिष्ट होता है। प्रस्तुत सूत्र में काल शब्द से तृतीय प्रहर तथा समय शब्द से उस विशिष्ट क्षण का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है जिसमें यह घटना घटित हुई है।

'थंडिल्लं' शब्द का अर्थ है प्रासुक भूमि, जीव-जन्तु रहित प्रदेश, निवृत्तिमय स्थान, जहाँ किसी प्रकार की कोई बाधा न हो।

सोमिल द्वारा उपसर्ग

२२—इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए। समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं य गेण्हइ, गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—

"एस णं भो! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय-जाव [पत्थिए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीण-पुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति] परिवज्जिए, जे णं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपत्तियं कालवत्तिणिं विप्पजहित्ता मुंडे जाव पव्वइए। तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए; एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चियगाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरंगाले कहल्लेणं[1] गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

इधर सोमिल ब्राह्मण समिधा (यज्ञ की लकड़ी) लाने के लिये द्वारका नगरी के बाहर सुकुमाल अणगार के श्मशानभूमि में जाने से पूर्व ही निकला था। वह समिधा, दर्भ, कुश, डाभ एवं में पत्रामोडों को लेता है। उन्हें लेकर वहाँ से अपने घर की तरफ लौटता है। लौटते समय महाकाल श्मशान के निकट (न अति दूर न अति सन्निकट) से जाते हुए संध्या काल की वेला में, जबकि मनुष्यों का गमनागमन नहीं के समान हो गया था, उसने गजसुकुमाल मुनि को वहाँ ध्यानस्थ खड़े देखा। उन्हें देखते ही सोमिल के हृदय में वैर भाव जागृत हुआ। वह क्रोध से तमतमा उठता है और मन ही मन इस प्रकार बोलता है—

अरे! यह तो वही अप्रार्थनीय का प्रार्थी (मृत्यु की इच्छा करने वाला), [दुरन्त-प्रान्त-लक्षण वाला, पुण्यहीन चतुर्दशी में उत्पन्न हुआ ह्री और श्री (लज्जा तथा लक्ष्मी) से] परिवर्जित, गजसुकुमाल कुमार है, जो मेरी सोमश्री भार्या की कुक्षि से उत्पन्न, यौवनावस्था को प्राप्त निर्दोष पुत्री सोमा कन्या को अकारण ही त्याग कर मुंडित हो यावत् श्रमण बन गया है! इसलिये मुझे निश्चय ही गजसुकुमाल से इस वैर का बदला लेना चाहिये। इस प्रकार वह सोमिल सोचता है और सोचकर सब दिशाओं की ओर देखता है कि कहीं से कोई देख तो नहीं रहा है। इस विचार से चारों ओर देखता हुआ पास के ही तालाब से वह गीली मिट्टी लेता है, लेकर गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर पाल बाँधता है। पाल बाँधकर जलती हुई चिता में से फूले हुए किंशुक (पलाश) के फूल से समान लाल-लाल खेर के अंगारों को किसी खप्पर (ठीकरे) में लेकर उन दहकते हुए अंगारों को गजसुकुमाल मुनि के सिर पर रख देता है। रखने के बाद इस भय से कि कहीं उसे कोई देख न ले, भयभीत होकर घबरा कर, त्रस्त होकर एवं उद्विग्न होकर वह वहाँ से शीघ्रतापूर्वक पीछे की ओर हटता हुआ भागता है। वहाँ से भागता हुआ वह सोमिल जिस ओर से आया था उसी ओर चला जाता है।

---

१. पाठान्तर—कभल्लेणं।

विवेचन—गजसुकुमाल के उग्र वैराग्य से अनभिज्ञ होने से तथा अपनी पुत्री के साथ विवाह नहीं करने के कारण क्रोध में अंधा हो कर सोमिल, ध्यानस्थ गजसुकुमाल मुनि के प्रति अत्यन्त क्रूर एवं नृशंस व्यवहार करता है। प्रस्तुत सूत्र में उसके पैशाचिक कृत्य का हृदयविदारक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

'सामिधेयस्स' की व्याख्या करते हुए टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरि कहते हैं "सामिधेयस्सत्ति—"समित्समूहस्य।" यहाँ समित् का अर्थ है हवन में जलाई जाने वाली लकड़ी। आगे 'दब्भे कुसे पत्तामोड़े' शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका टीका में इस प्रकार अर्थ किया है 'समिहाउत्ति' इन्धनभूता काष्ठिका:, 'दब्भेत्ति' समूलान् दर्भान्, 'कुसेत्ति' दर्भाग्राणीति, पत्तामोडयं ति शाखिशाखा-शिखामोटितपत्राणि देवतार्चनार्थानीत्यर्थ:—अर्थात्-समिधा इन्धनभूत लकड़ी को, मूलसहित डाभ-जड़ों वाली घास को दर्भ, डाभ के अग्रभाग को कुशा तथा देवपूजन के लिये वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग से मुड़े हुए पत्तों को पत्रामोटित कहते हैं।

सोमिल ब्राह्मण द्वारा की जाने वाली इस कल्पनातीत असह्य महावेदना के बाद भी मुनि गजसुकुमाल की क्या स्थिति रही, इसका हृदय-स्पर्शी वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

गजसुकुमाल मुनि की सिद्धि

२३—तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया-उज्जला जाव [विउला कक्खडा पगाढा चंडा रुद्दा दुक्खा] दुरहियासा। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव [विउलं कक्खडं पगाढं चंडं रुद्दं दुक्खं दुरहियासं वेयणं] अहियासेइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं, पसत्थज्झवसाणेणं, तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव [निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे] केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। तओ पच्छा सिद्धे जाव [बुद्धे मुत्ते अंतयडे परिनिव्वुए सव्वदुक्ख]प्पहीणे।

तत्थ णं अहासंनिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहिए त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे; दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए; चेलुक्खेवे कए; दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

सिर पर उन जाज्वल्यमान अंगारों के रखे जाने से गजसुकुमाल मुनि के शरीर में महा भयंकर वेदना उत्पन्न हुई जो अत्यन्त दाहक, दुःखपूर्ण [अत्यधिक हृदयविदारक, अत्यधिक भयंकर, उग्र, तीव्र, भीषण और दुस्सह] थी। इतना होने पर भी गजसुकुमाल मुनि सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी, लेश मात्र भी द्वेष नहीं करते हुए उस एकान्त दुःखरूप [हृदय-विदारक, भयंकर, उग्र, तीव्र भीषण, दुस्सह] वेदना को समभावपूर्वक सहन करने लगे। उस समय उस एकान्त दुःखपूर्ण दुःसह दाहक वेदना को समभाव से सहन करते हुए शुभ परिणामों तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायों (भावनाओं) के फलस्वरूप आत्मगुणों को आच्छादित करनेवाले कर्मों के क्षय से समस्त कर्म-रज को झाड़कर साफ कर देने वाले, कर्म-विनाशक अपूर्ण-करण में प्रविष्ट हुए। उन गजसुकुमाल अनगार को अनंत-अंतरहित अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ [निर्व्याघात निरावरण संपूर्ण एवं परिपूर्ण] केवलज्ञान एवं केवलदर्शन की उपलब्धि हुई। तत्पश्चात् आयुष्यपूर्ण हो जाने पर वे सिद्ध-कृतकृत्य, [बुद्ध-सकलपदार्थों के ज्ञाता, मुक्त-सकल कर्मों] और सर्व प्रकार के दुःखों से रहित हो गये। उस समय वहाँ समीपवर्ती देवों ने "अहो! इन

सोमिल द्वारा उपसर्ग

२२—इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए। समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं य गेण्हइ, गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—

"एस णं भो! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय-जाव [पत्थिए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीण-पुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति] परिवज्जिए, जे णं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपत्तियं कालवत्तिणिं विप्पजहित्ता मुंडे जाव पव्वइए। तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए; एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेणं[1] गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

इधर सोमिल ब्राह्मण समिधा (यज्ञ की लकड़ी) लाने के लिये द्वारका नगरी के बाहर सुकुमाल अणगार के श्मशानभूमि में जाने से पूर्व ही निकला था। वह समिधा, दर्भ, कुश, डाभ एवं में पत्रामोडों को लेता है। उन्हें लेकर वहाँ से अपने घर की तरफ लौटता है। लौटते समय महाकाल श्मशान के निकट (न अति दूर न अति सन्निकट) से जाते हुए संध्या काल की वेला में, जबकि मनुष्यों का गमनागमन नहीं के समान हो गया था, उसने गजसुकुमाल मुनि को वहाँ ध्यानस्थ खड़े देखा। उन्हें देखते ही सोमिल के हृदय में वैर भाव जागृत हुआ। वह क्रोध से तमतमा उठता है और मन ही मन इस प्रकार बोलता है—

अरे! यह तो वही अप्रार्थनीय का प्रार्थी (मृत्यु की इच्छा करने वाला), [दुरन्त-प्रान्त-लक्षण वाला, पुण्यहीन चतुर्दशी में उत्पन्न हुआ ह्री और श्री (लज्जा तथा लक्ष्मी) से] परिवर्जित, गजसुकुमाल कुमार है, जो मेरी सोमश्री भार्या की कुक्षि से उत्पन्न, यौवनावस्था को प्राप्त निर्दोष पुत्री सोमा कन्या को अकारण ही त्याग कर मुंडित हो यावत् श्रमण बन गया है! इसलिये मुझे निश्चय ही गजसुकुमाल से इस वैर का बदला लेना चाहिये। इस प्रकार वह सोमिल सोचता है और सोचकर सब दिशाओं की ओर देखता है कि कहीं से कोई देख तो नहीं रहा है। इस विचार से चारों ओर देखता हुआ पास के ही तालाब से वह गीली मिट्टी लेता है, लेकर गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर पाल बाँधता है। पाल बाँधकर जलती हुई चिता में से फूले हुए किंशुक (पलाश) के फूल से समान लाल-लाल खेर के अंगारों को किसी खप्पर (ठीकरे) में लेकर उन दहकते हुए अंगारों को गजसुकुमाल मुनि के सिर पर रख देता है। रखने के बाद इस भय से कि कहीं उसे कोई देख न ले, भयभीत होकर घबरा कर, त्रस्त होकर एवं उद्विग्न होकर वह वहाँ से शीघ्रतापूर्वक पीछे की ओर हटता हुआ भागता है। वहाँ से भागता हुआ वह सोमिल जिस ओर से आया था उसी ओर चला जाता है।

---

१. पाठान्तर—कभल्लेणं।

विवेचन—गजसुकुमाल के उग्र वैराग्य से अनभिज्ञ होने से तथा अपनी पुत्री के साथ विवाह नहीं करने के कारण क्रोध में अंधा हो कर सोमिल, ध्यानस्थ गजसुकुमाल मुनि के प्रति अत्यन्त क्रूर एवं नृशंस व्यवहार करता है। प्रस्तुत सूत्र में उसके पैशाचिक कृत्य का हृदयविदारक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

'सामिधेयस्स' की व्याख्या करते हुए टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरि कहते हैं "सामिधेयस्सत्ति—"समित्समूहस्य।" यहाँ समित् का अर्थ है हवन में जलाई जाने वाली लकड़ी। आगे 'दब्भे कुसे पत्तामोड़े' शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका टीका में इस प्रकार अर्थ किया है 'समिहाउत्ति' इन्धनभूता काष्ठिकाः, 'दब्भेत्ति' समूलान् दर्भान्, 'कुसेत्ति' दर्भाग्राणीति, पत्तामोडयं ति शाखिशाखा-शिखामोटितपत्राणि देवतार्चनार्थानीत्यर्थः—अर्थात्-समिधा इन्धनभूत लकड़ी को, मूलसहित डाभ-जड़ों वाली घास को दर्भ, डाभ के अग्रभाग को कुशा तथा देवपूजन के लिये वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग से मुड़े हुए पत्तों को पत्रामोटित कहते हैं।

सोमिल ब्राह्मण द्वारा की जाने वाली इस कल्पनातीत असह्य महावेदना के बाद भी मुनि गजसुकुमाल की क्या स्थिति रही, इसका हृदय-स्पर्शी वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

गजसुकुमाल मुनि की सिद्धि

२३—तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया-उज्जला जाव [विउला कक्खडा पगाढा चंडा रुद्दा दुक्खा] दुरहियासा। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव [विउलं कक्खडं पगाढं चंडं रुद्दं दुक्खं दुरहियासं वेयणं] अहियासेइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं, पसत्थज्झवसाणेणं, तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव [निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे] केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। तओ पच्छा सिद्धे जाव [बुद्धे मुत्ते अंतयडे परिनिव्वुए सव्वदुक्ख]प्पहीणे।

तत्थ णं अहासंनिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहिए त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे; दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए; चेलुक्खेवे कए; दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

सिर पर उन जाज्वल्यमान अंगारों के रखे जाने से गजसुकुमाल मुनि के शरीर में महा भयंकर वेदना उत्पन्न हुई जो अत्यन्त दाहक, दुःखपूर्ण [अत्यधिक हृदयविदारक, अत्यधिक भयंकर, उग्र, तीव्र, भीषण और दुस्सह] थी। इतना होने पर भी गजसुकुमाल मुनि सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी, लेश मात्र भी द्वेष नहीं करते हुए उस एकान्त दुःखरूप [हृदय-विदारक, भयंकर, उग्र, तीव्र भीषण, दुस्सह] वेदना को समभावपूर्वक सहन करने लगे। उस समय उस एकान्त दुःखपूर्ण दुःसह दाहक वेदना को समभाव से सहन करते हुए शुभ परिणामों तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायों (भावनाओं) के फलस्वरूप आत्मगुणों को आच्छादित करनेवाले कर्मों के क्षय से समस्त कर्म-रज को झाड़कर साफ कर देने वाले, कर्म-विनाशक अपूर्ण-करण में प्रविष्ट हुए। उन गजसुकुमाल अनगार को अनंत-अंतरहित अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ [निर्व्याघात निरावरण संपूर्ण एवं परिपूर्ण] केवलज्ञान एवं केवलदर्शन की उपलब्धि हुई। तत्पश्चात् आयुष्यपूर्ण हो जाने पर वे सिद्ध-कृतकृत्य, [बुद्ध-सकलपदार्थों के ज्ञाता, मुक्त-सकल कर्मों] और सर्व प्रकार के दुःखों से रहित हो गये। उस समय वहाँ समीपवर्ती देवों ने "अहो! इन

गजसुकुमाल मुनि ने श्रमणधर्म की अत्यन्त उत्कृष्ट आराधना की है" यह जान कर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगन्धित अचित्त जल की तथा पांच वर्णों के दिव्य अचित्त फूलों एवं वस्त्रों की वर्षा की और दिव्य मधुर गीतों तथा गन्धर्ववाद्ययन्त्रों की ध्वनि से आकाश को गुंजा दिया।

विवेचन—परम आत्मस्थ, आत्म-समाधि में लीन मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल-ब्राह्मण द्वारा की गई यह भीषणातिभीषण हृदयविदारक महावेदना पूर्ण समभावपूर्वक निर्द्वेष भाव से सहन की। परिणामत: केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर वे मोक्ष में पधार गये।

मोक्ष-प्राप्ति में परमसहयोगी रूप (१) शुभ परिणाम और (२) प्रशस्त अध्यवसाय इन दो पदों का "सुभेण परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं" शब्दों से सूत्र में उल्लेख किया है। दोनों का अर्थ-विभेद इस प्रकार—१. सामान्य रूप से शुभ निष्पाप विचारों को शुभ परिणाम कहते हैं। २. विशेष रूप से आत्म-समाधि में लग जाने या गंभीर आत्मचिन्तन में संलग्न होने की दशा को प्रशस्त अध्यवसाय कहा गया है।

"तदावरणिज्जाणं कम्माणं"—इस पद में कर्म विशेष्य है और 'तदावरणीय' यह उसका विशेषण है। कर्म शब्द आत्मप्रदेशों से मिले कर्माणुओं का बोधक है और ज्ञान-दर्शन आदि आत्मिक गुणों को ढँकनेवाले, इस अर्थ का सूचक तदावरणीय शब्द है।

"कम्मरयविकिरणकरं'—कर्म-रजोविकिरण-करं अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप रज-मल का विकिरण—नाश करनेवाले को कमर्रजोविकिरण-कर कहते हैं।

"अपुव्वकरणं—अपूर्वकरणम्, आत्मनोऽभूतपूर्वं शुभपरिणामम्—अर्थात्—अपूर्णकरण शब्द जिसकी पहले प्राप्ति नहीं हुई—इस अर्थ का बोधक है। यह आठवें "निवृत्तिबादर गुणस्थान" का भी परिचायक माना गया है। इस गुणस्थान से दो श्रेणियां आरंभ होती हैं। उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी—उपशम श्रेणीवाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान तक जाकर रुक जाता है और नीचे गिर जाता है। क्षपक श्रेणी वाला जीव दशवें गुणस्थान से सीधा बारहवें गुणस्थान पर जाकर अप्रतिपाती हो जाता है। आठवें गुणस्थान में आरूढ हुआ जीव क्षपक श्रेणी से उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ जब बारहवें गुणस्थान में पहुंच जाता है तब समस्त घाती कर्मों का क्षय करता हुआ कैवल्य प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् तेरहवें गुणस्थान में स्थिर होता है। आयु पूर्ण होने पर चौदहवां गुणस्थान प्राप्त करके परम कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत में सूत्रकार ने "अपुव्वकरणं" पद देकर गजसुकुमाल के साथ अपूर्वकरण अवस्था का सम्बन्ध सूचित किया है। भाव यह है कि गजसुकुमाल मुनि ने आठवें गुणस्थान में प्रविष्ट होकर क्षपक श्रेणी को अपना लिया था।

अणंते····दंसणे आदि पदों की व्याख्या इस प्रकार है—१. अनंत—अंत रहित, जिसका कभी अन्त न हो, जो सदा काल बना रहे। २. अनुत्तर-प्रधान—जिससे बढ़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं है, सबसे ऊँचा। ३. निर्व्याघात-व्याघात—रुकावट रहित। ४. निरावरण—जिस पर कोई आवरण-पर्दा नहीं है, चारों ओर से ज्ञान-प्रकाश की वर्षा करने वाला। ५. कृत्स्न-संपूर्ण, जो अपूर्ण नहीं है। ६. प्रतिपूर्ण—संसार के सब ज्ञेय पदार्थों को अपना विषय बनानेवाला, जिससे संसार का कोई पदार्थ ओझल नहीं है।

सिद्ध-बुद्ध आदि शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—१. सिद्ध—जो कृतकृत्य हो गये हैं, जिनके समस्त कार्य सिद्ध-पूर्ण हो चुके हैं। २. बुद्ध—जो लोक अलोक के सर्व पदार्थों के ज्ञाता हैं। ३. मुक्त—जो समस्त कर्मों से रहित हो चुके हैं। ४. परिनिर्वात—समस्त कर्म-जनित विकारों के नष्ट हो जाने से जो शान्त हैं। ५. सर्वदुःख-प्रहीण—जिनके समस्त शारीरिक तथा मानसिक दुःख नष्ट हो चुके हैं।

वासुदेव कृष्ण द्वारा वृद्ध की सहायता

२४—तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव [फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि, अहपंडुरे पभाए,रत्तासोगपगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धराग-बंधुजीवग-पारावयचलण-नयण-परहुयसुरत्तलोयण-जासुमिणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलस-हिंगुलयनियर-रूवाइरेगरेहन्तसस्सिरीए दिवागरे अहक्कमेण उदिए, तस्स दिणकर-परंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे, बालातवकुंकुमेणं खइए व्व जीवलोए, लोयणविसअणुआसविगसंतविसददंसियम्मि लोए, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते] ण्हाए जाव[1] विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं महयाभड-चडगर-पहकरवंद-परिक्खित्ते बारवइं नयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं-जुण्णं जरा-जज्जरिय-देहं जाव [आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं] किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासइ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्टगं गेण्हइ, गेण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिसेहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

तदनन्तर कृष्ण वासुदेव दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर [जब प्रफुल्लित कमलों के पत्ते विकसित हुए, काले मृग के नेत्र निद्रारहित होने से विकस्वर हुए। फिर वह प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण वाला हुआ। लाल अशोक की कान्ति, पलाश के पुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के अर्द्ध भाग, दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर और नेत्र, जासोद के फूल, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश तथा हिंगलू के समूह की लालिमा से भी अधिक लालिमा से जिसकी श्री सुशोभित हो रही है, ऐसा सूर्य क्रमशः उदित हुआ। सूर्य की किरणों का समूह नीचे उतर कर अंधकार का विनाश करने लगा। बाल-सूर्य रूपी कुंकुम से मानो जीवलोक व्याप्त हो गया। नेत्रों के विषय का प्रचार होने से विकसित होने वाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। सरोवरों में स्थित कमलों के वन को विकसित करने वाला तथा सहस्र किरणों वाला दिवाकर तेज से जाज्वल्यमान हो गया। ऐसा होने पर] कृष्ण वासुदेव स्नान कर वस्त्रालंकारों से विभूषित हो, हाथी पर आरूढ हुए। कोरंट पुष्पों की माला वाला छत्र धारण किया हुआ था। श्वेत एवं उज्ज्वल चामर उनके दायें-बायें ढोरे जारहे थे। वे जहाँ भगवान् अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ के लिये रवाना हुए।

---

१. देखिए—तृतीय वर्ग का तेरहवां सूत्र।

तब कृष्ण वासुदेव ने द्वारका नगरी के मध्य भाग से जाते समय एक पुरुष को देखा, जो अति वृद्ध, जरा से जर्जरित [अति क्लान्त, कुम्हलाया हुआ दुर्बल] एवं थका हुआ था। वह बहुत दुःखी था। उसके घर के बाहर राजमार्ग पर ईंटों का एक विशाल ढेर पड़ा था जिसे वह वृद्ध एक-एक ईंट करके अपने घर में स्थानान्तरित कर रहा था। तब उन कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष की अनुकंपा के लिये हाथी पर बैठे हुए ही एक ईंट उठाई, उठाकर बाहर रास्ते से घर के भीतर पहुंचा दी।

तब कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाने पर (उनके अनुयायी) अनेक सैंकड़ों पुरुषों द्वारा वह बहुत बड़ा ईंटों का ढेर बाहर गली में से घर के भीतर पहुंचा दिया गया।

गयसुकुमाल की सिद्धि की सूचना

२५—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता जाव [अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता] वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"कहि णं भंते! से ममं सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे जं णं अहं वंदामि नमंसामि?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"साहिए णं कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे।" तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—"कहण्णं भंते! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे?" तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा गयसुकुमाले णं अणगारे ममं कल्लं पुव्वावरण्हकालसमयंसि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं जाव[1] उवसंपज्जित्ता णं विहरइ'।"

तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते जाव[2] सिद्धे। तं एवं खलु कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे।

वृद्ध पुरुष की सहायता करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य में से होते हुए जहाँ भगवन्त अरिष्टनेमि विराजमान थे वहां आ गए। कृष्ण ने दाहिनी ओर से आरंभ करके तीन बार भगवान् की प्रदक्षिणा-परिक्रमा की, वंदन-नमस्कार किया। इसके पश्चात् गजसुकुमाल मुनि को वहाँ न देखकर उन्होंने अरिहंत अरिष्टनेमि से वंदन-नमस्कार करने के बाद पूछा—"भगवन्! मेरे सहोदर लघुभ्राता मुनि गजसुकुमाल कहां हैं? मैं उनको वन्दना-नमस्कार करना चाहता हूँ।"

महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए अरिहंत अरिष्टनेमि ने कहा—कृष्ण! मुनि गजसुकुमाल ने मोक्ष प्राप्त करने का अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है।

अरिष्टनेमि भगवान् से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर कृष्ण वासुदेव अरिष्टनेमि भगवान् के चरणों में पुनः निवेदन करने लगे—

---

१. वर्ग ३, सूत्र २१. २. देखिए—सूत्र २२.

भगवन् ! मुनि गजसुकुमाल ने अपना प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया है ? महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अरिष्टनेमि भगवान् कहने लगे—

"हे कृष्ण ! वस्तुतः कल के दिन के अपराह्न काल के पूर्व भाग में गजसुकुमाल मुनि ने मुझे वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—हे प्रभो ! आपकी आज्ञा हो तो मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महाभिक्षुप्रतिमा धारण करके विचरना चाहता हूँ। यावत् मेरी अनुज्ञा प्राप्त होने पर वह गजसुकुमाल मुनि महाकाल श्मशान में जाकर भिक्षु की महाप्रतिमा धारण करके ध्यानस्थ खड़े हो गये।

इसके बाद गजसुकुमाल मुनि को एक पुरुष ने देखा और देखकर वह उन पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। इत्यादि समस्त पूर्वोक्त घटना सुनाकर भगवान् ने अन्त में कहा—इस प्रकार गजसुकुमाल मुनि ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया।

२६—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—

से के णं भंते ! से पुरिसे अपत्थियपत्थिए जाव [दुरंत-पंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति] परिवज्जिए, जेणं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गजसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ, (ववरोविए) ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि। एवं खलु कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव भगवान् नेमिनाथ से इस प्रकार पूछने लगे—

"भंते ! वह अप्रार्थनीय का प्रार्थी अर्थात् मृत्यु को चाहनेवाला, [दुरन्त प्रान्त लक्षण वाला, पुण्यहीन चतुर्दशी को उत्पन्न, लज्जा और लक्ष्मी से रहित] निर्लज्ज पुरुष कौन है जिसने मेरे सहोदर लघु भ्राता गजसुकुमाल मुनि का असमय में ही प्राण-हरण कर लिया ?"

तब अर्हत् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले—

"हे कृष्ण ! तुम उस पुरुष पर द्वेष-रोष मत करो, क्योंकि उस पुरुष ने सुनिश्चित रूपेण गजसुकुमाल मुनि को अपना आत्म-कार्य—अपना प्रयोजन सिद्ध करने में सहायता प्रदान की है।"

विवेचन—'अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ' यहां 'ववरोविए' पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अस्तु, इन पदों का अर्थ है—अकाल में ही जीवन से रहित कर दिया। अकाल मृत्यु शब्द असमय की मृत्यु के लिये प्रयुक्त होता है। जो मृत्यु समय पर हो, व्यावहारिक दृष्टि में अपना समय पूर्ण कर लेने पर हो, उसे अकाल मृत्यु नहीं कहते, वह कालमृत्यु है।

जैन शास्त्रों में आयु के दो प्रकार हैं—एक अपवर्तनीय और दूसरी अनपवर्तनीय। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले ही विष शस्त्र आदि का निमित्त मिलने पर शीघ्र भोगी जा सके वह अपवर्तनीय आयु है, और जो बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके वह अनपवर्तनीय आयु है। इस आयुद्वय का बन्ध स्वाभाविक नहीं है, परिणामों के तारतम्य पर

आधारित है। आयु बांधते समय अगर परिणाम मंद हों तो आयु का बंध शिथिल पड़ेगा, अगर परिणाम तीव्र हों तो बंध तीव्र होगा। शिथिल बंधवाली आयु निमित्त मिलने पर घट जाती है—नियत काल से पहले ही भोग ली जाती है और तीव्र बंधवाली (निकाचित) आयु निमित्त मिलने पर भी नहीं घटती है। स्थानांग सूत्र में आयुभेद के सात निमित्त बताये हैं जो इस प्रकार हैं—

१. **अज्झवसाण**—अध्यवसान—स्नेह या भय रूप प्रबल मानसिक आघात होने पर आयु समय से पहले ही समाप्त होती है।

२. **निमित्त**—शस्त्र, दण्ड, अग्नि आदि का निमित्त पाकर आयु शीघ्र समाप्त हो जाती है।

३. **आहार**—अधिक भोजन करने से आयु घट जाती है।

४. **वेदना**—किसी भी अंग में असह्य वेदना होने पर आयु के दलिक समय से पूर्व ही उदय में आकर आत्मा से झड़ जाते हैं।

५. **पराघात**—गड्ढे में गिरना, छत का ऊपर गिर जाना आदि बाह्य आघात पाकर आयु की उदीरणा हो जाती है।

६. **स्पर्श**—सर्प आदि जहरीले जीवों के काटने पर अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श होने पर जिससे शरीर में विष फैल जाए, आयु असमय में ही समाप्त हो जाती है।

७. **आण-पाण**—श्वास की गति बन्द हो जाने पर आयु-भेद हो जाता है। निमित्तों को पाकर जो आयु नियत काल समाप्त होने से पहले ही अन्तर्मुहूर्तमात्र में भोग ली जाती है, उस आयु का नाम अपवर्तनीय आयु है। इसे सोपक्रम आयु भी कहते हैं। जो उपक्रम सहित हो वह सोपक्रम है। तीव्र शस्त्र, तीव्र विष,तीव्र अग्नि आदि निमित्तों का प्राप्त होना उपक्रम है। अनपवर्तनीय आयु सोपक्रम और निरुपक्रम दोनों प्रकार की होती है। दूसरे शब्दों में इस अनपवर्तनीय आयु को अकालमृत्यु लानेवाले अध्यवसान आदि उक्त निमित्तों का संनिधान होता भी है और नहीं भी होता है। उक्त निमित्तों का संनिधान होने पर भी अनपवर्तनीय आयु नियतकाल से पहले पूर्ण नहीं होती।

यहाँ इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि बन्धकाल में आयुकर्म के जितने दलिक बंधते हैं, उन सब का भोग तो जीव को करना ही पड़ता है, केवल वह भोग जब स्वल्प काल में हो जाता है तब वह कालिक स्थिति की अपेक्षा अकालमरण कहा जाता है।

२७—कहण्णं भंते ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

से नूणं कण्हा ! तुमं ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नयरीए एगं पुरिसं—जाव[1] [जुण्णं जराजज्जरियदेहं आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेससि। तए णं तुमे एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि] अणुपवेसिए। जहा णं कण्हा ! तुमे तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे, एवामेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सयसहस्स-संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरत्थं साहिज्जे दिण्णे।

---

१. देखिए सूत्र २४.

गई हैं—वंध, उदय, उदीरणा और सत्ता। मिथ्यात्वादि के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि के रूप में परिणत होकर कर्म-पुद्गलों का आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाना वंध है। अवाधाकाल समाप्त होने पर और उदय-काल-फलदान का समय आने पर कर्मों का शुभाशुभ फल देना उदय है। अवाधाकाल (वंधे हुए कर्मों का जव तक आत्मा को फल नहीं मिलता वह काल) व्यतीत हो चुकने पर भी जो कर्म-दलिक वाद में उदय में आनेवाले हैं, उनको प्रयत्न-विशेष से खींच कर उदय-प्राप्त दलिकों के साथ भोग लेना उदीरणा है। वंधे हुए कर्मों का अपने स्वरूप को न छोड़ कर आत्मा के साथ लगे रहना सत्ता है। उदय और उदीरणा में यह अन्तर है कि उदय में किसी भी प्रकार के प्रयत्न के विना स्वाभाविक क्रम से कर्मों के फल का भोग होता है और उदीरणा में प्रयत्न करने पर ही कर्मफल का भोग होता है। प्रस्तुत में मुनि गजसुकुमाल ने जो कर्म-फल का उपभोग किया है, वह स्वाभाविक क्रम से नहीं किया, किन्तु सोमिल ब्राह्मण के प्रयत्न विशेष से कर्मों का उपभोग कराया गया है, अतः यहाँ कर्मों की उदीरणा अर्थ अपेक्षित है।

सोमिल ब्राह्मण का मरण

२८—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—से णं भंते! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—जे णं कण्हा! तुमं बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ, तण्णं तुमं जाणिज्जासि "एस णं से पुरिसे।" तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स कल्लं जाव[1] जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं पायवंदए निग्गए। तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स। तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ। कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइं नयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं हव्वमागए।

भगवान् अरिष्टनेमि द्वारा अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके कृष्ण वासुदेव फिर भगवान् के चरणों में निवेदन करने लगे—"भगवन्! मैं उस पुरुष को किस तरह पहचान सकता हूँ?' श्रीकृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् अरिष्टनेमि कहने लगे—'कृष्ण! यहाँ से लौटने पर जव तुम द्वारका नगरी में प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुष तुम्हें देखकर भयभीत होगा, वह वहाँ पर खड़ा-खड़ा ही गिर जाएगा। आयु की समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है।' अरिष्टनेमि भगवान् द्वारा अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर भगवान् अरिष्टनेमि को वंदन एवं नमस्कार करके श्रीकृष्ण ने वहाँ से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्तिरत्न पर वैठकर अपने घर की ओर रवाना हुए।

उधर उस सोमिल ब्राह्मण के मन में दूसरे दिन सूर्योदय होते ही इस प्रकार विचार उत्पन्न

१. देखिए—तृतीय वर्ग, सूत्र २४.

नवमं अज्झयणं

सुमुख

जिज्ञासा और समाधान

३१—नवमस्स उक्खेवओ—[जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?]

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया जहा पढमए जाव[1] विहरइ। तत्थ णं बारवईए बलदेवे नामं राया होत्था-वण्णओ। तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था। वण्णओ। तए णं सा धारिणी देवी सीहं सुविणे जहा गोयमे, नवरं वीसं वासाइं परियाओ। सेसं तं चेव सेत्तुंजे सिद्धे।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के जो भाव कहे वे मैंने आपसे सुने। भगवन् ! नवमें अध्ययन के भगवान् ने क्या भाव कहे हैं ? यह भी मुझे बताने की कृपा करें।

समं सहोयरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावेत्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। सयं गिहं अणुप्पविट्ठे।

उस समय सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को सहसा सम्मुख देख कर भयभीत हुआ और जहाँ का तहाँ स्तम्भित खड़ा रह गया। वहीं खड़े-खड़े ही स्थितिभेद से अपना आयुष्य पूर्ण हो जाने से सर्वांग-शिथिल हो धड़ाम से भूमितल पर गिर पड़ा। उस समय कृष्ण वासुदेव सोमिल ब्राह्मण को गिरता हुआ देखते हैं और देखकर इस प्रकार बोलते हैं—

"अरे देवानुप्रियो ! यही वह मृत्यु की इच्छा करने वाला तथा लज्जा एवं शोभा से रहित सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमाल मुनि को असमय में ही काल का ग्रास बना डाला।" ऐसा कहकर कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण के उस शव को चांडालों के द्वारा घसीटवा कर नगर के बाहर फिंकवा दिया और उस शव के स्पर्श वाली भूमि को पानी से धुलवाया। उस भूमि को पानी से धुलवाकर कृष्ण वासुदेव अपने राजप्रासाद में पहुँचे और अपने आगार में प्रविष्ट हुए।

निक्षेप

३०—एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जंबू को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे जंबू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तकृद्दशांग सूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

---

१. देखो प्रथम वर्ग, सूत्र २.

नवमं अज्झयणं

सुमुख

जिज्ञासा और समाधान

३१—नवमस्स उक्खेवओ—[जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?]

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया जहा पढमए जाव[1] विहरइ। तत्थ णं बारवईए बलदेवे नामं राया होत्था-वण्णओ। तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था। वण्णओ। तए णं सा धारिणी देवी सीहं सुविणे जहा गोयमे, नवरं वीसं वासाइं परियाओ। सेसं तं चेव सेत्तुंजे सिद्धे।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के जो भाव कहे वे मैंने आपसे सुने। भगवन् ! नवमें अध्ययन के भगवान् ने क्या भाव कहे हैं ? यह भी मुझे बताने की कृपा करें।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! उस काल उस समय में द्वारकानामक नगरी थी, जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। एक दिन भगवान् अरिष्टनेमि तीर्थंकर विचरते हुए उस नगरी में पधारे। वहाँ द्वारका नगरी में बलदेवनामक राजा था। यहाँ राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए। उस बलदेव राजा की धारिणी नाम की रानी थी। उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना। उस धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा, तदनन्तर पुत्रजन्म आदि का वर्णन गौतमकुमार की तरह जान लेना चाहिए। विशेषता यह कि वह बीस वर्ष की दीक्षापर्यायवाला हुआ। शेष उसी प्रकार यावत् शत्रुंजय पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की।

"हे जंबू ! इस प्रकार यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के नवम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।"

---

१. देखिए—प्रथम वर्ग का सूत्र ६.

२. देखिए—प्रथम वर्ग का सूत्र २.

१०-१३ अज्झयणाणि

तृतीय वर्ग की समाप्ति

तृतीय वर्ग की समाप्ति

३२—एवं दुम्मुहे वि। कूवए वि। तिण्णि वि बलदेव-धारिणी-सुया।
दारुए वि एवं चेव, नवरं- वसुदेव-धारिणी-सुए।
एवं-अणाहिट्ठी वि वसुदेव-धारिणी-सुए।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

इसी प्रकार दुर्मुख और कूपदारक कुमार का वर्णन जानना चाहिये। दोनों के पिता बलदेव और माता धारिणी थी।

दारुक और अनाधृष्टि भी इसी प्रकार हैं। विशेष यह है कि वसुदेव पिता और धारिणी माता थी।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अंतगड-दशा सूत्र के तीसरे वर्ग के एक से लेकर तेरह अध्ययनों का यह भाव फरमाया है।"

---

१. देखिये-प्रथम वर्ग का द्वितीय सूत्र।

चउत्थो वग्गो

१-१० अज्झयणाणि

उत्क्षेप

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[3] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

(१) जालि (२) मयालि (३) उवयाली (४) पुरिससेणे (५) वारिसेणे य ।
(६) पज्जुण्ण (७) संब (८) अणिरुद्ध (९) सच्चणेमि य (१०) दढणेमी ॥१॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[4] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

जालिप्रभृति

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी । तीसे णं बारवईए नयरीए जहा पढमे जाव[5] कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव[6] विहरइ । तत्थ णं बारवईए नयरीए वसुदेवे राया । धारिणी देवी, वण्णओ । जहा गोयमो, नवरं जालिकुमारे । पण्णासओ दाओ । बारसंगी । सोलसवासा परियाओ । सेसं जहा गोयमस्स जाव[7] सेत्तुंज्जे सिद्धे ।

एवं मयाली उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य ।
एवं पज्जुण्णे वि, नवरं-कण्हे पिया, रुप्पिणी माया ।
एवं संबे वि, नवरं-जंबवई माया ।
एवं अणिरुद्धे वि, नवरं-पज्जुण्णे पिया, वेदब्भी माया ।
एवं सच्चणेमी, नवरं-समुद्दविजए पिया, सिवा माया ।
एवं दढणेमी वि सव्वे एगगमा ॥

निक्षेप

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

---

१. २. ३. ४. देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र २.
५. देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र ५, ६.
६. देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र ६.
७. देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र ७, ९.

श्रीजंबू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अंतकृत्दशा के तीसरे वर्ग का जो वर्णन किया वह सुना। अंतगडदशा के चौथे वर्ग के हे पूज्य ! श्रमण भगवान् ने क्या भाव दर्शाये हैं, यह भी मुझे बताने की कृपा करें।"

सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी से कहा—"हे जंबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने अंतगड-दशा के चौथे वर्ग में दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) जालि कुमार, (२) मयालि कुमार, (३) उवयालि कुमार, (४) पुरुषसेन कुमार (५) वारिषेण कुमार, (६) प्रद्युम्न कुमार, (७) शाम्ब कुमार (८) अनिरुद्ध कुमार, (९) सत्यनेमि कुमार और (१०) दृढनेमि कुमार।

जंबू स्वामी ने कहा—भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने चौथे वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, तो प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ बताया है।"

जालि-प्रभृति

सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जंबू ! उस काल और उस समय में द्वारका नामकी नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है। श्रीकृष्ण वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे। उस द्वारका नगरी में महाराज 'वसुदेव' और रानी 'धारिणी' निवास करते थे। यहाँ राजा और रानी का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए। जालिकुमार का वर्णन गौतम कुमार के समान जानना। विशेष यह कि जालिकुमार ने युवावस्था प्राप्तकर पचास कन्याओं से विवाह किया तथा पचास-पचास वस्तुओं का दहेज मिला। दीक्षित होकर जालि मुनि ने बारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया, सोलह वर्ष दीक्षापर्याय का पालन किया, शेष सब गौतम कुमार की तरह यावत् शत्रुंजय पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार मयालिकुमार, उवयालि कुमार, पुरुषसेन और वारिषेण का वर्णन जानना चाहिये।

इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी जानना चाहिये। विशेष—कृष्ण उनके पिता और रुक्मिणी देवी माता थी।

इसी प्रकार साम्ब कुमार भी; विशेष—उनकी माता का नाम जाम्बवती था। ये दोनों श्री-कृष्ण के पुत्र थे।

इसी प्रकार अनिरुद्ध कुमार का भी वर्णन है। विशेष यह है कि प्रद्युम्न पिता और वैदर्भी उसकी माता थी।

इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का वर्णन है। विशेष, समुद्रविजय पिता और शिवा देवी माता थी।

इसी प्रकार दृढनेमि कुमार का भी वर्णन समझना। ये सभी अध्ययन एक समान हैं।

सुधर्मा स्वामी ने कहा—इस प्रकार हे जंबू ! दश अध्ययनों वाले इस चौथे वर्ग का श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त प्रभु ने यह अर्थ कहा है।

विवेचन—चतुर्थ वर्ग में जालि मयालि आदि दश महापुरुषों का वर्णन है। इनका सर्व वर्णन गौतम कुमार की तरह होने से "जहा गोयमो नवरं"—शब्द से इसे स्पष्ट किया है और सव्वे एगगमा—अर्थात् चतुर्थ वर्ग के जो दश अध्ययन हैं, इनमें वर्णित राजकुमारों के जीवन की व्याख्या करनेवाले पाठ एक जैसे ही हैं। नाम आदि का जो अन्तर था, उसका सूत्रकार ने अलग उल्लेख कर दिया है।

पंचमो वग्गो

पढमं अज्झयणं—पउमावई

म० अरिष्टनेमि का पदार्पण: धर्मदेशना

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[3] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

(१) पउमावई य (२) गोरी (३) गंधारी (४) लक्खणा (५) सुसीमा य।
(६) जंबवई (७) सच्चभामा (८) रुप्पिणी (९) मूलसिरि (१०) मूलदत्ता वि ॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[4] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी। जहा पढमे जाव[5] कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव[6] विहरइ। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था, वण्णओ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव [अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ। कण्हे वासुदेवे निग्गए जाव[7] पज्जुवासइ। तए णं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जहा देवई देवी जाव[8] पज्जुवासइ। तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य, जाव धम्मकहा। परिसा पडिगया।

आर्य जंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि अन्तगडसूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ वर्णन किया है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"हे जंबू ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग के दस अध्ययन बताए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) पद्मावती देवी (२) गौरी देवी (३) गान्धारी देवी (४) लक्ष्मणा देवी (५) सुसीमा देवी (६) जाम्बवती देवी (७) सत्यभामा देवी (८) रुक्मिणी देवी (९) मूलश्री देवी और (१०) मूलदत्ता देवी।

जम्बू स्वामी ने पुनः पूछा—'भंते ! श्रमण भगवान् महावीर ने पंचम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?' सुधर्मा स्वामी ने कहा—

हे जंबू ! उस काल उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम

१—४. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
५. प्रथम वर्ग सूत्र ५, ६.
६. प्रथम वर्ग, सूत्र ६.
७. तृतीय वर्ग, सूत्र १८.
८. तृतीय वर्ग, सूत्र ९.

अध्ययन में किया जा चुका है। यावत् श्रीकृष्ण वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे। श्रीकृष्ण वासुदेव की पद्मावती नाम की महारानी थी। यहां औपपातिक सूत्र के अनुसार राज्ञीवर्णन जान लेना चाहिए।

उस काल उस समय में अरिहंत अरिष्टनेमि तीर्थंकर संयम और तप से आत्मा को भावित कर विचरते हुए द्वारका नगरी में पधारे। श्रीकृष्ण वंदन-नमस्कार करने हेतु राजप्रासाद से निकल कर प्रभु के पास पहुँचे यावत् प्रभु अरिष्टनेमि की पर्युपासना करने लगे। उस समय पद्मावती देवी ने भगवान् के आने की खबर सुनी तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह भी देवकी महारानी के समान धार्मिक रथ पर आरूढ़ होकर भगवान् को वंदन करने गई। यावत् नेमिनाथ की पर्युपासना करने लगी। अरिहंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, पद्मावती देवी और जनपरिषद को धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर जन-परिषद् वापिस लौट गई।

द्वारकाविनाश का कारण

२ तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इमीसे णं भंते ! बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिन्नाए जाव[1] देवलोगभूयाए किंमूलाए विणासे भविस्सइ ?"

'कण्हाइ !' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिन्नाए जाव[2] देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।"

तब कृष्ण वासुदेव ने भगवान् नेमिनाथ को वंदन-नमस्कार करके उनसे इस प्रकार पृच्छा की-

"भगवन् ! बारह योजन लंबी और नव योजन चौड़ी यावत् साक्षात् देवलोक के समान इस द्वारका नगरी का विनाश किस कारण से होगा ?"

'हे कृष्ण !' इस प्रकार संबोधित करते हुए अरिहंत अरिष्टनेमि ने उत्तर दिया—

"हे कृष्ण ! निश्चय ही बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान इस द्वारका नगरी का विनाश मदिरा (सुरा), अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कोप के कारण होगा।"

श्रीकृष्ण का उद्वेग : उसका शमन

३—कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'धण्णा णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पज्जुण्ण-संब-अणिरुद्ध-दढणेमि-सच्चणेमि-प्पभियओ कुमारा जे णं चइत्ता हिरण्णं, जाव [चइत्ता सुवण्णं एवं धण्णं धणं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं पुरं अंतेउरं चइत्ता विउलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-संतसार-सावएज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दाइयाणं] परिभाइत्ता, अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडा जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइया। अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव [रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य] अंतेउरे

१. २. देखिये—वर्ग १, सूत्र ५.

य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स जाव [अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइत्तए।'

'कण्हाइ !' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"से नूणं कण्हा ! तव अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-धण्णा णं ते जालिप्पभिइकुमारा जाव[3] पव्वइया। से नूणं कण्हा ! अत्थे समत्थे ?

हंता अत्थि।

तं नो खलु कण्हा ! एयं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव[4] पव्वइस्संति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'न एयं भूयं वा जाव[5] पव्वइस्संति ?

'कण्हाइ !' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा से एतेणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चइ न एयं भूयं जाव[6] पव्वइस्संति।

अरिहन्त अरिष्टनेमि से द्वारका नगरी के विनाश का कारण सुन-समझकर श्रीकृष्ण वासुदेव के मन में ऐसा विचार चिन्तन, प्रार्थित एवं मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि—वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेन, वीरसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढनेमि और सत्यनेमि प्रभृति कुमार धन्य हैं जो हिरण्यादि [संपदा और धन, सैन्य, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर, अन्तःपुर आदि परिजन छोड़कर तथा बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांसा, दूष्य-वस्त्र, मणि, मोती, संख, सिला, मूंगा, लालरत्न आदि सारभूत द्रव्य आदि] देयभाग देकर, नेमिनाथ प्रभु के पास मुंडित होकर अगार को त्यागकर अनगार रूप में प्रव्रजित हो गये हैं। मैं अधन्य हूं, अकृत-पुण्य हूं कि राज्य, [कोष, कोष्ठागार, सैन्य, वाहन, नगर] अन्तःपुर और मनुष्य संबंधी कामभोगों में मूर्छित हूं, इन्हें त्यागकर भगवान् नेमिनाथ के पास मुंडित होकर अनगार रूप में प्रव्रजित होने में असमर्थ हूं।

भगवान् नेमिनाथ प्रभु ने अपने ज्ञान-बल से कृष्ण वासुदेव के मनमें आये इन विचारों को जानकर आर्त्तध्यान में डूबे हुए कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—"निश्चय ही हे कृष्ण ! तुम्हारे मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—वे जालि, मयालि आदि कुमार धन्य हैं जिन्होंने धन वैभव एवं स्वजनों को त्यागकर मुनिव्रत ग्रहण किया और मैं अधन्य हूं, अकृतपुण्य हूं जो राज्य अन्तःपुर और मनुष्य संबंधी काम-भोगों में गृद्ध हूं। मैं प्रभु के पास प्रव्रज्या नहीं ले सकता। हे कृष्ण ! क्या यह बात सही है ?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"हाँ भगवन् ! आपने जो कहा वह सभी यथार्थ है।"

प्रभु ने फिर कहा—"तो हे कृष्ण ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव अपने भव में धन-धान्य-स्वर्ण आदि संपत्ति छोड़कर मुनिव्रत ले लें। वासुदेव दीक्षा लेते नहीं, ली नहीं एवं भविष्य में कभी लेंगे भी नहीं।"

---

३. ४. ५. ६—इसी सूत्र में ऊपर पाठ आ चुका है।

श्रीकृष्ण ने कहा—"हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं । इसका क्या कारण है ?"

अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् ने कहा—"हे कृष्ण ! निश्चय ही सभी वासुदेव पूर्व भव में निदानकृत (नियाणा करने वाले) होते हैं, इसलिये मैं ऐसा कहता हूं कि ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव कभी प्रव्रज्या अंगीकार करें ।"

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में अरिष्टनेमि भगवान् से पूछे गये कुछ प्रश्नों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । द्वारका के विनाश का कारण सुनकर श्रीकृष्ण का संयमियों के प्रति अनुराग बढ़ा और साथ ही स्वयं के प्रति ग्लानि हुई कि वे स्वयं दीक्षा नहीं ले सकते हैं ! उनकी इस व्यथा के समाधान में भगवान् ने कहा—तुम वासुदेव हो । और तीन काल में कभी कोई वासुदेव दीक्षा नहीं ले सकता क्योंकि पूर्व में उन्होंने निदान किया होता है ।

'निदान' जैन परम्परा का अपना एक पारिभाषिक शब्द है । मोहनीय कर्म के उदय से कामभोगों की इच्छा होने पर साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का अपने चित्त में संकल्प कर लेना कि मेरी तपस्या से मुझे अमुक फल की प्राप्ति हो, उसे निदान करते हैं । जन साधारण में इसे नियाणा कहा जाता है । निदान कल्याण-साधक नहीं । जो व्यक्ति निदान करके मरता है, उसका फल प्राप्त करने पर भी उसे निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती । वह बहुत काल तक संसार में भटकता है । दशाश्रुतस्कंध की दशवीं दशा में निदान के नव कारण बताये हैं । वे इस प्रकार हैं—

१. एक पुरुष किसी समृद्धिशाली को देखकर निदान करता है ।
२. स्त्री अच्छा पुरुष प्राप्त करने के लिये निदान करती है ।
३. पुरुष सुन्दर स्त्री के लिए निदान करता है ।
४. स्त्री किसी सुखी एवं सुन्दर स्त्री को देखकर निदान करती है ।
५. कोई जीव देवगति में देवरूप से उत्पन्न होकर अपनी तथा दूसरी देवियों को वैक्रिय शरीर द्वारा भोगने का निदान करता है ।
६. कोई जीव देवभव में सिर्फ अपनी देवी को भोगने का निदान करता है ।
७. कोई जीव अगले भव में श्रावक बनने का निदान करता है ।
८. कोई जीव देवभव में अपनी देवी को बिना वैक्रिय के भोगने का निदान करता है ।
९. कोई जीव अगले भव में साधु बनने का निदान करता है ।

इनमें से पहले चार प्रकार के निदान करनेवाला जीव केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म को सुन भी नहीं सकता । पांचवां निदान करने वाला जीव धर्म को सुन तो सकता है, पर दुर्लभबोधि होता है और बहुत काल तक संसार में परिभ्रमण करता है । छठे निदानवाला जीव जिनधर्म को सुनकर और समझ कर भी दूसरे धर्म की ओर रुचि रखता है । सातवें निदान वाला जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, धर्म पर श्रद्धा कर सकता है, किन्तु व्रत अंगीकार नहीं कर सकता है । आठवें निदान वाला श्रावक का व्रत ले सकता है, पर साधु नहीं हो सकता । नवें निदान वाला जीव साधु हो सकता है, पर उसी भव में मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता ।

श्रीकृष्ण के तीर्थंकर होने की भविष्यवाणी

४—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी—

"अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?"

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निदड्डाए अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जुहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुराय-पुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थ-पच्छाइय-सरीरे जराकुमारेणं तिक्खेणं कोदंड-विप्पमुक्केणं उसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव[1] झियाइ।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमण-संकप्पे जाव[2] झियाह। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे नयरे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि। तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणेत्ता सिज्झिहिसि बुज्झिहिसि मुच्चिहिसि परिनिव्वाहिसि सव्वदुक्खाणं अंतं काहिसि।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० अप्फोडेइ, अप्फोडेत्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवइं छिंदइ, छिंदित्ता सीहणायं करेइ, करेत्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव आभिसेक्कं हत्थिं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई नयरी, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

तब कृष्ण वासुदेव अरिहंत अरिष्टनेमि को इस प्रकार बोले—

"हे भगवन् ! यहाँ से काल के समय काल कर मैं कहाँ जाऊंगा, कहां उत्पन्न होऊंगा ?"

इसके उत्तर में अरिष्टनेमि भगवान् ने कहा—

हे कृष्ण ! तुम सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कोप के कारण इस द्वारका नगरी के जल कर नष्ट हो जाने पर और अपने माता-पिता एवं स्वजनों का वियोग हो जाने पर राम बलदेव के साथ दक्षिणी समुद्र के तट की ओर पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पाचों पांडवों के समीप पाण्डु मथुरा की ओर जाओगे। रास्ते में विश्राम लेने के लिये कौशाम्ब वन-उद्यान में अत्यन्त विशाल एक वटवृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर पीताम्बर ओढकर तुम सो जाओगे। उस समय मृग के भ्रम में जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण तीर तुम्हारे बाएं पैर में लगेगा। इस तीक्ष्ण तीर से विद्ध होकर तुम काल के समय काल करके वालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी में जन्म लोगे। प्रभु के श्रीमुख से

१. २. देखिये वर्ग ३, सूत्र १२.

अपने आगामी भव की यह बात सुनकर कृष्ण वासुदेव खिन्नमन होकर आर्त्त ध्यान करने लगे। तब अरिहंत अरिष्टनेमि पुनः इस प्रकार बोले—

"हे देवानुप्रिय! तुम खिन्नमन होकर आर्त्त ध्यान मत करो। निश्चय से हे देवानुप्रिय! कालान्तर में तुम तीसरी पृथ्वी से निकलकर इसी जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में आने वाले उत्सर्पिणी काल में पुंड्र जनपद के शतद्वार नाम के नगर में "अमम" नाम के बारहवें तीर्थंकर बनोगे। वहाँ बहुत वर्षों तक केवली पर्याय का पालन कर तुम सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होओगे।"

अरिहंत प्रभु के मुखारविन्द से अपने भविष्य का यह वृत्तान्त सुनकर कृष्ण वासुदेव बड़े प्रसन्न हुए और अपनी भुजा पर ताल ठोकने लगे। जयनाद करके त्रिपदी-भूमि में तीन बार पाँव का न्यास किया—कूदे। थोड़ा पीछे हटकर सिंहनाद किया और फिर भगवान् नेमिनाथ को वंदन नमस्कार करके अपने अभिषेक-योग्य हस्तिरत्न पर आरूढ हुए और द्वारका नगरी के मध्य से होते हुए अपने राजप्रासाद में आये। अभिषेकयोग्य हाथी से नीचे उतरे और फिर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहां अपना सिंहासन था वहां आये। वे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख विराजमान हुए। फिर अपने आज्ञाकारी पुरुषों—राजसेवकों को बुलाकर इस प्रकार बोले—

श्रीकृष्ण की धर्मघोषणा

५—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवईए नयरीए सिंघाडग जाव [तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्दे णं] उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—'एवं खलु देवाणुप्पिया! बारवईए नयरीए नवजोयण जाव[1] देवलोगभूयाए सुरग्गि-दीवायण-मूलाए विणासे भविस्सइ, तं जो णं देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवईए नयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे वा तलवरे वा माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव[2] पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जेइ। पच्छातुरस्स वि य से अहापवित्तं विंत्ति अणुजाणइ। महया इड्ढिसक्कारसमुदएण य से निक्खमणं करेइ। दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसित्ता ममं एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।

देवानुप्रियो! तुम द्वारका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख महापथों एवं पथों में हस्तिस्कंध पर से जोर-जोर से घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो कि—"हे द्वारकावासी नगरजनो! इस बारह योजन लंबी यावत् प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारका नगरी का सुरा, अग्नि एवं द्वैपायन के कोप के कारण नाश होगा, इसलिये हे देवानुप्रियो! द्वारका नगरी में जिसकी इच्छा हो, चाहे वह राजा हो, युवराज हो, ईश्वर (स्वामी या राजकुमार) हो, तलवर (राजा का मान्य) हो, माडंविक (छोटे गांव का स्वामी) हो, कौटुम्बिक (दो तीन कुटुंबों का स्वामी) हो, इभ्य हो, रानी हो, कुमार हो, कुमारी हो, राजरानी हो, राजपुत्री हो, इन में से जो भी प्रभु नेमिनाथ के निकट मुण्डित होकर यावत् दीक्षा लेना चाहे, उसे कृष्ण वासुदेव ऐसा करने की आज्ञा देते हैं। दीक्षार्थी के पीछे उसके आश्रित सभी कुटुंबीजनों को भी श्रीकृष्ण यथायोग्य व्यवस्था करेंगे और बड़े ऋद्धि-सत्कार के साथ उसका दीक्षा-महोत्सव संपन्न करेंगे।" इस प्रकार दो-तीन बार घोषणा

१. वर्ग १, सूत्र-५.   २. वर्ग ५, सूत्र-२.

श्रीकृष्ण के तीर्थंकर होने की भविष्यवाणी

४—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी—

"अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?"

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निदड्ढाए अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जुहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुराय-पुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थ-पच्छाइय-सरीरे जराकुमारेणं तिक्खेणं कोदंड-विप्पमुक्केणं उसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव[1] झियाइ।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमण-संकप्पे जाव[2] झियाह। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जवणएसु सयदुवारे नयरे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि। तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणेत्ता सिज्झिहिसि बुज्झिहिसि मुच्चिहिसि परिनिव्वाहिसि सव्वदुक्खाणं अंतं काहिसि।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० अप्फोडेइ, अप्फोडेत्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवइं छिंदइ, छिंदित्ता सीहणायं करेइ, करेत्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव आभिसेक्कं हत्थिं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई नयरी, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

तब कृष्ण वासुदेव अरिहंत अरिष्टनेमि को इस प्रकार बोले—

"हे भगवन् ! यहाँ से काल के समय काल कर मैं कहाँ जाऊंगा, कहां उत्पन्न होऊंगा ?"

इसके उत्तर में अरिष्टनेमि भगवान् ने कहा—

हे कृष्ण ! तुम सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कोप के कारण इस द्वारका नगरी के जल कर नष्ट हो जाने पर और अपने माता-पिता एवं स्वजनों का वियोग हो जाने पर राम बलदेव के साथ दक्षिणी समुद्र के तट की ओर पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों के समीप पाण्डु मथुरा की ओर जाओगे। रास्ते में विश्राम लेने के लिये कौशाम्ब वन-उद्यान में अत्यन्त विशाल एक वटवृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर पीताम्बर ओढकर तुम सो जाओगे। उस समय मृग के भ्रम में जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण तीर तुम्हारे बाएं पैर में लगेगा। इस तीक्ष्ण तीर से विद्ध होकर तुम काल के समय काल करके वालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी में जन्म लोगे। प्रभु के श्रीमुख से

१. २. देखिये वर्ग ३, सूत्र १२.

को दोहरा कर पुनः मुझे सूचित करो।" कृष्ण का यह आदेश पाकर उन आज्ञाकारी राजपुरुषों ने वैसी ही घोषणा दो-तीन बार करके लौटकर इसकी सूचना श्रीकृष्ण को दी।

विवेचन--पिछले सूत्रों में श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि से अपने मृत्यु-वृत्तान्त की और नूतन जन्म कहाँ किस स्थिति में होगा, इस सम्बन्ध की जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् धार्मिक घोषणा करवाते हैं। उनकी इस जिज्ञासा के समाधान में भगवान् अरिष्टनेमि ने उनके तृतीय पृथ्वी में उत्पन्न होने और फिर भावी तीर्थंकर चौवीसी में १२ वें अमम नामके तीर्थंकर होने का भविष्य प्रकट किया है।

कृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता है। वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार पर अर्थ होता है—"वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः।" वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था, अतः इनको वासुदेव कहते हैं। वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है—कृष्ण का दूसरा नाम है, परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ मान्य होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द बन गया है। अतएव सभी अर्धचक्रवर्त्ती वासुदेव शब्द से कहे जाते हैं। जैन-परम्परा में वासुदेव नौ कहे गए हैं—१. त्रिपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयंभू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुष-पुण्डरीक, ७. दत्त, ८. नारायण (लक्ष्मण), ९ कृष्ण। इनमें कृष्ण का अंतिम स्थान है। वासुदेव का पारिभाषिक अर्थ है—जो सात रत्नों, छह खंडों में से तीन खंडों का अधिपति हो तथा जो अनेकविध ऋद्धियों से सम्पन्न हो। जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एवं मारकर तीन खंड पर राज्य किया करते हैं। इसके अतिरिक्त जैन परम्परा ने २८ लब्धियों में से वासुदेव भी एक लब्धि मानी है। तीन खंड तथा सात रत्नों के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं, इस पद का प्राप्त होना वासुदेव लब्धि है। वासुदेव में महान् बल होता है। इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते हैं—कूप के किनारे बैठे हुए और भोजन करते हुए वासुदेव को जंजीरों से बांध कर यदि चतुरंगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा मिलकर खींचने लगें तो भी वे उन्हें खींच नहीं सकते, किन्तु उसी जंजीर को बाएं हाथ से पकड़ कर वासुदेव अपनी ओर उन्हें आसानी से खींच सकता है।

जैन आगमों में जिन कृष्ण का उल्लेख है वे ऐसे ही वासुदेव हैं, वासुदेव-लब्धि से सम्पन्न हैं। अन्तगडसूत्र में एक वासुदेव कृष्ण का वर्णन किया है। सनातन-धर्मियों के साहित्य में वासुदेव शब्द की जैन-शास्त्र सम्मत व्याख्या देखने में नहीं आती। वैदिक साहित्य में वासुदेव पदविशेष या लब्धि-विशेष है ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।

अन्तगड सूत्र तथा अन्य आगमों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्ट-नेमि के अनन्य श्रद्धालु भक्त थे, उपासक थे। यही कारण है कि भगवान् के द्वारका में पधारने पर वे बड़ी सजधज के साथ दर्शनार्थ उनकी सेवा में उपस्थित होते हैं, अपने परिवार को साथ ले जाते हैं, उनकी धर्मदेशना सुनते हैं। भगवान् से द्वारकादाह की बात सुनकर स्वयं भगवान् के चरणों में दीक्षित न हो सकने के कारण आकुल होते हैं। जालिकुमार आदि राजकुमारों के दीक्षित होकर आत्म-कल्याणोन्मुख होने से उनकी प्रशंसा करते हैं। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के अनुयायी थे। उनके मार्ग पर चलनेवालों को सहयोग देते थे, क्षमता न होने पर भी उस पर स्वयं चलने की अभिलाषा रखते थे। संक्षेप में कहा जाय तो कृष्ण महाराज जैन धर्मावलम्बी थे।

भद्दिलपुर निवासी सेठ नाग के छह पुत्र, जो भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित हुए थे, वासुदेव कृष्ण के ममेरे भाई थे। गजसुकुमार तो वासुदेव कृष्ण के अनुज भाई ही थे। इस तरह महाराज कृष्ण के ये सात भाई भगवान् अरिष्टनेमि के पास जैन साधु बने थे।

जालिकुमार, मयालिकुमार, उपयालिकुमार, पुरुषपेणकुमार और वारिपेणकुमार—ये पांचों महाराज वसुदेव के पुत्र थे, अतः वासुदेव कृष्ण के भाई थे, इनकी माता धारिणी थी, राजकुमार सत्यनेमि तथा दृढ़नेमि ये दोनों राजकुमार वासुदेव कृष्ण के ताऊ के लड़के थे। प्रद्युम्नकुमार तथा शाम्बकुमार ये दोनों वासुदेव कृष्ण के पुत्र थे। राजकुमार अनिरुद्ध वासुदेव कृष्ण का पोता था। सभी राजकुमार भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में साधु बने थे।

महारानी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जांववती, सत्यभामा, रुक्मिणी ये आठों महाराज कृष्ण की रानियाँ थीं। मूलश्री तथा मूलदत्ता ये दोनों कृष्ण महाराज के पुत्र शाम्बकुमार की रानियाँ थीं। ये सब भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होकर जैन साध्वी बन गई थीं।

प्रस्तुत सूत्र के अनुसार वासुदेव कृष्ण अपने राजसेवकों द्वारा द्वारका नगरी के सभी प्रदेशों में एक उद्घोषणा कराते हैं। घोषणा में कहा जाता है कि द्वारका नगरी एक दिन द्वैपायन ऋषि द्वारा जला दी जायेगी, अतः जो भी व्यक्ति भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होकर अपना कल्याण करना चाहे, उसे महाराज कृष्ण की आज्ञा है। किसी को पीछे वालों की चिन्ता हो तो उसे वह छोड़ देनी चाहिए, पीछे की सब व्यवस्था महाराज कृष्ण स्वयं करेंगे। इसके अतिरिक्त घोषणा में यह भी कहा गया था कि जो भी व्यक्ति साधु बन कर अपना कल्याण करना चाहे, इसके दीक्षा-समारोह की सब व्यवस्था महाराज श्रीकृष्ण की ओर से होगी। यह घोषणा एक बार नहीं, तीन-तीन बार की गई थी।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण वासुदेव को जहां नरकगामी बतलाया गया है वहाँ उन्हें तीर्थंकर बन जाने के अनन्तर मोक्षगामी बतला कर परम सम्मान भी प्रदान किया गया है।

मदोन्मत्त यादवकुमारों से प्रताडित द्वैपायन ऋषि ने निदान कर लिया था कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारका नगरी को जला कर भस्म कर दूं। निदानानुसार द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार जाति के देव बने। इधर वह पूर्व वैर का स्मरण करके द्वारकादाह का अवसर देख रहा था, परन्तु प्रतिदिन की आयंबिल तपस्या के प्रभाव के सामने उसका कोई वश नहीं चलता था। वह द्वारका नगरी को जलाने में असफल रहा, तथापि उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा, लगातार बारह वर्षों तक उसका यह प्रयत्न चलता रहा। बारह वर्षों के बाद द्वारका के कुछ लोग सोचने लगे—तपस्या करते-करते वर्षों व्यतीत हो गए हैं, अब अग्निकुमार हमारा क्या बिगाड़ सकता है? इसके अतिरिक्त कुछ लोग यह भी सोच रहे थे कि द्वारका के सभी लोग तो आयंबिल कर ही रहे हैं, यदि हम लोग न भी करें तो इससे क्या अन्तर पड़ता है? समय की बात समझिए कि द्वारका में एक दिन ऐसा आ गया जब किसी ने भी तप नहीं किया। व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण संकट-मोचक आचाम्ल तप से सभी विमुख हो गए। अग्निकुमार द्वैपायन ऋषि के लिये इससे बढ़कर और कौन सा अवसर हो सकता था! उसने द्वारका को आग लगा दी। चारों ओर भयंकर शब्द होने लगे, जोर की आंधी चलने लगी, भूचाल से मकान धराशायी होने लगे, अग्नि ने सारी द्वारका को अपनी लपेट में ले

को दोहरा कर पुन: मुझे सूचित करो।" कृष्ण का यह आदेश पाकर उन आज्ञाकारी राजपुरुषों ने वैसी ही घोषणा दो-तीन बार करके लौटकर इसकी सूचना श्रीकृष्ण को दी।

विवेचन—पिछले सूत्रों में श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि से अपने मृत्यु-वृत्तान्त की और नूतन जन्म कहाँ किस स्थिति में होगा, इस सम्बन्ध की जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् धार्मिक घोषणा करवाते हैं। उनकी इस जिज्ञासा के समाधान में भगवान् अरिष्टनेमि ने उनके तृतीय पृथ्वी में उत्पन्न होने और फिर भावी तीर्थंकर चौवीसी में १२ वें अमम नामके तीर्थंकर होने का भविष्य प्रकट किया है।

कृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता है। वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार पर अर्थ होता है—"वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः।" वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था, अतः इनको वासुदेव कहते हैं। वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है—कृष्ण का दूसरा नाम है, परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ मान्य होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द बन गया है। अतएव सभी अर्धचक्रवर्त्ती वासुदेव शब्द से कहे जाते हैं। जैन-परम्परा में वासुदेव नौ कहे गए हैं—१. त्रिपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयंभू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुष-पुण्डरीक, ७. दत्त, ८. नारायण (लक्ष्मण), ९ कृष्ण। इनमें कृष्ण का अंतिम स्थान है। वासुदेव का पारिभाषिक अर्थ है—जो सात रत्नों, छह खंडों में से तीन खंडों का अधिपति हो तथा जो अनेकविध ऋद्धियों से सम्पन्न हो। जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एवं मारकर तीन खंड पर राज्य किया करते हैं। इसके अतिरिक्त जैन परम्परा ने २८ लब्धियों में से वासुदेव भी एक लब्धि मानी है। तीन खंड तथा सात रत्नों के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं, इस पद का प्राप्त होना वासुदेव लब्धि है। वासुदेव में महान् बल होता है। इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते हैं—कूप के किनारे बैठे हुए और भोजन करते हुए वासुदेव को जंजीरों से बांध कर यदि चतुरंगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा मिलकर खींचने लगें तो भी वे उन्हें खींच नहीं सकते, किन्तु उसी जंजीर को बाएं हाथ से पकड़ कर वासुदेव अपनी ओर उन्हें आसानी से खींच सकता है।

जैन आगमों में जिन कृष्ण का उल्लेख है वे ऐसे ही वासुदेव हैं, वासुदेव-लब्धि से सम्पन्न हैं। अन्तगडसूत्र में एक वासुदेव कृष्ण का वर्णन किया है। सनातन-धर्मियों के साहित्य में वासुदेव शब्द की जैन-शास्त्र सम्मत व्याख्या देखने में नहीं आती। वैदिक साहित्य में वासुदेव पदविशेष या लब्धि-विशेष है ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।

अन्तगड सूत्र तथा अन्य आगमों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्ट-नेमि के अनन्य श्रद्धालु भक्त थे, उपासक थे। यही कारण है कि भगवान् के द्वारका में पधारने पर वे बड़ी सजधज के साथ दर्शनार्थ उनकी सेवा में उपस्थित होते हैं, अपने परिवार को साथ ले जाते हैं, उनकी धर्मदेशना सुनते हैं। भगवान् से द्वारकादाह की बात सुनकर स्वयं भगवान् के चरणों में दीक्षित न हो सकने के कारण आकुल होते हैं। जालिकुमार आदि राजकुमारों के दीक्षित होकर आत्म-कल्याणोन्मुख होने से उनकी प्रशंसा करते हैं। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के अनुयायी थे। उनके मार्ग पर चलनेवालों को सहयोग देते थे, क्षमता न होने पर भी उस पर स्वयं चलने की अभिलाषा रखते थे। संक्षेप में कहा जाय तो कृष्ण महाराज जैन धर्मावलम्बी थे।

भद्दिलपुर निवासी सेठ नाग के छह पुत्र, जो भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित हुए थे, वासुदेव कृष्ण के ममेरे भाई थे। गजसुकुमार तो वासुदेव कृष्ण के अनुज भाई ही थे। इस तरह महाराज कृष्ण के ये सात भाई भगवान् अरिष्टनेमि के पास जैन साधु बने थे।

जालिकुमार, मयालिकुमार, उपयालिकुमार, पुरुषषेणकुमार और वारिषेणकुमार—ये पांचों महाराज वसुदेव के पुत्र थे, अतः वासुदेव कृष्ण के भाई थे, इनकी माता धारिणी थी, राजकुमार सत्यनेमि तथा दृढ़नेमि ये दोनों राजकुमार वासुदेव कृष्ण के ताऊ के लड़के थे। प्रद्युम्नकुमार तथा शाम्बकुमार ये दोनों वासुदेव कृष्ण के पुत्र थे। राजकुमार अनिरुद्ध वासुदेव कृष्ण का पोता था। सभी राजकुमार भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में साधु बने थे।

महारानी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जांववती, सत्यभामा, रुक्मिणी ये आठों महाराज कृष्ण की रानियाँ थीं। मूलश्री तथा मूलदत्ता ये दोनों कृष्ण महाराज के पुत्र शाम्बकुमार की रानियाँ थीं। ये सब भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होकर जैन साध्वी बन गई थीं।

प्रस्तुत सूत्र के अनुसार वासुदेव कृष्ण अपने राजसेवकों द्वारा द्वारका नगरी के सभी प्रदेशों में एक उद्घोषणा कराते हैं। घोषणा में कहा जाता है कि द्वारका नगरी एक दिन द्वैपायन ऋषि द्वारा जला दी जायेगी, अतः जो भी व्यक्ति भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होकर अपना कल्याण करना चाहे, उसे महाराज कृष्ण की आज्ञा है। किसी को पीछे वालों की चिन्ता हो तो उसे वह छोड़ देनी चाहिए, पीछे की सब व्यवस्था महाराज कृष्ण स्वयं करेंगे। इसके अतिरिक्त घोषणा में यह भी कहा गया था कि जो भी व्यक्ति साधु बन कर अपना कल्याण करना चाहे, इसके दीक्षा-समारोह की सब व्यवस्था महाराज श्रीकृष्ण की ओर से होगी। यह घोषणा एक बार नहीं, तीन-तीन बार की गई थी।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण वासुदेव को जहां नरकगामी बतलाया गया है वहाँ उन्हें तीर्थंकर बन जाने के अनन्तर मोक्षगामी बतला कर परम सम्मान भी प्रदान किया गया है।

मदोन्मत्त यादवकुमारों से प्रताडित द्वैपायन ऋषि ने निदान कर लिया था कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारका नगरी को जला कर भस्म कर दूं। निदानानुसार द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार जाति के देव बने। इधर वह पूर्व वैर का स्मरण करके द्वारकादाह का अवसर देख रहा था, परन्तु प्रतिदिन की आयंविल तपस्या के प्रभाव के सामने उसका कोई वश नहीं चलता था। वह द्वारका नगरी को जलाने में असफल रहा, तथापि उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा, लगातार बारह वर्षों तक उसका यह प्रयत्न चलता रहा। बारह वर्षों के बाद द्वारका के कुछ लोग सोचने लगे—तपस्या करते-करते वर्षों व्यतीत हो गए हैं, अब अग्निकुमार हमारा क्या बिगाड़ सकता है? इसके अतिरिक्त कुछ लोग यह भी सोच रहे थे कि द्वारका के सभी लोग तो आयंविल कर ही रहे हैं, यदि हम लोग न भी करें तो इससे क्या अन्तर पड़ता है? समय की बात समझिए कि द्वारका में एक दिन ऐसा आ गया जब किसी ने भी तप नहीं किया। व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण संकट-मोचक आचाम्ल तप से सभी विमुख हो गए। अग्निकुमार द्वैपायन ऋषि के लिये इससे बढ़कर और कौन सा अवसर हो सकता था! उसने द्वारका को आग लगा दी। चारों ओर भयंकर शब्द होने लगे, जोर की आंधी चलने लगी, भूचाल से मकान धराशायी होने लगे, अग्नि ने सारी द्वारका को अपनी लपेट में ले

लिया। वासुदेव कृष्ण ने आग शान्त करने के अनेकों यत्न किए, पर कर्मों का ऐसा प्रकोप चल रहा था कि आग पर डाला जानेवाला पानी तेल का काम कर रहा था। पानी डालने से आग शान्त होती है, पर उस समय ज्यों-ज्यों पानी डाला जाता था त्यों-त्यों अग्नि और अधिक भड़कती थी। अग्नि की भीषण ज्वालाएँ मानों गगन को भी भस्म करने का यत्न कर रही थीं। कृष्ण वासुदेव, बलराम, सब निराश थे, इनके देखते देखते द्वारका जल गई, वे उसे बचा नहीं सके।

द्वारका के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वासुदेव और बलराम वहां से जाने की तैयारी करने लगे। इसी बात को सूत्रकार ने "सुरदीवायणकोवनिदड्ढाए" इस पद से अभिव्यक्त किया है।

"अम्मा-पिइ-नियग-विप्पहूणे"—अम्बापितृ-निजकविप्रहीणः—मातृपितृभ्यां स्वजनेभ्यश्च विहीनः—अर्थात् माता-पिता और अपने सम्बन्धियों से रहित। कथाकारों का कहना है कि जब द्वारका नगरी जल रही थी तब कृष्ण वासुदेव और उनके बड़े भाई बलराम दोनों आग बुझाने की चेष्टा कर रहे थे, पर जब ये सफल नहीं हुए तब अपने महलों में पहुंचे और अपने माता-पिता को बचाने का प्रयत्न करने लगे। बड़ी कठिनाई से माता-पिता को महल में से निकालने में सफल हुए। इनका विचार था कि माता-पिता को रथ पर बैठाकर किसी सुरक्षित जगह पर पहुंचा दिया जाए। अपने विचार की पूर्ति के लिये वासुदेव श्रीकृष्ण जब अश्वशाला में पहुँचे तो देखते हैं, अश्वशाला जलकर नष्ट हो चुकी है। वे वहां से चले, रथशाला में आए। रथशाला को आग लगी हुई थी, किन्तु एक रथ उन्हें सुरक्षित दिखाई दिया। वे तत्काल उसी को बाहर ले आये, उस पर माता-पिता को बैठाया। घोड़ों के स्थान पर दोनों भाई जुत गए पर जैसे ही सिंहद्वार को पार करने लगे और रथ का जूआ और दोनों भाई द्वार से बाहर निकले ही थे कि तत्काल द्वार का ऊपरी भाग टूट पड़ा और माता-पिता उसी के नीचे दब गए। उनका देहान्त हो गया। वासुदेव कृष्ण तथा बलराम से यह मार्मिक भयंकर दृश्य देखा नहीं गया। वे माता-पिता के वियोग से अधीर हो उठे। जैसे-तैसे उन्होंने अपने मन को संभाला, माता पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न महान संताप को धैर्यपूर्वक सहन किया। माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों की इसी विहीनता को सूत्रकार ने "अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणे" इस पद से संसूचित किया है।

"रामेण बलदेवेण सद्धिं"—का अर्थ है—राम बलदेव के साथ। महाराज वसुदेव की एक रानी का नाम रोहिणी था। रोहिणी ने एक पुण्यवान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वह परम अभिराम सुन्दर था, इसलिए उसका नाम 'राम" रखा गया। आगे चलकर अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होने के कारण राम के साथ 'बल' विशेषण और जुड़ गया और वे राम, बलराम, बलभद्र और बल आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध हो गये। जैनशास्त्रों के अनुसार बलदेव एक पद विशेष भी है। प्रत्येक वासुदेव के बड़े भाई बलदेव कहलाते हैं, ये स्वर्ग या मोक्षगामी होते हैं। बलराम नौवें बलदेव थे। बलदेव और वासुदेव का प्रेम अनुपम और अद्वितीय होता है। महाराज कृष्ण के बड़े भाई बलदेव राम को ही सूत्रकार ने "रामेण बलदेवेण" इन पदों से व्यक्त किया है।

"दाहिणवेलाए अभिमुहे जुहिट्ठिल्लपामोक्खाणं", "पंचण्हं पांडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए" का अर्थ है—दक्षिणसमुद्र के किनारे पांडुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों के पास पाण्डु मथुरा की ओर चल दिये।

द्वारका नगरी के दग्ध हो जाने पर कृष्ण बड़े चिन्तित थे। उन्होंने बलराम से कहा—औरों

को शरण देनेवाला कृष्ण आज किस की शरण में जाये ? इसके उत्तर में बलराम कहने लगे—पाण्डवों की आपने सदा सहायता की है, उन्हीं के पास चलना ठीक है। उस समय पाण्डव हस्तिनापुर से निर्वासित होकर पाण्डुमथुरा में रह रहे थे। उनके निर्वासन की कथा ज्ञाताधर्मकथा से जान लेनी चाहिए।

बलराम की बात सुनकर कृष्ण बोले—जिनको सहारा दिया हो, उनसे सहारा लेना लज्जास्पद है, फिर सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) अपनी बहिन है। बहिन के घर रहना भी शोभास्पद नहीं है।

कृष्ण की तर्क-संगत बात सुनकर बलराम कहने लगे—भाई ! कुन्ती तो अपनी बूआ है, बूआ के घर जाने में अपमानजनक कोई बात नहीं।

अन्त में कृष्ण की अनिच्छा होने पर भी बलराम कृष्ण को साथ लेकर दक्षिण समुद्र के तट पर बसी पांडवों की राजधानी पाण्डुमथुरा की ओर चल दिए। सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में जो "दाहिणवेलाए अभिमुहे पांडुमहुरं संपत्थिए" ये पद दिये हैं ये उक्त कथानक की ओर ही संकेत कर रहे हैं।

"जराकुमारेणं"—का अर्थ है जराकुमार ने। जराकुमार यादववंशीय एक राजकुमार था, जो महाराज श्रीकृष्ण का भाई था। भगवान् अरिष्टनेमि ने भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि जराकुमार के बाण से वासुदेव की मृत्यु होगी। यह जानकर जराकुमार को बड़ा दुःख हुआ। उसने निश्चय किया कि मैं द्वारका छोड़कर कोशाम्रवन में चला जाता हूं, वहीं जीवन के शेष क्षण व्यतीत कर दूंगा, इससे श्रीकृष्ण की मृत्यु का कारण बनने से बच जाऊंगा। अपने निश्चय के अनुसार वह कोशाम्रवन में रहने लगा था। पर भवितव्यता कौन टाल सकता था ! द्वारका के जल जाने पर श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के साथ पाण्डुमथुरा जा रहे थे। रास्ते में कोशाम्रवन आया। महाराज श्रीकृष्ण को प्यास लगी, बलराम पानी लेने चले गये। पीछे श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे पीत वस्त्र ओढ़कर विश्राम करने लगे। उन्होंने एक पांव पर दूसरा पांव रखा हुआ था। वासुदेव के पांव में पद्म का चिह्न होता है। दूर से जैसे मृग की आँख चमकती है ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के पांव में पद्म-चिह्न चमक रहा था। उधर जराकुमार उसी वन में भ्रमण कर रहा था। उसे किसी शिकार की खोज थी। जब वह वट वृक्ष के निकट आया तो उसे दूर से ऐसा लगा जैसे कोई मृग बैठा है। उसने तत्काल धनुष पर बाण चढ़ाया, और छोड़ दिया। बाण लगते ही कृष्ण छटपटा उठे। उन्हें ध्यान आया कि बाण कहीं जराकुमार का तो नहीं ? जराकुमार को सामने देखकर उनका विचार सत्य प्रमाणित हुआ। जराकुमार के क्षमा मांगने पर वे बोले—

जराकुमार ! तुम्हारा इसमें क्या दोष है ? भवितव्यता ही ऐसी थी। भगवान् अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी अन्यथा कैसे हो सकती थी? बलराम के आने का समय निकट देखकर कृष्ण बोले—जराकुमार ! तुम यहाँ से भाग जाओ, अन्यथा बलराम के हाथों से तुम बच नहीं सकोगे। जिस अधम कार्य से जराकुमार बचना चाहता था, जिस पाप से बचने के लिए उसने द्वारका नगरी को छोड़कर कोशाम्रवन का वास अंगीकार किया था, उसी पाप को अपने हाथों से होते देखकर उसका हृदय रो पड़ा। पर क्या कर सकता था ? श्रीकृष्ण की वेदना उग्र हो गई, साथ ही उनकी शान्ति भंग हो गई। कहने लगे—मेरा घातक मेरे हाथों से बचकर निकल गया. मुझे तो उसे समाप्त कर ही देना

चाहिए था। रौद्रध्यान अपने यौवन पर आ गया और उसी रौद्रध्यानपूर्ण स्थिति में श्रीकृष्ण का देहान्त हो गया।

"तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए"—तृतीयस्यां वालुकाप्रभायां पृथिव्या-मुज्ज्वलिते नरके—अर्थात् वालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वी के उज्ज्वलित नरक में।

जैन—दृष्टि से यह जगत् ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक इन तीन लोकों में विभक्त है। अधोलोक में सात नरक हैं। अधोलोक के जिन स्थानों में पैदा होकर जीव अपने पापों का फल भोगते हैं, वे स्थान नरक कहलाते हैं। ये सात पृथ्वियों में विभक्त हैं जिनके नाम हैं—धम्मा, वंसा, शैला, अंजना, रिट्ठा, मघा तथा माघवई। इनके—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात गोत्र हैं।

शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखने वाली संज्ञा को 'नाम' कहते हैं और शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु को जो नाम दिया जाता है वह 'गोत्र' कहलाता है। बालुकाप्रभा तीसरी भूमि है। बालु-रेत अधिक होने से इसका नाम बालुकाप्रभा है। क्षेत्रस्वभाव से इसमें उष्ण वेदना होती है। यहां की भूमि जलते हुए अंगारों से भी अधिक तप्त है।

कृष्ण वासुदेव वालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वी में पैदा हुए। उज्ज्वलित शब्द के दो अर्थ होते हैं—पहला तीसरी भूमि का सातवाँ नरकेन्द्रक-नरकस्थान विशेष और दूसरा भीषण-भयंकर। उज्ज्वलित शब्द नरक का विशेषण है।

"उस्सप्पिणीए"—उत्सर्पिण्याम्—अर्थात् उत्सर्पिणीकाल में। जैन शास्त्रकारों ने काल को दो विभागों में विभक्त किया है, एक का नाम अवसर्पिणी और दूसरे का उत्सर्पिणी है। जिस काल में जीवों के संहनन (अस्थियों की रचनाविशेष), संस्थान, क्रमशः हीन होते चले जाएं, आयु और अवगहना घटती चली जाए, वह काल अवसर्पिणी काल कहलाता है। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हीन होते चले जाते हैं। शुभ भाव घटते हैं, अशुभ भाव बढ़ते हैं। यह काल दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का है।

इसके विपरीत जिस काल में जीवों के संहनन आदि क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते चले जाते हैं, आयु और अवगाहना बढ़ती जाती है, वह उत्सर्पिणी काल है। पुद्गलों के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी इस काल में क्रमशः शुभ होते जाते हैं। यह काल भी दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—कृष्ण! आने वाले उत्सर्पिणीकाल में पुण्ड्र देश के शतद्वार नगर में अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर होओगे।

प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद में भारतवर्ष में साढे २५ देशों को आर्य माना गया है। आर्य देश में ही अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव की उत्पत्ति बताई गई है। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन साढे २५ देशों के नाम शास्त्रों में बतलाए गए हैं उनमें पुण्ड्र देश का नाम देखने को नहीं मिलता, ऐसी दशा में उसको आर्यदेश कैसे कह सकते हैं? भगवान् अरिष्टनेमि के कथना-नुसार वहाँ कृष्ण वासुदेव बारहवें तीर्थंकर बनेंगे, तो पुण्ड्र देश को अनार्य भी नहीं कह सकते। यदि तीर्थंकर की उत्पत्ति होने से उसे आर्य देश मानें तो फिर साढे २५ की गणना असंगत हो जाती है।

यह पूर्वापर का विरोध संगति चाहता है। उत्तर में निवेदन है कि जहां पर तीर्थंकर आदि महापुरुषों का जन्म होता है, वे देश आर्य हैं, यह सिद्धान्त युक्तियुक्त और शास्त्रसम्मत है। रही बात साढे २५ देशों की गणना की, वह भगवान् महावीर स्वामी के समय की अपेक्षा से की गई प्रतीत होती है। अतः पुण्ड्र देश को आर्य देश मानने में किसी प्रकार का विरोध दिखाई नहीं देता।

"अरहा" शब्द भगवान् अरिष्टनेमि की सामान्य अर्थ से सर्वज्ञता का सूचक है तथा विशेष अर्थ से तीर्थंकरत्व का द्योतक है। "रह" अर्थात् रहस्य, गुप्तता आदि रह जिनमें नहीं है वे 'अरहा' अर्थात् जगत का कोई भी रहस्य जिनसे गुप्त नहीं है वे 'अरहा' हैं। अर्ह का अर्थ है—योग्य होना और पूजित होना। घातिकर्मों का अन्त करने से उन्हें अरिहन्त भी कहते हैं।

"अप्फोडेइ, अप्फोडइत्ता वग्गइ, वग्गइत्ता तिवतिं छिंदइ, छिंदित्ता सीहनायं करेइ'.—

अर्थात् इस पाठ से सूत्रकार ने चार बातें ध्वनित की हैं। महाराज कृष्ण भविष्य में बारहवें तीर्थंकर बनने की शुभ वार्ता सुनकर आनन्दविभोर हो उठते हैं। अपनी अनेकविध चेष्टाओं द्वारा अपने आन्तरिक हर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी ये चेष्टाएँ चार भागों में विभाजित की गई हैं— (१) भविष्य में तीर्थंकर जैसे महान् आध्यात्मिक पद को प्राप्त करूंगा, यह सुनकर श्रीकृष्ण प्रमुदित होकर अपनी भुजाएं फड़काते हैं। उनके अंगों में स्फुरणा आरम्भ हो जाती है। (२) श्रीकृष्ण उच्च स्वर से प्रसन्नता प्रकट करने वाले शब्दों का उच्चारण करते हैं। (३) पहलवानों की तरह भूमि पर तीन बार पैंतरे बदलते हैं या भगवान् के समवसरण में तीन बार उछलते हैं। (४) शेर की तरह गर्जना करते हैं।

६—तए णं सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[1] हियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं —देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव[2] पव्वयामि।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।'

तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव [परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं] कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा जाव[3] पव्वइत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए महत्थं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते जाव पच्चप्पिणंति।

---

१. तृतीय वर्ग, सूत्र ७. २-३. पंचम वर्ग, सूत्र २.

इसके बाद वह पद्मावती महारानी भगवान् अरिष्टनेमि से धर्मोपदेश सुनकर एवं उसे हृदय में धारण करके प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई, उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। यावत् वह अरिहंत नेमिनाथ को वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार वोली—

भंते ! निर्ग्रन्थप्रवचन पर मैं श्रद्धा करती हूं। जैसा आप कहते हैं वह वैसा ही है। आपका धर्मोपदेश यथार्थ है। हे भगवन् ! मैं कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर फिर देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं।

प्रभु ने कहा—'जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो। हे देवानुप्रिये ! धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो।'

नेमिनाथ प्रभु के ऐसा कहने के बाद पद्मावती देवी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ होकर द्वारका नगरी में अपने प्रासाद में आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी और जहां पर कृष्ण वासुदेव थे वहां आकर अपने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाकर, मस्तक पर अंजलि कर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोली—

'देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा हो तो मैं अरिहंत नेमिनाथ के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं।'

कृष्ण ने कहा—'देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो।'

तब कृष्ण वासुदेव ने अपने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही महारानी पद्मावती के दीक्षामहोत्सव की विशाल तैयारी करो, और तैयारी हो जाने की मुझे सूचना दो। तब आज्ञाकारी पुरुषों ने वैसा ही किया और दीक्षा-महोत्सव की तैयारी की सूचना दी।

७—तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरुहेइ, अट्ठसएणं सोवण्णकलसाणं जाव [एवं रुप्पकलसाणं, सुवण्णरुप्पकलसाणं, मणिकलसाणं, सुवन्नमणिकलसाणं, रुप्पमणिकलसाणं, सुवन्न-रुप्पमणिकलसाणं, भोमेज्जकलसाणं सव्वोदएहिं, सव्वमट्टियाहिं सव्वपुप्फेहिं सव्वगंधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहिहि य, सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं जाव [सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय-जमगसमगप्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुंदुभिघोसरवेणं महया महया] महाणिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सिबियं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ "पउमावइं देविं" सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणाभिरामा जाव [जीवियऊसासा हिययाणंदजणिया, उंबरपुप्फं पिव दुल्लहा सवणयाए] किमंग पुण पासणयाए तण्णं अहं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं दलयामि। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।'

इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती देवी को पट्ट पर विठाया और एक सौ आठ सुवर्ण-कलशों से, [एक सौ आठ रजत-कलशों से, एक सौ आठ सुवर्ण-रजतमय कलशों से, एक सौ आठ मणिमय कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-मणि के कलशों, एक सौ आठ रजत-मणि के कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणि के कलशों और एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से— इस प्रकार आठ सौ चौंसठ कलशों में सब प्रकार का जल भर कर तथा सब प्रकार की मृत्तिका से, सब प्रकार के पुष्पों से, सब प्रकार के गंधों से, सब प्रकार की मालाओं से, सब प्रकार की औषधियों से तथा सरसों से उन्हें परिपूर्ण करके, सर्वसमृद्धि, द्युति तथा सर्व सैन्य के साथ, दुंदुभि के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दों के साथ उच्चकोटि के] निष्क्रमणाभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके फिर सभी प्रकार के अलंकारों से विभूषित करके हजार पुरुषों द्वारा उठायी जाने वाली शिविका (पालखी) में विठाकर द्वारका नगरी के मध्य से होते हुए निकले और जहां रैवतक पर्वत और सहस्राम्रवन उद्यान था उस ओर चले। वहां पहुँच कर पद्मावती देवी शिविका से उतरी। तदनन्तर कृष्ण वासुदेव जहां अरिष्टनेमि भगवान् थे वहां आये, आकर भगवान् को दक्षिण तरफ से तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना-नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

"भगवन् ! यह पद्मावती देवी मेरी पटरानी है। यह मेरे लिये इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और मन के अनुकूल चलने वाली है, अभिराम है। भगवन् ! यह मेरे जीवन में श्वासोच्छ्-वास के समान है, मेरे हृदय को आनन्द देने वाली है। इस प्रकार का स्त्री-रत्न उदुम्बर (गूलर) के पुष्प के समान सुनने के लिये भी दुर्लभ है ; तब देखने की तो बात ही क्या है ? हे देवानुप्रिय ! मैं ऐसी अपनी प्रिय पत्नी की भिक्षा शिष्या रूप में आपको देता हूं। आप उसे स्वीकार करें।"

कृष्ण वासुदेव की प्रार्थना सुनकर प्रभु बोले—'देवानुप्रिय ! तुम्हें जिस प्रकार सुख हो वैसा करो।'

८—तए णं सा पउमावई उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता, सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ, ओमुयित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते जाव[1] तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं धम्ममाइक्खियं।

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ पव्वावेत्ता सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणित्ताए दलयइ। तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देविं सयमेव जाव[2] संजमियव्वं। तए णं सा पउमावई अज्जा जाया। इरियासमिया जाव [भासासमिया एसणासमिया आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिया उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिया मण-समिया वइसमिआ कायसमिया मणगुत्ता वइगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया] गुत्तबंभयारिणी।

तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एकारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

१-२. वर्ग ५, सूत्र ८.

तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव [मुंडभावे, केसलोए, बंभचेरवासे, अण्हाणगं, अच्छत्तयं अणुवाहणयं भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जंति] तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं सिद्धा।

तब उस पद्मावती देवी ने ईशान-कोण में जाकर स्वयं अपने हाथों से अपने शरीर पर धारण किए हुए सभी आभूषण एवं अलंकार उतारे और स्वयं ही अपने केशों का पंचमुष्टिक लोच किया। फिर भगवान् नेमिनाथ के पास आकर वन्दना की। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन् ! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दुख रूपी आग में जल रहा है। यावत् मुझे दीक्षा दें।"

इसके बाद भगवान् नेमिनाथ ने पद्मावती देवी को स्वयमेव प्रव्रज्या दी, और स्वयं ही यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप में प्रदान की। तब यक्षिणी आर्या ने पद्मावती को धर्मशिक्षा दी, यावत् इस प्रकार संयमपूर्वक प्रवृत्ति करनी चाहिए। तब वह पद्मावती आर्या ईर्यासमिति, [भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिका समिति, मन:समिति, वचनसमिति, काय-समिति इन आठ समितियों और मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायागुप्ति से सम्पन्न, इन्द्रियों का गोपन करने वाली गुप्तेन्द्रिया—कछुए की भान्ति इन्द्रियों को वश में करने वाली] ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई।

तदनन्तर उस पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या से सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बहुत से उपवास—बेले-तेले-चोले-पचोले-मास और अर्धमास-खमण आदि विविध तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस तरह पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन किया और अन्त में एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित कर, साठ भक्त अनशन पूर्ण कर, जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव, [मुण्डभाव, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, अस्नानक, अछत्रक, अनुपाहनक, भूमिशय्या, फलकशय्या, परगृहप्रवेश, लाभालाभ, मानापमान, हीलना, अवहेलना, निन्दा, खिसना, ताड़ना, गर्हा, विविध प्रकार के ऊंचे-नीचे २२ परिषह तथा उपसर्ग सहन किये जाते हैं उस अर्थ का आराधन कर अन्तिम श्वास से सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गई।

२—८ अध्ययन

गौरी आदि

९—तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी। रेवयए पव्वए। उज्जाणे नंदणवणे। तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ। अरहा समोसढे। कण्हे णिग्गए। गोरी जहा पउमावई तहा निग्गया। धम्मकहा। परिसा पडिगया। कण्हे वि। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खंता जाव[1] सिद्धा।

१. वर्ग ५, सूत्र ५, ६.

एवं गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, जम्बवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, अट्ठवि पउमावईसरिसयाओ, अट्ठ अज्झयणा ।

उस काल और उस समय में द्वारका नगरी थी। उसके समीप रैवतक नाम का पर्वत था। उस पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान था। द्वारका नगरी में श्रीकृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उन कृष्ण वासुदेव की गौरी नाम की महारानी थी, औपपातिक सूत्र के अनुसार रानी का वर्णन जान लेना चाहिए। एक समय उस नन्दनवन उद्यान में भगवान् अरिष्टनेमि पधारे। कृष्ण वासुदेव भगवान् के दर्शन करने के लिए गये। जन-परिषद् भी गई। परिषद् लौट गई। कृष्ण वासुदेव भी अपने राज-भवन में लौट गये। तत्पश्चात् गौरी देवी पद्मावती रानी की तरह दीक्षित हुई यावत् सिद्ध हो गई।

इसी तरह (३) गांधारी, (४) लक्ष्मणा, (५) सुसीमा, (६) जाम्बवती, (७) सत्यभामा, और (८) रुक्मिणी के भी छह अध्ययन पद्मावती के समान ही समझने चाहिए।

९-१० अध्ययन

मूलश्री-मूलदत्ता

१०—तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए रेवयए पव्वए, नंदणवणे उज्जाणे, कण्हे वासुदेवे। तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्ते जंबवईए देवीए अत्तए संबे नामं कुमारे होत्था-अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरे। तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरी नामं भज्जा वि निग्गया, जहा पउमावई। जं नवरं—देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि जाव[1] सिद्धा।

एवं मूलदत्ता वि।

उस काल उस समय में द्वारका नगरी के पास रैवतक नाम का पर्वत था, जहां एक नन्दन वन उद्यान था। वहां कृष्ण-वासुदेव राज्य करते थे। कृष्ण वासुदेव के पुत्र और रानी जाम्बवती देवी के आत्मज शाम्ब नाम के कुमार थे जो सर्वांग सुन्दर थे। उन शाम्ब कुमार की मूलश्री नाम की भार्या थी। अत्यन्त सुन्दर एवं कोमलांगी थी। एक समय अरिष्टनेमि वहां पधारे। कृष्ण वासुदेव उनके दर्शनार्थ गये। मूलश्री देवी भी पद्मावती के समान प्रभु के दर्शनार्थ गई। विशेष में बोली—"हे देवानुप्रिय! कृष्ण वासुदेव से पूछती हूँ (पूछकर दीक्षित हुई) यावत् सिद्ध हो गई।

मूलश्री के ही समान मूलदत्ता का भी सारा वृत्तान्त जानना चाहिये। (यह शाम्ब कुमार की दूसरी रानी थी)।

तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव [मुंडभावे, केसलोए, बंभचेरवासे, अण्हाणगं, अच्छत्तयं अणुवाहणयं भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जंति] तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं सिद्धा।

तब उस पद्मावती देवी ने ईशान-कोण में जाकर स्वयं अपने हाथों से अपने शरीर पर धारण किए हुए सभी आभूषण एवं अलंकार उतारे और स्वयं ही अपने केशों का पंचमुष्टिक लोच किया। फिर भगवान् नेमिनाथ के पास आकर वन्दना की। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन्! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दुख रूपी आग में जल रहा है। यावत् मुझे दीक्षा दें।"

इसके बाद भगवान् नेमिनाथ ने पद्मावती देवी को स्वयमेव प्रव्रज्या दी, और स्वयं ही यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप में प्रदान की। तब यक्षिणी आर्या ने पद्मावती को धर्मशिक्षा दी, यावत् इस प्रकार संयमपूर्वक प्रवृत्ति करनी चाहिए। तब वह पद्मावती आर्या ईर्यासमिति, [भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिका समिति, मनःसमिति, वचनसमिति, काय-समिति इन आठ समितियों और मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायागुप्ति से सम्पन्न, इन्द्रियों का गोपन करने वाली गुप्तेन्द्रिया—कछुए की भान्ति इन्द्रियों को वश में करने वाली] ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई।

तदनन्तर उस पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या से सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बहुत से उपवास—बेले-तेले-चोले-पचोले-मास और अर्धमास-खमण आदि विविध तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस तरह पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन किया और अन्त में एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित कर, साठ भक्त अनशन पूर्ण कर, जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव, [मुण्डभाव, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, अस्नानक, अछत्रक, अनुपाहनक, भूमिशय्या, फलकशय्या, परगृहप्रवेश, लाभालाभ, मानापमान, हीलना, अवहेलना, निन्दा, खिसना, ताड़ना, गर्हा, विविध प्रकार के ऊंचे-नीचे २२ परिषह तथा उपसर्ग सहन किये जाते हैं उस अर्थ का आराधन कर अन्तिम श्वास से सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गई।

२—८ अध्ययन

गौरी आदि

९—तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी। रेवयए पव्वए। उज्जाणे नंदणवणे। तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ। अरहा समोसढे। कण्हे णिग्गए। गोरी जहा पउमावई तहा निग्गया। धम्मकहा। परिसा पडिगया। कण्हे वि। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खंता जाव[1] सिद्धा।

१. वर्ग ५, सूत्र ५, ६.

आर्य जम्बूस्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के पंचम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया, तो प्रभो ! श्रमण भगवान् महावीर ने छठे वर्ग के क्या भाव कहे हैं ? इसके उत्तर में सुधर्मा स्वामी बोले—'हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के छठे वर्ग के सोलह अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१) मकाई, (२) किंकम, (३) मुद्गरपाणि, (४) काश्यप, (५) क्षेमक, (६) धृतिधर, (७) कैलाश, (८) हरिचन्दन, (९) वारत्त, (१०) सुदर्शन, (११) पुण्यभद्र, (१२) सुमनभद्र, (१३) सुप्रतिष्ठित, (१४) मेघकुमार, (१५) अतिमुक्त कुमार और (१५) अलक्क (अलक्ष्य) कुमार।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से कहा—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने छट्ठे वर्ग के १६ अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल उस समय में राजगृहनामक नगर था। वहां गुणशीलनामक चैत्य-उद्यान था। उस नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। वहां मकाई नामक गाथापति रहता था, जो अत्यन्त समृद्ध यावत् अपरिभूत था।

उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर गुणशील उद्यान में [साधुवृत्ति के अनुकूल अवग्रह उपलब्ध कर, संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए] पधारे। प्रभु महावीर का आगमन सुनकर परिषद् दर्शनार्थ एवं धर्मोपदेश-श्रवणार्थ आई। मकाई गाथापति भी भगवतीसूत्र में वर्णित गंगदत्त के वर्णनानुसार अपने घर से निकला। धर्मोपदेश सुनकर वह विरक्त हो गया। घर आकर ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंपा और स्वयं हजार पुरुषों से उठाई जाने वाली शिविका (पालखी) में बैठकर श्रमणदीक्षा अंगीकार करने हेतु भगवान् की सेवा में आया। यावत् वह अनगार हो गया। ईर्या आदि समितियों से युक्त एवं गुप्तियों से गुप्त ब्रह्मचारी बन गया।

इसके बाद मकाई मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के गुणसंपन्न तथा वेषसम्पन्न स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कंदकजी के समान गुणरत्नसंवत्सर तप का आराधन किया। सोलह वर्ष तक दीक्षापर्याय में रहे। अन्त में विपुलगिरि पर्वत पर स्कन्दकजी के समान ही संथारादि करके सिद्ध हो गये।

किंकम भी मकाई के समान ही दीक्षा लेकर विपुलाचल पर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए।

—

छट्ठो वग्गो–षष्ठ वर्ग

१–२ अध्ययन

मकाई और किंकम

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी गाहा

(१) मकाइ (२) किंकमे चेव, (३) मोग्गरपाणी य (४) कासवे ।
(५) खेमए (६) धिइहरे, चेव (७) केलासे (८) हरिचंदणे ।।१।।

(९) वारत्त (१०) सुदंसण (११) पुण्णभद्द तह (१२) सुमणभद्द (१३) सुपइट्ठे ।
(१४) मेहे (१५) अइमुत्त (१६) अलक्के, अज्झयणाणं तु सोलसयं ।।२।।

जइ सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । तत्थ णं मकाई नामं गाहावई परिवसइ-अड्ढे जाव[1] अपरिभूए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे गुणसिलए जाव [चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ । परिसा निग्गया । तए णं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए । लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए निक्खंते जाव[2] अणगारे जाए-इरियासमिए जाव[3] गुत्तबंभयारी ।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । सेसं जहा खंदयस्स गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ । तहेव विउले सिद्धे ।

किंकमे वि एवं चेव जाव[4] विउले सिद्धे ।

---

१. वर्ग ३, सूत्र १.

२-३. वर्ग १, सूत्र १८.

४. इसी सूत्र के उपरोक्त वर्णनानुसार ।

आर्य जम्बूस्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के पंचम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया, तो प्रभो ! श्रमण भगवान् महावीर ने छठे वर्ग के क्या भाव कहे हैं ? इसके उत्तर में सुधर्मा स्वामी बोले—'हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के छठे वर्ग के सोलह अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१) मकाई, (२) किंकम, (३) मुद्‌गरपाणि, (४) काश्यप, (५) क्षेमक, (६) धृतिधर, (७) कैलाश, (८) हरिचन्दन,. (९) वारत्त, (१०) सुदर्शन, (११) पुण्यभद्र, (१२) सुमनभद्र, (१३) सुप्रतिष्ठित, (१४) मेघकुमार, (१५) अतिमुक्त कुमार और (१५) अलक्क (अलक्ष्य) कुमार।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से कहा—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने छट्‌ठे वर्ग के १६ अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल उस समय में राजगृहनामक नगर था। वहां गुणशीलनामक चैत्य-उद्यान था। उस नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। वहां मकाई नामक गाथापति रहता था, जो अत्यन्त समृद्ध यावत् अपरिभूत था।

उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर गुणशील उद्यान में [साधुवृत्ति के अनुकूल अवग्रह उपलब्ध कर, संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए] पधारे। प्रभु महावीर का आगमन सुनकर परिषद् दर्शनार्थ एवं धर्मोपदेश-श्रवणार्थ आई। मकाई गाथापति भी भगवतीसूत्र में वर्णित गंगदत्त के वर्णनानुसार अपने घर से निकला। धर्मोपदेश सुनकर वह विरक्त हो गया। घर आकर ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंपा और स्वयं हजार पुरुषों से उठाई जाने वाली शिविका (पालखी) में बैठकर श्रमणदीक्षा अंगीकार करने हेतु भगवान् की सेवा में आया। यावत् वह अनगार हो गया। ईर्या आदि समितियों से युक्त एवं गुप्तियों से गुप्त ब्रह्मचारी बन गया।

इसके बाद मकाई मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के गुणसंपन्न तथा वेषसम्पन्न स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कंदकजी के समान गुणरत्नसंवत्सर तप का आराधन किया। सोलह वर्ष तक दीक्षापर्याय में रहे। अन्त में विपुलगिरि पर्वत पर स्कन्दकजी के समान ही संथारादि करके सिद्ध हो गये।

किंकम भी मकाई के समान ही दीक्षा लेकर विपुलाचल पर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए।

—

तृतीय अध्ययन

मुद्गरपाणि

अर्जुन मालाकार

२—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसीलए चेइए। सेणिए राया। चेलणा देवी। तत्थ णं रायगिहे नयरे अज्जुणए नामं मालागारे परिवसइ-अड्ढे जाव[1] अपरिभूए। तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स बंधुमई नामं भारिया होत्था-सूमालपाणिपाया। तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थं णं महं एगे पुप्फारामे होत्था-किण्हे जाव [किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए, घण-कडिय-कडिच्छाए रम्मे महामेह] निउरंबभूए दसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते, एत्थ णं अज्जुणयस्स मालायारस्स अज्जय-पज्जय-पिइपज्ज-यागए अणेगकुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था-पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि-जक्खभत्ते यावि होत्था। कल्लाकल्लिं पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय, जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुणशीलकनामक उद्यान था। उस नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उस राजगृह नगर में 'अर्जुन' नाम का एक माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'बन्धुमती' था, जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुकुमार थी। उस अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक बड़ा पुष्पाराम (फूलों का बगीचा) था। वह पुष्पोद्यान कहीं कृष्ण वर्ण का था, [श्याम कान्तिवाला था, कहीं मोर के गले की तरह नील एवं नील कान्तिवाला था, कहीं हरित एवं हरित कान्तिवाला था। स्पर्श की दृष्टि से कहीं शीत और शीत कान्तिवाला, कहीं स्निग्ध एवं स्निग्ध कान्तिवाला, वर्णादि गुणों की अधिकता के कारण तीव्र एवं तीव्र छायावाला, शाखाओं के आपस में सघन मिलने से गहरी छायावाला, रम्य तथा महामेघों के] समुदाय की तरह प्रतीत हो रहा था। उसमें पांचों वर्णों के फूल खिले हुए थे। वह बगीचा इस भांति हृदय को प्रसन्न एवं प्रफुल्लित करने वाला अतिशय दर्शनीय था।

(उस पुष्पाराम अर्थात् फूलवाडी के समीप ही मुद्गरपाणि नामक यक्ष का यक्षायतन था) जो उस अर्जुनमाली के पुरखाओं—बाप-दादों से चली आई कुलपरंपरा से सम्बन्धित था। वह 'पूर्णभद्र' चैतन्य के समान पुराना, दिव्य एवं सत्य प्रभाव वाला था। उसमें 'मुद्गरपाणि' नामक यक्ष की एक प्रतिमा थी, जिसके हाथ में एक हजार पल-परिमाण (वर्तमान तोल के अनुसार लगभग ६२।। सेर तदनुसार लगभग ५७ किलो) भारवाला लोहे का एक मुद्गर था।

---

१. वर्ग ३, सूत्र १.

वह (अर्जुनमाली बचपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का उपासक था।) प्रतिदिन बांस की छबड़ी लेकर वह राजगृह नगर के बाहर स्थित अपनी उस फूलवाडी में जाता था और फूलों को चुन-चुन कर एकत्रित करता था। फिर उन फूलों में से उत्तम-उत्तम फूलों को छांटकर उन्हें उस मुद्गरपाणि यक्ष के समक्ष चढ़ाता था। इस प्रकार वह उत्तमोत्तम फूलों से उस यक्ष की पूजा-अर्चना करता और भूमि पर दोनों घुटने टेककर उसे प्रणाम करता। इसके बाद राजमार्ग के किनारे बाजार में बैठकर उन फूलों को बेचकर अपनी आजीविका उपार्जन किया करता था।

विवेचन—इस सूत्र से छट्ठे वर्ग के तृतीय अध्ययन का कथानक प्रारंभ होता है। इस अध्ययन का नाम है "मोग्गरपाणी।" वस्तुतः इस अध्ययन का पात्र है अर्जुनमाली। मुद्गरपाणि एक यक्ष है जो अपने सेवक अर्जुनमाली के जीवन में एक बहुत बड़ा तूफान लाता है। परन्तु उसी नगर के निवासी सुदर्शन नाम के एक श्रावक के सम्पर्क में तूफान शांत होता है। इस अध्याय में वर्णित यक्ष का नाम मुद्गरपाणि इस कारण है कि उसके पाणि अर्थात् हाथ में मुद्गर नाम का एक अस्त्र विशेष था। इसी कारण वह इस नाम से प्रसिद्ध था।

मुद्गरपाणि का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—"पलसहस्सणिप्पण्णं"—अर्थात् जिसका निर्माण हजार पलों से किया गया है। पल शब्द का अर्थ इस प्रकार है—दो कर्ष प्रमाण (कर्ष १० मासे का होता है)। कर्षाभ्यां पलं प्रोक्तं, कर्षः स्याद्दशमाषकः। (शार्ङ्गधर संहिता)। इस प्रकार २० मासे का एक पल होता है। अन्य कोषों में लिखा है—पल अर्थात् एक बहुत छोटी तोल, चार तोला (प्राकृतशब्दमहार्णव-पाइयसद्दमहण्णवो)। एक तोल (मान विशेष-अर्द्धमागधी कोष) अस्तु चार तोले का यदि एक पल माना जाय तो यक्ष के हाथ में १ मन १० सेर का विशाल मुद्गर था। अन्य प्रकार से इसकी व्याख्या यों है—आज कल के पांच रुपयों के भार बराबर एक पल होता है, १६ पलों का एक सेर होता है, इस तरह १००० पल के साढे बासठ (६२॥) सेर होते हैं। इन से बने हुए को 'पलसहस्र-निष्पन्न' कहते हैं।

'पच्छिपिडगाइं' इस पद में 'पच्छि' और 'पिटक' ये दो शब्द हैं। पच्छी देशीय भाषा का शब्द है जो छोटी टोकरी के लिये प्रयुक्त होता है। पिटक शब्द भी पिटारी का बोधक है। दो समानार्थक पदों का प्रयोग अनेकविध पिटारियों अर्थात् टोकरियों का बोधक है। भाव यह है कि अर्जुनमाली अनेक प्रकार की टोकरियाँ लेकर पुष्पवाटिका में जाया करता था।

गोष्ठिक पुरुषों का अनाचार

३—तत्थ णं रायगिहे नयरे ललिया नामं गोट्ठी परिवसइ-अड्ढा जाव अपरिभूया जंकयसुकया यावि होत्था।

तए णं रायगिहे नयरे अण्णया कयाइ पमोदे घुट्ठे यावि होत्था। तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जं इति कट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमईए भारियाए सद्धिं पच्छिपिडयाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ। तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति।

उस राजगृह नगर में 'ललिता' नाम की एक गोष्ठी (मित्रमंडली) थी। वह (उसके सदस्य) धन-धान्यादि से सम्पन्न थी तथा वह वहुतों से भी पराभव को प्राप्त नहीं हो पाती थी। किसी समय राजा का कोई अभीष्ट-कार्य संपादन करने के कारण राजा ने उस मित्र-मंडली पर प्रसन्न होकर अभयदान दे दिया था कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य करने में स्वतन्त्र है। राज्य की ओर से उसे पूरा संरक्षण था, इस कारण यह गोष्ठी वहुत उच्छृंखल और स्वच्छन्द वन गई।

एक दिन राजगृह नगर में एक उत्सव मनाने की घोषणा हुई। इस पर अर्जुनमाली ने अनुमान किया कि कल इस उत्सव के अवसर पर बहुत अधिक फूलों की मांग होगी। इसलिये उस दिन वह प्रातःकाल में जल्दी ही उठा और बांस की छवड़ी लेकर अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ जल्दी घर से निकला। निकलकर नगर में होता हुआ अपनी फुलवाड़ी में पहुंचा और अपनी पत्नी के साथ फूलों को चुन-चुन कर एकत्रित करने लगा। उस समय पूर्वोक्त "ललिता" गोष्ठी के छह गोष्ठिक पुरुष मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में आकर आमोद-प्रमोद करने लगे।

४—तए णं अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ, (पत्थियं भरेइ), भरेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ। तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी—

"एस णं देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडय-बंधणयं करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए," त्ति कट्टु, एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कवाडंतरेसु निलुक्कंति, निच्चला, निप्फंदा, तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठंति। तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, आलोए पणामं करेइ, महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, जण्णुपायपडिए पणामं करेइ। तए णं छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति, गेण्हित्ता अवओडय-बंधणं करेंति। बंधुमईए मालागारीए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

उधर अर्जुनमाली अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ फूल-संग्रह करके उनमें से कुछ उत्तम फूल छांटकर उनसे नित्य-नियम के अनुसार मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा करने के लिये यक्षायतन की ओर चला। उन छह गोष्ठिक पुरुषों ने अर्जुनमाली को बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन की ओर आते देखा। देखकर परस्पर विचार करके निश्चय किया—"अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ इधर ही आ रहा है। हम लोगों के लिये यह उत्तम अवसर है कि अर्जुनमाली को तो औंधी मुश्कियों (दोनों हाथों को पीठ पीछे) से बलपूर्वक बांधकर एक ओर पटक दें और बन्धुमती के साथ खूब काम क्रीडा करें।" यह निश्चय करके वे छहों उस यक्षायतन के किवाड़ों के पीछे छिप कर निश्चल खड़े हो गये और उन दोनों के यक्षायतन के भीतर प्रविष्ट होने की श्वास रोककर प्रतीक्षा करने लगे। इधर अर्जुनमाली अपनी (बन्धुमती भार्या) के साथ यक्षायतन में प्रविष्ट हुआ और यक्ष पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रणाम किया। फिर चुने हुए उत्तमोत्तम फूल उस पर चढ़ाकर दोनों घुटने भूमि पर टेककर प्रणाम किया। उसी समय शीघ्रता से उन छह गोष्ठिक पुरुषों ने किवाड़ों के पीछे से निकल

कर अर्जुनमाली को पकड़ लिया और उसकी औंधी मुश्कें बांधकर उसे एक ओर पटक दिया। फिर उसकी पत्नी बन्धुमती मालिन के साथ विविधप्रकार से कामक्रीडा करने लगे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में बताया है कि उन गोष्ठिक पुरुषों ने अर्जुनमाली को अवकोटक बन्धन से बाँधा, जिसका अर्थ होता है—गले में रस्सी डालकर उसे पीछे मोड़ना तथा दोनों भुजाओं को पीठ के पीछे ले जाकर बाँधना। जनसाधारण की भाषा में इसे मुश्कें बाँधना कहते हैं।

निच्चला····पच्छण्णा—का अर्थ इस प्रकार है—निच्चला-निश्चल-शरीर के व्यापार से रहित। निप्फंदा-निष्पंद-कम्पन से भी रहित। तुसिणीया-तूष्णीक-मौन। पच्छण्णा-प्रच्छन्न-छिपे हुए।

अर्जुन का प्रतिशोध

५—तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव[1] पुप्फच्चणं करेमि, जण्णुपायपडिए पणामं करेमि तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरामि। तं जइ णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए होंते, से णं किं मम एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते? तं नत्थि णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए। सुव्वत्तं णं एस कट्ठे। तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, छिंदित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गेण्हइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ।

तए णं से अज्जुणए मलागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लि इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ।

यह देखकर अर्जुनमाली के मन में यह विचार आया—"मैं अपने बचपन से ही भगवान् (मुद्गरपाणि को अपना इष्टदेव मानकर) इसकी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पूजा करता आ रहा हूं। इसकी पूजा करने के बाद ही इन फूलों को बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करता हूं। तो यदि मुद्गरपाणि यक्ष देव यहां वास्तव में ही होता तो क्या मुझे इस प्रकार विपत्ति में पड़ा देखता रहता? अतः निश्चय होता है कि वास्तव में यहां मुद्गरपाणि यक्ष नहीं है। यह तो मात्र काष्ठ का पुतला है। तब मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली के इस प्रकार के मनोगत भावों को जानकर उसके शरीर में प्रवेश किया और उसके बन्धनों को तड़ातड़ तोड़ डाला। तब उस मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट अर्जुनमाली ने लोहमय मुद्गर को हाथ में लेकर अपनी बन्धुमती भार्या सहित उन छहों गोष्ठिक पुरुषों को उस मुद्गर के प्रहार से मार डाला।

इस प्रकार इन सातों का घात करके मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट (वशीभूत) वह अर्जुन-माली राजगृह नगर की बाहरी सीमा के आसपास चारों ओर छह पुरुषों और एक स्त्री, इस प्रकार सात मनुष्यों की प्रतिदिन हत्या करते हुए घूमने लगा।

राजगृह नगर में आतंक

६—तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव [तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह] महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासेइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—

१. वर्ग ६. सूत्र २.

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे नयरे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ ।'

तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव[1] घाएमाणे घाएमाणे विहरइ । तं मा णं तुब्भे केइ कट्ठस्स वा तणस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइरं निग्गच्छह । मा णं तस्स सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसेत्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह । तए णं से कोडुंबियपुरिसा जाव[2] पच्चप्पिणंति ।

उस समय राजगृह नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख राजमार्ग आदि सभी स्थानों में बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार बोलने लगे—

"देवानुप्रियो ! अर्जुनमाली, मुद्‌गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर राजगृह नगर के बाहर एक स्त्री और छह पुरुष, इस प्रकार सात व्यक्तियों को प्रतिदिन मार रहा है ।"

उस समय जब श्रेणिक राजा ने यह बात सुनी तो उन्होंने अपने सेवक पुरुषों को बुलाया और उनको इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! राजगृह नगर के बाहर अर्जुनमाली यावत् छह पुरुषों और एक स्त्री—इस प्रकार सात व्यक्तियों का प्रतिदिन घात करता हुआ घूम रहा है । अतः तुम सारे नगर में मेरी आज्ञा को इस प्रकार प्रसारित करो कि कोई भी घास के लिये, काष्ठ, पानी अथवा फल-फूल आदि के लिये राजगृह नगर के बाहर न निकले । ऐसा न हो कि उनके शरीर का विनाश हो जाय । हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार दो तीन बार घोषणा करके मुझे सूचित करो ।' यह राजाज्ञा पाकर राजसेवकों ने राजगृह नगर में घूम घूम कर राजाज्ञा की घोषणा की और घोषणा करके राजा को सूचित कर दिया ।

श्रावक सुदर्शन श्रेष्ठी

७—तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ-अड्ढे० । तए णं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था-अभिगयजीवाजीवे जाव [उवलद्धपुण्णपावे, आसव-संवर-निज्जर-किरियाहिगरण-बंध-मोक्खकुसले, असहेज्जदेवा-सुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइ-एहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्वितिगिच्छे; लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते । अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अवंगुयदुवारे, चियत्तंते-उरपरघरदारप्पवेसे, बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोपवासेहिं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ—पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सिज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेण य पडिलाभेमाणे अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ ।

१-२. देखिए ऊपर प्रस्तुत सूत्र ।

उस राजगृह नगर में सुदर्शन नाम के एक धनाढ्य सेठ रहते थे। वे श्रमणोपासक—श्रावक थे और जीव-अजीव के अतिरिक्त [पुण्य और पाप के स्वरूप को भी जानते थे। इसी प्रकार आस्रव संवर निर्जरा क्रिया (कर्मबंध की कारणभूत पच्चीस प्रकार की क्रियाओं), अधिकरण (कर्मबंध का साधन-शस्त्र) तथा बंध और मोक्ष के स्वरूप के ज्ञाता थे। किसी भी कार्य में वे दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते थे। निर्ग्रन्थ-प्रवचन में इतने दृढ़ थे कि देव, असुर, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष गरुड, गंधर्व, महोरगादि देवता भी उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते थे। उन्हें निर्ग्रन्थप्रवचन में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा (फल में सन्देह) नहीं थी। उन्होंने शास्त्र के परमार्थ को समझ लिया था। वे शास्त्र का अर्थ—रहस्य निश्चित रूप से धारण किए हुए थे। उन्होंने शास्त्र के सन्देह-जनक स्थलों को पूछ लिया था, उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उनका विशेष रूप से निर्णय कर लिया था। उनकी हड्डियाँ और मज्जा सर्वज्ञ देव के अनुराग से अनुरक्त हो रही थीं। निर्ग्रन्थप्रवचन पर उनका अटूट प्रेम था। उनकी ऐसी श्रद्धा थी कि—आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही सत्य है, परमार्थ है, परम सत्य है, अन्य सब अनर्थ (असत्यरूप) हैं। उनकी उदारता के कारण उनके भवन के दरवाजे की अर्गला ऊंची रहती थी, उनका द्वार सब के लिये खुला रहता था। वे जिसके घर में या अन्तःपुर में जाते उसमें प्रीति उत्पन्न किया करते थे। वे शीलव्रत (पांचों अणुव्रत) गुणव्रत, विरमण (रागादि से निवृत्ति) प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि का पालन करते तथा चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण पौषधव्रत किया करते थे। श्रमणों-निर्ग्रन्थों को निर्दोष अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज आदि का दान करते हुए, महान् लाभ प्राप्त करते थे, तथा स्वीकार किये तप-कर्म के द्वारा अपनी आत्मा को भावित-वासित करते हुए] विहरण कर रहे थे।

भगवान् महावीर का पदार्पण

८—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव[1] विहरइ। तए णं रायगिहे णयरे, सिंघाडग जाव[2] महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव [एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे, आइगरे तित्थयरे सयंसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे जाव संपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे; इहेव रायगिहे णयरे बाहिं गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।" तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए; किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए;] किमंग पुण विउलस्स अत्थस्स गहणयाए?

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह पधारे और बाहर उद्यान में ठहरे। उनके पधारने के समाचार सुनकर राजगृह नगर के शृंगाटक राजमार्ग आदि स्थानों में बहुत से नागरिक परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे— [विशेष रूप से कहने लगे, प्रकट रूप से एक ही आशय को भिन्न भिन्न शब्दों के द्वारा प्रकट करने लगे, कार्य-कारण की व्याख्या सहित-तर्क युक्त कथन करने लगे—"हे देवानुप्रिय! बात ऐसी है कि श्रमण भगवान् महावीर जो स्वयं संबुद्ध, धर्म-तीर्थ के आदिकर्ता और तीर्थंकर हैं, पुरुषोत्तम हैं....यावत् सिद्धिगति रूप स्थान की प्राप्ति के लिये

१. वर्ग ५. सूत्र १,   २. वर्ग ६. सूत्र ६.

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे नयरे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ ।'

तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव[1] घाएमाणे घाएमाणे विहरइ । तं मा णं तुब्भे केइ कट्ठस्स वा तणस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइरं निग्गच्छह । मा णं तस्स सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसेत्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह । तए णं से कोडुंबियपुरिसा जाव[2] पच्चप्पिणंति ।

उस समय राजगृह नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख राजमार्ग आदि सभी स्थानों में बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार बोलने लगे—

"देवानुप्रियो ! अर्जुनमाली, मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर राजगृह नगर के बाहर एक स्त्री और छह पुरुष, इस प्रकार सात व्यक्तियों को प्रतिदिन मार रहा है ।"

उस समय जब श्रेणिक राजा ने यह बात सुनी तो उन्होंने अपने सेवक पुरुषों को बुलाया और उनको इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! राजगृह नगर के बाहर अर्जुनमाली यावत् छह पुरुषों और एक स्त्री—इस प्रकार सात व्यक्तियों का प्रतिदिन घात करता हुआ घूम रहा है । अतः तुम सारे नगर में मेरी आज्ञा को इस प्रकार प्रसारित करो कि कोई भी घास के लिये, काष्ठ, पानी अथवा फल-फूल आदि के लिये राजगृह नगर के बाहर न निकले । ऐसा न हो कि उनके शरीर का विनाश हो जाय । हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार दो तीन बार घोषणा करके मुझे सूचित करो ।' यह राजाज्ञा पाकर राजसेवकों ने राजगृह नगर में घूम घूम कर राजाज्ञा की घोषणा की और घोषणा करके राजा को सूचित कर दिया ।

श्रावक सुदर्शन श्रेष्ठी

७—तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ-अड्ढे० । तए णं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था-अभिगयजीवाजीवे जाव [उवलद्धपुण्णपावे, आसव-संवर-निज्जर-किरियाहिगरण-बंध-मोक्खकुसले, असहेज्जदेवा-सुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं णिग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते । अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अवंगुयदुवारे, चियत्तंतेउरपरघरदारप्पवेसे, बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ—पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सिज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेण य पडिलाभेमाणे अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ ।

१-२. देखिए ऊपर प्रस्तुत सूत्र ।

उस राजगृह नगर में सुदर्शन नाम के एक धनाढ्य सेठ रहते थे। वे श्रमणोपासक—श्रावक थे और जीव-अजीव के अतिरिक्त [पुण्य और पाप के स्वरूप को भी जानते थे। इसी प्रकार आस्रव संवर निर्जरा क्रिया (कर्मबंध की कारणभूत पच्चीस प्रकार की क्रियाओं), अधिकरण (कर्मबंध का साधन-शस्त्र) तथा बंध और मोक्ष के स्वरूप के ज्ञाता थे। किसी भी कार्य में वे दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते थे। निर्ग्रन्थ-प्रवचन में इतने दृढ़ थे कि देव, असुर, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष गरुड, गंधर्व, महोरगादि देवता भी उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते थे। उन्हें निर्ग्रन्थप्रवचन में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा (फल में सन्देह) नहीं थी। उन्होंने शास्त्र के परमार्थ को समझ लिया था। वे शास्त्र का अर्थ—रहस्य निश्चित रूप से धारण किए हुए थे। उन्होंने शास्त्र के सन्देह-जनक स्थलों को पूछ लिया था, उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उनका विशेष रूप से निर्णय कर लिया था। उनकी हड्डियाँ और मज्जा सर्वज्ञ देव के अनुराग से अनुरक्त हो रही थीं। निर्ग्रन्थप्रवचन पर उनका अटूट प्रेम था। उनकी ऐसी श्रद्धा थी कि—आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही सत्य है, परमार्थ है, परम सत्य है, अन्य सब अनर्थ (असत्यरूप) हैं। उनकी उदारता के कारण उनके भवन के दरवाजे की अर्गला ऊंची रहती थी, उनका द्वार सब के लिये खुला रहता था। वे जिसके घर में या अन्तःपुर में जाते उसमें प्रीति उत्पन्न किया करते थे। वे शीलव्रत (पांचों अणुव्रत) गुणव्रत, विरमण (रागादि से निवृत्ति) प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि का पालन करते तथा चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण पौषधव्रत किया करते थे। श्रमणों-निर्ग्रन्थों को निर्दोष अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज आदि का दान करते हुए, महान् लाभ प्राप्त करते थे, तथा स्वीकार किये तप-कर्म के द्वारा अपनी आत्मा को भावित-वासित करते हुए] विहरण कर रहे थे।

भगवान् महावीर का पदार्पण

८—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव[1] विहरइ। तए णं रायगिहे णयरे, सिंघाडग जाव[2] महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव [एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे, आइगरे तित्थयरे सयंसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे जाव संपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे; इहेव रायगिहे णयरे बाहिं गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।" तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए; किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए;] किमंग पुण विउलस्स अत्थस्स गहणयाए?

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह पधारे और बाहर उद्यान में ठहरे। उनके पधारने के समाचार सुनकर राजगृह नगर के शृंगाटक राजमार्ग आदि स्थानों में बहुत से नागरिक परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे— [विशेष रूप से कहने लगे, प्रकट रूप से एक ही आशय को भिन्न भिन्न शब्दों के द्वारा प्रकट करने लगे, कार्य-कारण की व्याख्या सहित-तर्क युक्त कथन करने लगे—"हे देवानुप्रिय! बात ऐसी है कि श्रमण भगवान् महावीर जो स्वयं संबुद्ध, धर्म-तीर्थ के आदिकर्ता और तीर्थंकर हैं, पुरुषोत्तम हैं....यावत् सिद्धिगति रूप स्थान की प्राप्ति के लिये

१ वर्ग ५ सूत्र १, २. वर्ग ६. सूत्र ६.

प्रवृत्ति करनेवाले हैं, वे क्रमशः विचरण करते हुए यहाँ पधारे हैं, यहाँ आ चुके हैं, यहाँ विराजमान हैं। इसी राजगृह नगर के बाहर, गुणशील चैत्य में, संयमियों के योग्य स्थान को ग्रहण करके, संयम और तप से आत्मा को भावित कर रहे हैं। हे देवानुप्रियो ! तथारूप-महाफल की प्राप्ति कराने रूप स्वभाववाले अर्थात् अरिहंत के गुणों से युक्त भगवान् के नाम (पहचान के लिये बनी हुई लोक में रूढ संज्ञा) गोत्र (गुण के अनुसार दिया हुआ नाम) को भी सुनने से महत्फल की प्राप्ति होती है, तो फिर उनके निकट जाने, स्तुति करने, नमस्कार करने, संयमयात्रादि की समाधिपृच्छा करने और उनकी उपासना करने से होनेवाले फल की तो बात ही क्या ? अर्थात् निश्चय ही महत्फल की प्राप्ति होती है। उनके एक भी आर्य (श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त कराने वाले और धार्मिक उत्तम वचन को सुनने से] और विपुल अर्थ को ग्रहण करने से होने वाले फल की तो बात ही क्या है ?

सुदर्शन का वन्दनार्थ गमन

९—तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयं अट्ठं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव[1] विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि; एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव[2] एवं वयासी—

"एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे जाव[3] विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव [सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं] पज्जुवासामि।"

तए णं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी—"एवं खलु पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे जाव[4] घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ। तं मा णं तुमं पुत्ता ! समणं भगवं महावीरं वंदए निग्गच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ। तुमण्णं इहगए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि।

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी—"किण्णं अहं अम्मायाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं इह पत्तं इह समोसढं इह गए चेव वंदिस्सामि नमंसिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव पज्जुवासामि।

तए णं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं जाव[5] परूवेत्तए ताहे एवं वयासी—"अहासुहं देवाणुप्पिया !"

तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकिय] सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहारचारेणं रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

---

१. इसी सूत्र में
२. वर्ग ५. सूत्र ४.
३. इसी सूत्र में
४. वर्ग ६. सूत्र ५.
५. वर्ग ३, सूत्र १८.

६—इस प्रकार बहुत से नागरिकों के मुख से भगवान् के पधारने के समाचार सुनकर सुदर्शन सेठ के मन में इस प्रकार, चिंतित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर नगर में पधारे हैं और बाहर गुणशीलक उद्यान में विराजमान हैं, इसलिये मैं जाऊं और श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करूं।" ऐसा सोचकर वे अपने माता-पिता के पास आये और हाथ जोड़कर बोले—

हे माता-पिता ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी नगर के बाहर उद्यान में विराज रहे हैं। अतः मैं चाहता हूं कि मैं जाऊं और उन्हें वंदन-नमस्कार करूं। उनका सत्कार करूं, सम्मान करूं। उन कल्याण के हेतुरूप, दुरितशमन (पापनाश) के हेतुरूप, देव स्वरूप और ज्ञानस्वरूप भगवान् की विनयपूर्वक पर्युपासना करूं।

यह सुनकर माता-पिता, सुदर्शन सेठ से इस प्रकार बोले—हे पुत्र ! निश्चय ही अर्जुन मालाकार यावत् मनुष्यों को मारता हुआ घूम रहा है इसलिये हे पुत्र ! तुम श्रमण भगवान् महावीर को वंदन करने के लिये नगर के बाहर मत निकलो। नगर के बाहर निकलने से सम्भव है तुम्हारे शरीर को हानि हो जाय। अतः यही अच्छा है कि तुम यहीं से श्रमण भगवान् महावीर को वंदन—नमस्कार कर लो।"

(तब सुदर्शन सेठ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा "हे माता-पिता ! जब श्रमण भगवान् महावीर यहां पधारे हैं, यहां समवसृत हुए हैं और बाहर उद्यान में विराजमान हैं तो मैं उनको यहीं से वंदना—नमस्कार करूं यह कैसे हो सकता है। अतः हे माता-पिता ! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं वहीं जाकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन करूं, नमस्कार करूं यावत् उनकी पर्युपासना करूं।"

सुदर्शन सेठ को माता-पिता जब अनेक प्रकार की युक्तियों से नहीं समझा सके, तब माता-पिता ने अनिच्छापूर्वक इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! फिर जिस प्रकार तुम्हें सुख उपजे वैसा करो।"

इस प्रकार सुदर्शन सेठ ने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके स्नान किया और धर्मसभा में जाने योग्य शुद्ध मांगलिक वस्त्र धारण किये [थोड़े भारवाले, बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को सजाया] फिर अपने घर से निकला और पैदल ही राजगृह नगर के मध्य से चलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के न अति दूर और न अति निकट से होते हुए जहाँ गुणशील नामक उद्यान और जहां श्रमण भगवान् महावीर थे उस ओर जाने लगा।

विवेचन—इस सूत्र में "इहमागयं, इह पत्तं, इह समोसढं—" ये तीनों पद समानार्थक प्रतीत होते हैं, पर टीकाकार ने इस सम्बन्ध में जो अर्थ-भेद दर्शाया है वह इस प्रकार है—

"इहमागयमित्यादि—इह नगरे आगतं प्रत्यासन्नत्वेऽप्येवं व्यपदेशः स्यात्, अत उच्यते—इह सम्प्राप्तं, प्राप्तावपि विशेषाभिधानमुच्यते, इह समवसृतं धर्म-व्याख्यानप्रवर्तनया व्यवस्थितम् अथवा इह नगरे पुनरिहोद्याने पुनरिह साधूचितावग्रहे इति।" अर्थात् 'इहमागयं' का अर्थ है—इस नगर में आए हुए। पर यह तो नगर के पास पहुंचने पर भी कहा जा सकता है, अतः सूत्रकार ने 'इहपत्त' कहा है। इस का अर्थ है—इस नगर में पहुंचे हुए। इसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये "इह समोसढे" यह लिखा है। इस का भाव है—धर्म-व्याख्यान में लगे हुए। अथवा 'इहमागयं' का अर्थ

है—इस नगर में आए हुए 'इह पत्त' का अर्थ है इस उद्यान में आए हुए तथा 'इह समोसढं' का अर्थ है—साधुओं के योग्य स्थान पर ठहरे हुए।

सुदर्शन को अर्जुन द्वारा उपसर्ग

१०—तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं-वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थु णं अरहंताणं जाव[1] संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स तित्थयरस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलाए मुसावाए, थूलाए अदिण्णादाणे सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इदाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं अदत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं जाव [माणं मायं लोहं पेज्जं दोसं कलहं अब्भक्खाणं पेसुण्णं परपरिवायं अरइरइं मायामोसं] मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारित्तए। अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि 'तो मे तहा' पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागए। नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए।

१०—तब उस मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन श्रमणोपासक को समीप से ही जाते हुए देखा। देखकर वह क्रुद्ध हुआ, रुष्ट हुआ, कुपित हुआ, कोपातिरेक से भीषण बना हुआ, क्रोध की ज्वाला से जलता हुआ, दांत पीसता हुआ वह हजार पल भारवाले लोहे के मुद्गर को घुमाते-घुमाते जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था, उस ओर आने लगा। उस समय क्रुद्ध मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आता देखकर सुदर्शन श्रमणोपासक मृत्यु की संभावना को जानकर भी किंचित् भी भय, त्रास, उद्वेग अथवा क्षोभ को प्राप्त नहीं हुआ। उसका हृदय तनिक भी विचलित अथवा भयाक्रान्त नहीं नहीं हुआ। उसने निर्भय होकर अपने वस्त्र के अंचल से भूमि का प्रमार्जन किया। फिर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठ गया! बैठकर बाएं घुटने को ऊंचा किया और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलिपुट रखा। इसके बाद इस प्रकार बोला—

मैं उन सभी अरिहंत भगवंतों को, जो अतीतकाल में मोक्ष पधार गये हैं, एवं धर्म के आदि-कर्त्ता तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर को जो भविष्य में मोक्ष पधारने वाले हैं, नमस्कार करता हूँ।"

---

१. वर्ग १. सूत्र २.

मैंने पहले श्रमण भगवान् महावीर से स्थूल प्राणातिपात का आजीवन त्याग (प्रत्याख्यान) किया, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान का त्याग किया स्वदारसंतोष और इच्छापरिमाण रूप व्रत जीवन भर के लिये ग्रहण किया है। अब उन्हीं भगवान् महावीर स्वामी की साक्षी से प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और संपूर्ण-परिग्रह का सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। मैं सर्वथा क्रोध, [मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति-रति, मायामृषा] और मिथ्यादर्शन शल्य तक के समस्त (१८) पापों का भी आजीवन त्याग करता हूँ। सब प्रकार का अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का भी त्याग करता हूँ। यदि मैं इस आसन्नमृत्यु उपसर्ग से बच गया तो इस त्याग का पारणा करके आहारादि ग्रहण करूंगा। यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊं तो मुझे इस प्रकार का संपूर्ण त्याग यावज्जीवन हो। ऐसा निश्चय करके सुदर्शन सेठ ने उपर्युक्त प्रकार से सागारी पडिमा—अनशन व्रत धारण कर लिया।

इधर वह मुद्गरपाणि यक्ष उस हजार पल के लोहमय मुद्गर को घुमाता हुआ जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था वहाँ आया। परन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से अभिभूत नहीं कर सका अर्थात् उसे किसी प्रकार से कष्ट नहीं पहुंचा सका।

विवेचन—श्रेष्ठी सुदर्शन को गुणशीलक उद्यान की ओर जाते देखकर मुद्गरपाणि यक्ष क्रोध के मारे दाँत पीसते हुए उसे मारने के लिये मुद्गर उछालता हुआ आता है, पर यक्ष को देख सुदर्शन सर्वथा शान्त और निर्भय रहते हैं। सागारी संथारा ग्रहण करते हैं। इस में वे सर्वथा क्रोध मान यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का त्याग करते हैं।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि श्रमणोपासक के जो बारह व्रत हैं वे सम्यकत्व पूर्वक ही ग्रहण किये जाते हैं, उसमें मिथ्यात्व का परित्याग स्वतः ही हो जाता है। तो फिर सागार-प्रतिमा (सागारी संथारा) ग्रहण करते समय सुदर्शन ने मिथ्यात्व का जो परित्याग किया है, इसकी उपपत्ति कैसे होगी? श्रावक-धर्म को धारण कर लेने के अनन्तर मिथ्यात्व के परित्याग करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। उत्तर में निवेदन है कि यद्यपि व्रतधारी श्रावक के लिये मिथ्यात्व का परित्याग सबसे पहले करना होता है और (मिथ्यात्व के परिहार पर ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है,) तथापि देशविरति श्रावक का जो त्याग है, वह आंशिक है, सर्वतः नहीं है। मिथ्यादर्शन के देश-शंका, सर्वशंका आदि अनेकों उपभेद हैं। उन सबका सर्वथा परित्याग करना ही यहाँ पर मिथ्यादर्शन शल्य के त्याग का लक्ष्य है। भाव यह है कि देशविरति धर्म के अंगीकार में लेश मात्र रहे हुए शंका आदि दोषों का भी उक्त प्रतिज्ञा में परित्याग कर दिया गया है।

("सागारं पडिमं पडिवज्जइ"—यहाँ पठित 'सागार' शब्द का अर्थ है—अपवाद युक्त, छूट सहित।) यहाँ प्रतिमा—संथारा आमरण अनशन का नाम है। 'प्रतिपद्यते' यह क्रियापद स्वीकार करने के अर्थ में प्रयुक्त है। छूट रख कर जो प्रतिज्ञा की जाती है उसे सागार-प्रतिमा कहते हैं। कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा करते समय उसमें जब किसी वस्तु या समय विशेष की छूट रख लेता है और "यह काम हो गया तो मैं अनशन खोल लूंगा। यदि काम न बना तो मैं अपना अनशन नहीं खोलूंगा, उसे लगातार चलाऊंगा" इस प्रकार का संकल्प करके यदि कोई नियम लिया जाता है तो उस नियम को सागार-प्रतिमा कहा जाता है।

उपसर्ग-निवारण

११—तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंता परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे 'धस' त्ति धरणियलंसि सव्वंगेहिं निवडिए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए 'निरुवसग्ग' मित्ति कट्टु पडिमं पारेइ।

मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रावक के चारों ओर घूमता रहा और जब उसको अपने तेज से पराजित नहीं कर सका तब सुदर्शन श्रमणोपासक के सामने आकर खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि से बहुत देर तक उसे देखता रहा। इसके बाद उस मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन माली के शरीर को त्याग दिया और उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही अर्जुन मालाकार 'धस्' इस प्रकार के शब्द के साथ भूमि पर गिर पड़ा। तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अपने को उपसर्ग रहित हुआ जानकर अपनी प्रतिज्ञा का पारण किया और अपना ध्यान खोला।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में यह दर्शाया गया है कि सेठ सुदर्शन को देखकर अर्जुन माली ने अपना मुद्गर उछाला तो सही पर वह आकाश में अधर ही रह गया। सुदर्शन की आत्म-शक्ति की तेजस्विता के कारण वह किसी भी प्रकार से प्रत्याघात नहीं कर पाया। सूत्रकार ने इस हेतु—"तेजसा समभिपडित्तए" पद का प्रयोग किया है। मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन पर आक्रमण किया, परंतु उनकी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण आघात नहीं कर पाया। वह स्वयं तेजोविहीन हो गया।

सुदर्शन के असाधारण तेज से पराभूत मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुन माली के शरीर में से भाग गया और अर्जुन माली भूमि पर गिर पड़ा। तब सुदर्शन ने "संकट टल गया" यह समझ कर अपना व्रत समाप्त कर दिया।

सुदर्शन और अर्जुन की भगवत्पर्युपासना

१२—तए णं से अज्जुणए मालागारे तत्तो मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया! के कहिं वा संपत्थिया?

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए-अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदए संपत्थिए।"

तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—

"तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए जाव [नमंसित्तए सक्कारित्तए सम्माणित्तए कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं] पज्जुवासित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

तए णं सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव [आयाहिणं पयाहिणं करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ । तं जहा—काइयाए वाइयाए माणसियाए । काइयाए ताव संकुइयग्गहत्थ-पाए णच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे, अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ । वाइयाए—जं जं भगवं वागरेइ 'एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छिअमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदह' अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ । माणसियाए महया संवेगं जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्तो] पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासगस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ । सुदंसणे पडिगए ।

इधर वह अर्जुन माली मुहूर्त भर (कुछ समय) के पश्चात् आश्वस्त एवं स्वस्थ होकर उठा और सुदर्शन श्रमणोपासक को सामने देखकर इस प्रकार बोला—

'देवानुप्रिय ! आप कौन हो ? तथा कहाँ जा रहे हो ?'

यह सुनकर सुदर्शन श्रमणोपासक ने अर्जुन माली से इस तरह कहा—

'देवानुप्रिय ! मैं जीवादि नव तत्त्वों का ज्ञाता सुदर्शन नामक श्रमणोपासक हूं और गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करने जा रहा हूँ ।'

यह सुनकर अर्जुन माली सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान् महावीर को वंदना-नमस्कार करना चाहता हूं, उनका सत्कार-सम्मान करना चाहता हूं, कल्याणस्वरूप, मंगलस्वरूप, दिव्यस्वरूप एवं ज्ञानस्वरूप भगवान् की पर्युपासना करना चाहता हूं ।'

सुदर्शन ने अर्जुन माली से कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो ।'

इसके बाद सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुन माली के साथ जहाँ गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आया और अर्जुन माली के साथ श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार [आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दना की और उन्हें नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके, तीन प्रकार की पर्युपासना करने लगा, यथा—कायिकी वाचिकी और मानसिकी । हाथ-पैर को संकुचित करके, न अधिक दूर न अधिक निकट ऐसे स्थान पर स्थित होकर, (धर्मोपदेश) श्रवण करते हुए-नमस्कार करते हुए, भगवान् की ओर मुंह रखकर, विनयपूर्वक हाथ जोड़े हुए, पर्युपासना करना कायिकी उपासना है । वाचिकी उपासना है—जो जो भगवान् कहते, उसे 'यह ऐसा ही है, भंते ! यही तथ्य

है भंते ! यही सत्य है भंते ! निःसंदेह ऐसा ही है भंते ! यही इष्ट है भंते ! यही स्वीकृत है भंते ! यही वांछित-गृहीत है भंते ! जैसा कि आप यह कह रहे हैं'—यों अप्रतिकूल बनकर पर्युपासना करना। मानसिकी उपासना अर्थात्—अति संवेग (उत्साह या मुमुक्षु भाव) अपने में उत्पन्न करके, धर्म के अनुराग में तीव्रता से अनुरक्त होना।]

उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमाली और उस विशाल सभा के सम्मुख धर्मकथा कही। सुदर्शन धर्मकथा सुनकर अपने घर लौट गया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि मुद्गरपाणि यक्ष द्वारा होने वाले उपद्रव के समाप्त होने पर सुदर्शन ने अपने आमरण अनशन को समाप्त कर दिया। अनशन समाप्त करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन ने बड़ी गंभीरता एवं दूरदर्शिता से काम लिया। वे अर्जुनमाली को मूर्च्छित दशा में देखकर भयभीत नहीं हुए और उन्होंने वहां से जाने का भी प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत वे वहाँ बड़ी शान्ति के साथ बैठे रहे। कारण स्पष्ट है। उनका हृदय दयालु था, सहानुभूतिपूर्ण था। अर्जुनमाली को अचेत दशा में छोड़कर वे जाना नहीं चाहते थे। उनका विचार था कि अर्जुनमाली अब परवशता से उन्मुक्त हो गया है, अतः इसकी देखभाल करना तथा इसका मार्गदर्शन करना मेरा कर्त्तव्य है। इसी कर्तव्यपालन की बुद्धि से उन्होंने वहाँ से प्रस्थान नहीं किया।

अर्जुनमाली अन्तर्मुहूर्त तक बेसुध पड़ा रहा। "मुहुत्तंतरेणं-मुहूर्त्तान्तरेण-स्तोककालेन"—मुहूर्त शब्द का अर्थ है—४८ मिनिट। दो घड़ियों को मुहूर्त कहते हैं और दो घड़ी से न्यून काल को अन्तर्मुहूर्त कहा जाता है। सूत्रकार के कहने का आशय यह है कि अर्जुनमाली के शरीर से जब यक्ष निकल कर चला गया, उसके अनन्तर अर्जुनमाली धड़ाम से भूमितल पर गिर पड़ा और कुछ समय तक बेहोश पड़ा रहा। उसके अनन्तर उसे होश आया।

सचेत होने पर अर्जुनमाली ने सामने उपस्थित सुदर्शन को देख उनका परिचय जानने के साथ कुछ संवाद किया और सेठ सुदर्शन के साथ गुणशिलक उद्यान में भगवान् महावीर के चरणों में पहुँच गया।

अर्जुन की प्रव्रज्या

१३—तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं जाव[1] अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।'

तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जाव[2] विहरइ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव[3] पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ—कप्पइ मे

१.-२. वर्ग ३, सूत्र १८. ३. वर्ग ५, सूत्र २.

जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव[1] विहरइ ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, जाव[2] अडइ ।

अर्जुनमाली श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्मोपदेश सुनकर एवं धारण कर अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ और प्रभु महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा कर, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—"भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करता हूं, रुचि करता हूं, यावत् आपके चरणों में प्रव्रज्या लेना चाहता हूं ।

भगवान् महावीर ने कहा—"देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो ।"

तब अर्जुनमाली ने ईशानकोण में जाकर स्वयं ही पंचमौष्टिक लुंचन किया, लुंचन करके वे अनगार हो गये । संयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

इसके पश्चात् अर्जुन मुनि ने जिस दिन मुंडित हो प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी दिन श्रमण भगवान् महावीर को वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया—"आज से मैं निरंतर बेले-बेले की तपस्या से आजीवन आत्मा को भावित करते हुए विचरूंगा ।" ऐसा अभिग्रह जीवन भर के लिये स्वीकार कर अर्जुन मुनि विचरने लगे ।

इसके पश्चात् अर्जुन मुनि बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे प्रहर में ध्यान करते । फिर तीसरे प्रहर में राजगृह नगर में भिक्षार्थ भ्रमण करते ।

परीषह-सहन और सिद्धि

१४—तए णं तं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे नयरे उच्च जाव [नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडमाणं बहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—

"इमेण मे पिता मारिए । इमेण मे माता मारिया । इमेण मे भाया भगिणी भज्जा पुत्ते धूया सुण्हा मारिया । इमेण मे अण्णयरे सयण-संबंधि-परियणे मारिए त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइआ हीलंति निंदंति खिंसंति गरिहंति तज्जंति तालेंति ।"

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसिज्जमाणे (आकोज्जमाणे) जाव [हीलेमाणे, निंदेमाणे, खिंसेमाणे, गरिहेमाणे, तज्जेज्जमाणे] तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ सम्मं खमइ सम्मं तितिक्खइ सम्मं अहियासेइ, सम्मं सहमाणे सम्मं खममाणे सम्मं तितिक्खमाणे सम्मं अहियासेमाणे रायगिहे नयरे उच्च-णीय-मज्झिय-कुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं न लभइ, अह पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसादी अपरितंतजोगी

---

१. वर्ग ३, सूत्र २.　　　२. वर्ग ३, सूत्र ६.

अडइ, अडित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे जाव [तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं] पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया रायगिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[1] सिद्धे।

उस समय अर्जुन मुनि को राजगृह नगर में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में भिक्षार्थ घूमते हुए देखकर नगर के अनेक नागरिक—स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध इस प्रकार कहते—

"इसने मेरे पिता को मारा है। इसने मेरी माता को मारा है। भाई को मारा है, बहन को मारा है, भार्या को मारा है, पुत्र को मारा है, कन्या को मारा है, पुत्रवधू को मारा है, एवं इसने मेरे अमुक स्वजन संबंधी या परिजन को मारा है। ऐसा कहकर कोई गाली देता, कोई हीलना करता, अनादर करता, निंदा करता, कोई जाति आदि का दोष बताकर गर्हा करता, कोई भय बताकर तर्जना करता और कोई थप्पड़, ईंट, पत्थर, लाठी आदि से ताड़ना करता।

इस प्रकार उन बहुत से स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढे और जवानों से आक्रोश-गाली, [हीलना, अनादर, निंदा, गर्हा सहते हुए], ताडित-तर्जित होते हुए भी वे अर्जुन मुनि उन पर मन से भी द्वेष नहीं करते हुए उनके द्वारा दिये गये सभी परीषहों को समभावपूर्वक सहन करते हुए उन कष्टों को समभाव से झेल लेते एवं निर्जरा का लाभ समझते। सम्यग्ज्ञानपूर्वक उन सभी संकटों को सहन करते, क्षमा करते, तितिक्षा रखते और उन कष्टों को भी लाभ का हेतु मानते हुए राजगृह नगर के छोटे, बड़े एवं मध्यम कुलों में भिक्षा हेतु भ्रमण करते हुए अर्जुन मुनि को कभी भोजन मिलता तो पानी नहीं मिलता और पानी मिलता तो भोजन नहीं मिलता।

वैसी स्थिति में जो भी और जैसा भी अल्प स्वल्प मात्रा में प्रासुक भोजन उन्हें मिलता उसे वे सर्वथा अदीन, अविमन, अकलुष, अमलिन, आकुल-व्याकुलता रहित अखेद-भाव से ग्रहण करते, थकान अनुभव नहीं करते।

इस प्रकार वे भिक्षार्थ भ्रमण करते। भ्रमण करके वे राजगृह नगर से निकलते और गुणशील उद्यान में, जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आते और वहाँ आकर [भगवान् से न अति दूर न अति निकट से उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण करते, भिक्षा में लगे हुए दोषों की आलोचना करते] और फिर भिक्षा में मिले हुए आहार-पानी को प्रभु महावीर को दिखाते। दिखाकर उनकी आज्ञा पाकर मूर्च्छा रहित, गृद्धि रहित, राग रहित और आसक्ति रहित; जिस प्रकार

---

१. वर्ग ५, सूत्र ६.

बिल में सर्प सीधा ही प्रवेश करता है, उस प्रकार राग-द्वेष भाव से रहित होकर उस आहार-पानी का वे सेवन करते।

तत्पश्चात् किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के उस गुणशील उद्यान से निकलकर वाहर जनपदों में विहार करने लगे।

अर्जु न मुनि ने उस उदार, श्रेष्ठ, पवित्र भाव से ग्रहण किये गये, महालाभकारी, विपुल तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए पूरे छह मास श्रमण धर्म का पालन किया। इसके बाद आधे मास की संलेखना से अपनी आत्मा को भावित करके तीस भक्त के अनशन को पूर्ण कर जिस कार्य के लिये व्रत ग्रहण किया था उसको पूर्ण कर वे अर्जु न मुनि यावत् सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये।

विवेचन—राजगृह नगर में भिक्षा के निमित्त घूमते हुए अर्जु न मुनि को वहां की जनता के द्वारा कष्ट प्राप्त हुए, फिर भी वे अपनी साधु-जनोचित वृत्ति में स्थिर रहे, मन से भी किसी पर द्वेष नहीं किया, प्रत्युत जो कुछ भी कष्ट प्राप्त हुआ, उसको समभाव में रहते हुए बड़ी शान्ति और धैर्य से सहन किया। इसी समभाव का यह सत्परिणाम हुआ कि वे समस्त कर्म-बंधनों का विच्छेद करके अपने अभीष्ट परम कल्याणस्वरूप निर्वाण को प्राप्त हुए।

"अक्कोसंति, हीलंति, निंदंति, खिसंति, गरिहंति, तज्जेंति"—इन क्रियापदों का अर्थ इस प्रकार है—'अक्कोसंति'—कटु वचनों से भर्त्सना करते हैं। भर्त्सना का अर्थ है—लानत मलामत, फटकार, बुरा भला कहना। 'हीलन्ति'—अनादर-अपमान करते हैं। 'निन्दन्ति'—निन्दा करते हैं, निन्दा का अर्थ है—किसी के दोषों का वर्णन करना। 'खिसंति'—खीजते हैं, झुंझलाते हैं, कुढ़ते हैं, दुर्वचन कहकर क्रोधावेश में लाने का प्रयत्न करते हैं। 'गरिहंति'—दोषों को प्रकट करते हैं। 'तज्जेंति' तर्जना करते हैं, डाँटते हैं, डपटते हैं, तर्जनी आदि अंगुलियों द्वारा भयोत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। 'तालेंति'—लाठियों और पत्थरों आदि से मारते हैं। "सम्मं सहति, सम्मं खमति, तितिक्खइ, अहियासेति"—इन पदों की व्याख्या करते हुए टीकाकार अभयदेव सूरि लिखते हैं—

सहते इत्यादीनि एकार्थानि पदानीति केचित्। अन्ये तु सहते भयाभावेन, क्षमते कोपाभावेन, तितिक्षते दैन्याभावेन, अधिसहते आधिक्येन सहते इति।' अर्थात् कुछ आचार्य सहते आदि चारों पदों को एकार्थक मानते हैं, कुछ इनका अर्थभेद करते हुए कहते हैं—सहते—विना किसी भय से संकट सहन करते हैं। क्षमते-क्रोध से दूर रह कर शान्त रहते हैं। तितिक्षते—किसी प्रकार की दीनता दिखलाये बिना परिषहों को सहन करते हैं। अधिसहते—खूब सहन करते हैं। इन क्रियापदों से ध्वनित होता है कि अर्जु न मुनि की सहनशीलता समीचीन और आदर्श थी। जो सहनशीलता भय के कारण होती है, वह वास्तविक सहनशीलता नहीं है। जिस क्षमा में क्रोध का अंश विद्यमान है, हृदय में क्रोध छिपा हुआ है, उसे क्षमा नहीं कहा जा सकता और दीनतापूर्वक की गई तितिक्षा वास्तविक तितिक्षा नहीं कही जा सकती। आक्रोश आदि परिषहों के सहन करने में यदि अन्तःकरण में अंशतया भी कषायों का उदय हो जाता है, तो विकास के बदले यह आत्मा पतन की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इसकी विशेष प्रतीति हेतु सूत्रकार ने—'अदीणे, अविमणे अकलुसे, अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी' शब्दों का प्रयोग किया है। इन पदों की व्याख्या करते हुए आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं—

'अदीणे' त्यादि तत्रादीनः शोकाभावात् अविमना न शून्यचित्तः अकलुषो द्वेषवर्जितत्वात् अनाविलः जनाकुलो वा निःक्षोभत्वात् अविषादी किं मे जीवितेनेत्यादि चिन्तारहितः, अत-एवापरितान्तः—अविश्रान्तो योगः—समाधिर्यस्य सः तथा स्वार्थिकेनन्तत्त्वाच्चापरितान्तयोगी।

इसका अर्थ इस प्रकार है—

मन में किसी प्रकार का शोक न होने से अर्जुन मुनि अदीन-दीनता से रहित थे, समाहित चित्त होने से अविमन थे, द्वेष-रहित होने से मन में किसी प्रकार की कलुषता-मलिनता और आकुलता नहीं थी। क्षोभशून्य होने से मन में किसी प्रकार का विषाद-दुःख नहीं था। 'मेरा इस प्रकार के तिरस्कृत जीवन से क्या प्रयोजन है,' ऐसी ग्लानि उनके मन में नहीं थी, अतएव वह निरन्तर समाधि में लीन थे। समाधि में सतत लगे रहने के कारण ही अर्जुन मुनि को अपरितान्तयोगी कहा गया है। अपरितान्त योग शब्द से स्वार्थ में 'इन' प्रत्यय लगा कर अपरितान्तयोगी शब्द बनता है।

"बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ"—का अर्थ है—जिस प्रकार सांप बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार आहार को ग्रहण किया गया। इन पदों का अर्थ वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—

"बिलमिव पन्नगभूतेन आत्मना तमाहारमाहारयति—यथा भुजंगो बिलस्य पार्श्वभागद्वय-मसंस्पृशन् मध्यमार्गेत एवात्मानं बिले प्रवेशयति तथा मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहारं कण्ठनालाभिमुखं प्रवेश्याऽऽहारयतीति भावः।"

अर्थात् जैसे सर्प बिल के दोनों भागों का स्पर्श किए बिना केवल बिल के मध्यभाग से ही बिल में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार अर्जुन मुनि मुख के दोनों भागों का स्पर्श किए बिना केवल मुख में आहार रख कर गले के नीचे उतार लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिल में प्रवेश करते समय सर्प अपने अंगों का उससे स्पर्श नहीं करता, बड़े संकोच से उसमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार किसी प्रकार के आस्वाद की अपेक्षा न करते हुए रागद्वेष से रहित होकर मुख में जैसे स्पर्श ही नहीं हुआ हो, इस प्रकार से केवल क्षुधा की निवृत्ति के उद्देश्य से अर्जुन मुनि आहार सेवन करते हैं। इस कथन से इनकी रसविषयक मूर्च्छा के आत्यन्तिक अभाव का संसूचन किया गया है। संयमी व्यक्ति की उत्कृष्ट साधना रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना है। अर्जुन मुनि ने इस साधना के रहस्य को भलीभांति समझ लिया था और उसे जीवन में उतार भी लिया था।

'तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं'—तेन पूर्वभणितेन उदारेण—प्रधानेन, विपुलेन—विशालेन भगवता दत्तेन, प्रगृहीतेन उत्कृष्टभावतः स्वीकृतेन, महानु-भागेन-महान् अनुभागः प्रभावो यस्य, तेन तपःकर्मणा।' यहाँ पर अर्जुनमुनि ने जो तप आराधन किया है उस तप की महत्ता को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत पाठ में तपःकर्म विशेष्य है और उदार आदि उसके विशेषण हैं। इनकी अर्थविचारणा इस प्रकार है—

तेणं—यह शब्द पूर्व प्रतिपादित तप की ओर संकेत करता है। अर्जुन मुनि के साधना-प्रकरण में बताया गया था कि अर्जुनमुनि जब नगर में भिक्षार्थ जाते थे तब उनको लोगों की ओर से बहुत बुरा-भला कहा जाता था, उनका अपमान किया जाता था, मार-पीट की जाती थी, तथापि

ये सब यातनाएं शान्तिपूर्वक सहन करते थे। इसके अतिरिक्त उनको अन्न मिल जाता तो पानी नहीं मिलता था, कहीं पानी मिल गया तो अन्न नहीं मिलता था। यह सब कुछ होने पर भी अर्जुन मुनि कभी अशान्त नहीं हुए, दो दिनों के उपवास के पारणे में भी सन्तोषजनक भोजन न पाकर उन्होंने कभी ग्लानि अनुभव नहीं की। इस प्रकार के तप को सूत्रकार ने, 'तेणं' इस पद से ध्वनित किया है।

'उदार'—शब्द का अर्थ है-प्रधान। प्रधान सब से बड़े को कहते हैं। भूखा रहना आसान है, रसनेन्द्रिय पर नियंत्रण भी किया जा सकता है, भिक्षा द्वारा जीवन का निर्वाह करना भी संभव है पर लोगों से अपमानित होकर तथा मार-पीट सहन कर तपस्या की आराधना करते चले जाना बच्चों का खेल नहीं है। यह बड़ा कठिन कार्य है, बड़ी कठोर साधना है, इसी कारण सूत्रकार ने अर्जुनमुनि के तप को उदार अर्थात् सब से बड़ा कहा है।

'विपुल'—विशाल को कहते हैं। एक बार कष्ट सहन किया जा सकता है, दो या तीन बार कष्ट का सामना किया जा सकता है, परन्तु लगातार छह महीनों तक कष्टों की छाया तले रहना कितना कठिन कार्य है? यह समझना कठिन नहीं है। जिधर जाओ उधर अपमान, जिस घर में प्रवेश करो वहाँ अनादर की वर्षा, सम्मान का कहीं चिह्न भी नहीं। ऐसी दशा में मन को शान्त रखना, क्रोध को निकट न आने देना बड़ा ही विलक्षण साहस है और बड़ी विकट तपस्या है, अपूर्व सहिष्णुता है। संभव है इसीलिये सूत्रकार ने अर्जुनमाली की तप:साधना को विपुल-विशाल बड़ी कहा है।

'प्रदत्त'—का अर्थ है—दिया हुआ। अर्जुनमाली जिस तप की साधना कर रहे थे, यह तप उन्होंने बिना किसी से पूछे अपने आप ही आरम्भ नहीं किया, प्रत्युत भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके आरम्भ किया था। अतएव सूत्रकार ने इस तप को प्रदत्त कहा है।

'प्रगृहीत' का अर्थ है—ग्रहण किया हुआ। किसी भी व्रत ग्रहण करनेवाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति एक जैसी नहीं रहती। किसी समय मन में श्रद्धा का अतिरेक होता है और किसी समय श्रद्धा कमजोर पड़ जाती है और किसी समय लोकलज्जा के कारण बिना श्रद्धा के ही व्रत का परिपालन किया जाता है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर सूत्रकार ने मुनि द्वारा कृत तप को प्रगृहीत विशेषण से विशेषित किया है, जो उत्कृष्ट भावना से ग्रहण किया हुआ, इस अर्थ का बोधक है। अर्जुनमाली की आस्था संकट काल में शिथिल नहीं हुई, वे सुदृढ साधक बन कर साधना-जगत् में आए थे और अन्त तक सुदृढ साधक ही रहे। उन्होंने अपने मन को कभी डाँवाडोल नहीं होने दिया।

यदि पयत्तेणं का संस्कृत रूप प्रयत्नेन किया जाय तो उदार और विपुल ये दोनों प्रयत्न के विशेषण बन जाते हैं, तब इन शब्दों का अर्थ होगा—प्रधान विशाल प्रयत्न से ग्रहण किया गया। तप करना साधारण बात नहीं है इसके लिये बड़े पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इसी महान् पुरुषार्थ को प्रधान विशाल प्रयत्न कहा गया है।

"महानुभाग" शब्द प्रभावशाली अर्थ का बोधक है। जिस तप के प्रताप से अर्जुन मुनि ने जन्म-जन्मान्तर के कर्मों को नष्ट कर दिया, परम साध्य निर्वाण प्राप्त कर लिया, उसकी प्रभावगत महत्ता में क्या आशंका हो सकती है?

आत्मा के साथ लगे हुए कर्म-मल को जलाने के लिये तप रूप अग्नि की नितान्त आवश्यकता

होती है। तप रूप अग्नि के द्वारा कर्म-मल के भस्मसात् होने पर आत्मा शुद्ध स्फटिक की भांति निर्मल हो जाती है। इसलिए अर्जुनमुनि ने संयम ग्रहण करने के अनन्तर अपने कर्ममल युक्त आत्मा को निर्मल बनाने के लिये तपरूप अग्नि को प्रज्वलित किया। परिणाम-स्वरूप वे कैवल्य-प्राप्ति के अनन्तर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए।

श्रेणिकचरित्र में लिखा है कि अर्जुनमाली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष का पांच मास १३ दिनों तक प्रवेश रहा। उससे उसने ११४१ व्यक्तियों का प्राणान्त किया। इसमें ९७८ पुरुष और १६३ स्त्रियाँ थीं। इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि वह प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करता रहा। यहां एक आशंका होती है कि जिस व्यक्ति ने इतना बड़ा प्राणि-वध किया और पाप कर्म से आत्मा का महान् पतन किया, उस व्यक्ति को केवल छह मास की साधना से कैसे मुक्ति प्राप्त हो गई?

उत्तर यह है कि तप में अचिन्त्य, अतर्क्य एवं अद्भुत शक्ति है। आगम कहता है—भवकोडि-संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ।' अर्थात् करोड़ों भवों में संचित किए-बांधे कर्म भी तपश्चर्या द्वारा नष्ट किए जा सकते हैं। यह भी कहा गया है—

अण्णाणी जं कम्मं खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं।

तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमेत्तेणं—प्रवचनसार।

अर्थात् अज्ञानी जीव जिन कर्मों को लाखों-करोडों भवों में खपा पाता है, उन्हें त्रिगुप्त—मन-वचन, काय का गोपन करने वाला ज्ञानी आत्मा एक श्वास जितने स्वल्प काल में क्षय कर डालता है।

जब तीव्रतर तप की अग्नि प्रज्वलित होती है तो कर्मों के दल के दल सूखे घास-फूस की तरह भस्मसात् हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि अर्जुन मालाकार द्वारा जो वध किया गया, वह प्रस्तुतः यक्ष द्वारा किया गया वध था। अर्जुन उस समय यक्षाविष्ट होने से पराधीन था। वह तो यंत्र की भांति प्रवृत्ति कर रहा था। अतएव मनुष्यवध योग्य कषाय की तीव्रता उसमें संभव नहीं।

४—१४ अध्ययन

काश्यप आदि गाथापति

१५—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, कासवे नामं गाहावई परिवसइ। जहा मकाई। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—खेमए वि गाहावई, नवरं-कायंदी नयरी। सोलस वासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे।

एवं—धिइहरे वि गाहावई कायंदीए नयरीए। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—केलासे वि गाहावई, नवरं-साएए नगरे। बारस वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे।

एवं—हरिचंदणे वि गाहावई साएए नयरे। बारस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

एवं—वारत्तए वि गाहावई, नवरं-रायगिहे नयरे। बारस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—सुदंसणे वि गाहावई, नवरं-वा[illegible] वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—पुण्णभद्दे वि गाहावई, वाणियग्गामे नयरे । पंच वासा परियाओ विपुले सिद्धे ।

एवं—सुमणभद्दे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए । बहुवासाइं परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए । सत्तावीसं वासा परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—मेहे वि गाहावई रायगिहे नयरे । बहूइं वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे ।

अध्ययन ४-१४

उस काल उस समय राजगृह नगर में गुणशीलनामक उद्यान था । वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था । वहाँ काश्यप नाम का एक गाथापति रहता था । उसने मकाई की तरह सोलह वर्ष तक दीक्षापर्याय का पालन किया और अन्त समय में विपुलगिरि पर्वत पर जाकर संथारा आदि करके सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गया ।

इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का वर्णन समझें । विशेष इतना है कि काकंदी नगरी के वे निवासी थे और सोलह वर्ष का उनका दीक्षाकाल रहा, यावत् वे भी विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

ऐसे ही धृतिधर गाथापति का भी वर्णन समझें । वे काकंदी के निवासी थे । सोलह वर्ष तक मुनिचारित्र पालकर वे भी विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार कैलाश गाथापति भी थे । विशेष यह कि ये साकेत नगर के रहने वाले थे, इन्होंने बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध हुए ।

ऐसे ही आठवें हरिचन्दन गाथापति भी थे । वे भी साकेत नगर के निवासी थे । उन्होंने भी बारह वर्ष तक श्रमणचारित्र का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

इसी तरह नवमे वारत्त गाथापति राजगृह नगर के रहने वाले थे । बारह वर्ष का चारित्र पालन कर वे विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

दशवें सुदर्शन गाथापति का वर्णन भी इसी प्रकार समझें । विशेष यह कि वाणिज्यग्राम नगर के बाहर द्युतिपलाश नाम का उद्यान था । वहाँ दीक्षित हुए । पांच वर्ष का चारित्र पालकर विपुलगिरि से सिद्ध हुए ।

पूर्णभद्र गाथापति का वर्णन भी ऐसा ही है । विशेष यह कि वे वाणिज्यग्राम नगर के रहने वाले थे । पाँच वर्ष का चारित्र पालन कर वह भी विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध हुए ।

सुमनभद्र गाथापति श्रावस्ती नगरी के वासी थे । बहुत वर्षों तक चारित्र पालकर विपुलाचल पर सिद्ध हुए ।

सुप्रतिष्ठित गाथापति श्रावस्ती नगरी के थे और सत्ताईस वर्ष संयम पालकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

मेघ गाथापति का वृत्तान्त भी ऐसे ही समझें । विशेष-राजगृह के निवासी थे और बहुत वर्षों तक चारित्र पालकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में ग्यारह श्रावकों का उल्लेख किया गया है। ये सब मोह-ममत्व के बन्धन तोड़कर तथा वैराग्य से नाता जोड़कर मंगलमय करुणासागर भगवान् महावीर के चरणों में पहुंचकर दीक्षित हो गये। इनके जीवन में जो-जो अन्तर है वह निम्नोक्त तालिका में दिया जा रहा है—

नाम	नगर	उद्यान	दीक्षा-पर्याय	निर्वाण-स्थान
१. श्री काश्यपजी	राजगृह नगर	गुणशीलक	१६ वर्ष	विपुल पर्वत
१. श्री क्षेमकजी	काकंदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
३. श्री धृतिधरजी	काकंदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
४. श्री कैलाशजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
५. श्री हरिचन्दनजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
६. श्री वारत्तकजी	राजगृह नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
७. श्री सुदर्शनजी	वाणिज्यग्राम नगर	द्युतिपलाश	५ वर्ष	विपुल पर्वत
८. श्री पूर्णभद्रजी	वाणिज्यग्राम नगर		५ वर्ष	विपुल पर्वत
९. श्री सुमनभद्रजी	श्रावस्ती नगरी		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत
१०. श्री सुप्रतिष्ठितजी	श्रावस्ती नगरी		२७ वर्ष	विपुल पर्वत
११. श्री मेघकुमारजी	राजगृह नगर		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत

—

पणरसमं अज्झयणं

अतिमुक्त

गौतम स्वामी की भिक्षाचर्या और अतिमुक्त

१६—तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नयरे। सिरिवणे उज्जाणे। तत्थ णं पोलासपुरे नयरे विजए नामं राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी नामं देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नामं कुमारे होत्था, सूमालपाणिपाए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव [पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव पोलासपुरे नयरे सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई अणगारे जहा पण्णत्तीए जाव भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभन्ते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गहेइ, उग्गहित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि] पोलासपुरे नयरे उच्च [नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं।

तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरियं सोहेमाणे सोहेमाणे जेणेव पोलासपुरे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं] अडइ।

इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव[1] सव्वालंकारविभूसिए बहूहिं दारगेहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए तेहिं बहूहिं दारएहि य संपरिवुडे अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ। तए णं भगवं गोयमे उच्च जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।

अध्ययन-१५

उस कल और उस समय में पोलासपुरनामक नगर था। वहाँ श्रीवननामक उद्यान था। स नगर में विजयनामक राजा था। उस की श्रीदेवी नाम की महारानी थी, यहाँ राजा और रानी

[1] वर्ग ३, सूत्र १३.

का वर्णन औपपातिकसूत्र से समझ लेना चाहिए। महाराजा विजय का पुत्र और श्रीदेवी का आत्मज अतिमुक्त नाम का कुमार था जो अतीव सुकुमार था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर क्रमश: विचरते हुए, एक गाम से दूसरे गाम को पावन करते हुए और शारीरिक खेद से रहित—संयम में आने वाली वाधा-पीडा से रहित विहार करते हुए पोलासपुर नगर के श्रीवन उद्यान में पधारे।

उस काल, उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति, व्याख्याप्रज्ञप्ति में कहे अनुसार निरन्तर वेले-वेले का तप करते हुए संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। पारणे के दिन पहली पौरिसी में स्वाध्याय, दूसरी पौरिसी में ध्यान और तीसरी पौरिसी में शारीरिक शीघ्रता से रहित, मानसिक चपलता रहित, आकुलता और उत्सुकता रहित, होकर मुखवस्त्रिका की पडिलेखना करते हैं और फिर पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना करते हैं। फिर पात्रों की प्रमार्जना करके और पात्रों को लेकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहाँ आए, आकर भगवान् को वंदना-नमस्कार कर इस प्रकार निवेदन किया—

"हे भगवन् ! आज षष्ठभक्त के पारणे के दिन आपकी आज्ञा होने पर पोलासपुर नगर में ऊंच, [नीच, और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेने के लिये जाना चाहता हूँ।]

श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, करो, उसमें विलम्ब न करो।

भगवान् की आज्ञा होने पर गौतमस्वामी भगवान् के पास से, गुणशीलक चैत्य से निकले। निकल कर शारीरिक त्वरा और मानसिक चपलता से रहित एवं आकुलता व उत्सुकता से रहित युग (धूसरा) प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमितिपूर्वक पोलासपुर नगर में आये। वहाँ ऊंच, नीच, और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि अनुसार भिक्षा हेतु] भ्रमण करने लगे।

इधर अतिमुक्त कुमार स्नान करके यावत् शरीर की विभूषा करके वहुत से लड़के-लड़कियों, वालक-वालिकाओं और कुमार-कुमारियों के साथ अपने घर से निकले और निकल कर जहाँ इन्द्र-स्थान अर्थात् क्रीडास्थल था वहाँ आये। वहाँ आकर उन वालक वालिकाओं के साथ खेलने लगे।

उस समय भगवान् गौतम पोलासपुर नगर में सम्पन्न-असम्पन्न तथा मध्य कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए उस क्रीडास्थल के पास से जा रहे थे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र पोलासपुर के राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा श्रमण भगवान् महावीर के प्रथम गणधर गौतम के मधुर-मिलन या प्रथम मुलाकात का वर्णन प्रस्तुत करता है।

इसमें अतिमुक्त जिनके साथ खेलते हैं, उनके लिये "दारएहिं य, डिंभएहिं य, कुमारएहि य" शब्द का प्रयोग हुआ है। दारक, डिंभक तथा कुमार ये तीनों शब्द समानार्थी प्रतीत होते हैं परन्तु वृत्तिकार ने इनके विभिन्न अर्थ इस प्रकार वताये हैं—दारक—सामान्य वालक, अच्छी आयु वाला, डिंभक—छोटी आयुवाला, कुमार—अविवाहित।

खेलने वाले स्थान को "इंदट्ठाणे" कहा है जिसका अर्थ होता है क्रीडास्थान, जहाँ पर इन्द्रस्तम्भनामक एक मोटा खंभा गाड़कर वालक और वालिकाएं खेलते हैं।

गौतम और अतिमुक्त कुमार का समागम

१७—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए, भगवं गोयमं एवं वयासी—

"के णं भंते ! तुब्भे ? किं वा अडह ?"

तए णं भंते गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिया ! समणा निग्गंथा इरियासमिया जाव[1] गुत्तबंभयारी उच्च जाव [नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खाय-रियाए] अडामो।"

तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—एह णं भंते ! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। तए णं सा सिरिदेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया। भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिणं-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता पडिविसज्जेइ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—

"कहि णं भंते ! तुब्भे परिवसह ?"

तए णं से भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव[2] संपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तत्थ णं अम्हे परिवसामो।

उस समय अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम को पास से जाते हुए देखा। देखकर जहाँ भगवान् गौतम थे वहाँ आये और भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—

'भंते ! आप कौन हैं ? और क्यों घूम रहे हैं ?'

तब भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार को इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं, ईर्यासमिति आदि सहित यावत् ब्रह्मचारी हैं, छोटे बड़े कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं।'

यह सुनकर अतिमुक्त कुमार भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—'भगवन् ! आप आओ ! मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ।' ऐसा कहकर अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम की अंगुली पकड़ी और उनको अपने घर ले आये। श्रीदेवी महारानी भगवान् गौतम को आते देख बहुत प्रसन्न हुई यावत् आसन से उठकर भगवान् गौतम के सम्मुख आई। भगवान् गौतम को तीन बार दक्षिण तरफ से प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया फिर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभ दिया यावत् विधिपूर्वक विसर्जित किया।

१. वर्ग ३, सूत्र १८. २. वर्ग १, अ० १, सूत्र २.

इसके बाद भगवान् गौतम से अतिमुक्त कुमार इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय ! आप कहाँ रहते हैं ?'

भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार को उत्तर दिया—

'देवानुप्रिय ! मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, यावत् शाश्वत स्थान—मोक्ष के अभिलाषी इसी पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन उद्यान में मर्यादानुसार स्थान ग्रहण करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित कर विचरते हैं। हम वहीं रहते हैं।'

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि बालक अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम से तीन प्रश्न किये थे। वे प्रश्न हैं—आप कौन हैं ? आप किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं ? आप कहाँ पर रहते हैं ? प्रस्तुत सूत्र में इन तीनों के उत्तर भी दिये गये हैं। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् गौतम ने अपना परिचय देने के साथ-साथ साधु-जीवन की मर्यादा का वर्णन भी कर दिया है।

प्रथम प्रश्न के उत्तर में गौतम स्वामी ने कहा—'हम श्रमण हैं, निर्ग्रन्थ, ईर्यासमित एवं ब्रह्मचारी हैं।' वस्तुतः ये चारों शब्द साधु-मर्यादा के परिचायक हैं। उनकी व्याख्या इस प्रकार है—तपस्वी अथवा प्राणिमात्र के साथ समतामय समान व्यवहार करने वाले महापुरुष श्रमण कहलाते हैं। जो परिग्रह से रहित हैं अथवा जिनमें राग-द्वेष की ग्रन्थि न हो वे निर्ग्रन्थ हैं ईर्या-गमन संबंधी समिति-विवेक अर्थात् आगे देखकर तथा सावधानी से चलना ईरियासमिति है। चतुर्थ महाव्रत ब्रह्मचर्य के परिपालक साधक को ब्रह्मचारी कहते हैं।

दूसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार से कहा—"वत्स ! मैं भिक्षार्थ भ्रमण कर रहा हूँ।'

तीसरे प्रश्न के उत्तर में गौतम स्वामी ने श्रीवन उद्यान में मेरा निवास है, ऐसा न कहकर श्रीवन उद्यान में परमात्मा महावीर के पास हमारा निवास है, ऐसा बताया। इसमें उनकी अपूर्व गुरुभक्ति झलकती है।

विउलेणं..............साइमेणं—इस पद में विपुल शब्द के कई अर्थ पाए जाते हैं—प्रभूत, प्रचुर, विस्तीर्ण, विशाल, उत्तम, श्रेष्ठ आदि। प्रस्तुत में 'उत्तम' अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

अतिमुक्त का गौतम के साथ वन्दनार्थ गमन

१७—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—

"गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ जाव[1] पज्जुवासइ।

१. वर्ग ६, सूत्र ११.

तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए, जाव [उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं] पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा।

तब अतिमुक्त कुमार भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—

'हे पूज्य ! मैं भी आपके साथ श्रमण भगवान् महावीर को वंदन करने चलता हूँ।'

श्री गौतम ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो !'

तब अतिमुक्त कुमार गौतम स्वामी के साथ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दक्षिण तरफ से प्रदक्षिणा की। फिर वंदना करके पर्युपासना करने लगे।

इधर गौतम स्वामी भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित हुए, और गमनागमन संबंधी प्रतिक्रमण किया, तथा भिक्षा लेने में लगे हुए दोषों की आलोचना की। फिर लाया हुआ आहार-पानी भगवान् को दिखाया और दिखाकर संयम तथा तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने अतिमुक्त कुमार को तथा महती परिषद् को धर्म-कथा कही।

अतिमुक्त की प्रव्रज्या : सिद्धि

१८—तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे जाव[1] जं नवरं—देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव[2] पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव[3] [उवागच्छित्ता अम्मा-पिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।" तए णं तस्स अइमुत्तस्स अम्मापियरो एवं वयासी—"धन्नो सि तुमं जाया ! संपुन्नो सि तुमं जाया ! कयत्थो सि तुमं जाया ! जं णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते। से वि य णं मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए। तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं] पव्वइत्तए।

१. वर्ग ३, सूत्र १८. २. वर्ग ५, सूत्र ४.
३. वर्ग ३, सूत्र १८.

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता । कि णं तुमं जाणसि धम्मं ?"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—"एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि ।

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणसि जाव [तं चेव न जाणसि ? जं चेव न जाणसि] तं चेव जाणसि ?

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—

"जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्स मरियव्वं, न जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा कहिं वा कहं वा कियच्चिरेण वा ? न जाणामि णं अम्मयाओ ! केहिं कम्मायय‌णेहिं जीवा नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइय जाव[1] उववज्जंति । एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि । तं इच्छामो णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव[2] पव्वइत्तए ।"

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं जाव[3] तं इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए । तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयण-मणुयत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ । अभिसेओ जहा महाबलस्स । निक्खमणं । जाव[4] सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । बहूहिं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, गुणरयणं तवोकम्मं जाव[5] विपुले सिद्धे ।

अतिमुक्त कुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्मकथा सुनकर और उसे धारण कर बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ । विशेष यह है कि उसने कहा—"देवानुप्रिय ! मैं माता-पिता से पूछता हूँ । तब मैं देवानुप्रिय के पास यावत् दीक्षा ग्रहण करूंगा"

भगवान् महावीर बोले—"हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो । पर धर्मकार्य में प्रमाद मत करो ।"

तत्पश्चात् अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास पहुँचे । उनके चरणों में प्रणाम किया और कहा—'माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म श्रवण किया है । वह धर्म मुझे इष्ट लगा है, पुनः पुनः इष्ट प्रतीत हुआ है और खूब रुचा है ।'

अतिमुक्त कुमार के माता-पिता ने कहा—वत्स ! तुम धन्य हो, वत्स ! तुम पुण्यशाली हो, वत्स ! तुम कृतार्थ हो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म श्रवण किया है और वह धर्म तुम्हें इष्ट, पुनः पुनः इष्ट और रुचिकर हुआ है ।

---

१. इसी में
२. वर्ग ६, सूत्र १८
३-४. वर्ग ३, सूत्र १८
५. वर्ग १, सूत्र ९

तब अतिमुक्त कुमार ने दूसरी और तीसरी बार भी यही कहा—'माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म सुना है और वह धर्म मुझे इष्ट, प्रतीष्ट और रुचिकर हुआ है। अतएव मैं हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त कर श्रमण भगवान् महावीर के निकट मुण्डित होकर, गृहत्याग करके अनगार-दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।'

इस पर माता-पिता अतिमुक्त कुमार से इस प्रकार बोले—'हे पुत्र ! अभी तुम बालक हो, असंबुद्ध हो। अभी तुम धर्म को क्या जानो ?'

तब अतिमुक्त कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैं जिसे जानता हूँ, उसे नहीं जानता हूँ और जिसको नहीं जानता हूँ उसको जानता हूँ।'

तब अतिमुक्त कुमार से माता-पिता इस प्रकार बोले-पुत्र ! तुम जिसको जानते हो उसको नहीं जानते और जिसको नहीं जानते उसको जानते हो, यह कैसे ?

तब अतिमुक्त कुमार ने मात-पिता से इस प्रकार कहा—"माता-पिता ! मैं जानता हूँ कि जो जन्मा है उसको अवश्य मरना होगा, पर यह नहीं जानता कि कब, कहाँ, किस प्रकार और कितने दिन बाद मरना होगा ? फिर मैं यह भी नहीं जानता कि जीव किन कर्मों के कारण नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव-योनि में उत्पन्न होते हैं, पर इतना जानता हूँ कि जीव अपने ही कर्मों के कारण नरक यावत् देवयोनि में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार निश्चय ही हे माता-पिता ! मैं जिसको जानता हूँ उसी को नहीं जानता और जिसको नहीं जानता उसी को जानता हूँ। अतः हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा पाकर यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं।"

अतिमुक्त कुमार को माता-पिता जब बहुत-सी युक्ति-प्रयुक्तियों से समझाने में समर्थ नहीं हुए, तो बोले-हे पुत्र ! हम एक दिन के लिए तुम्हारी राज्यलक्ष्मी की शोभा देखना चाहते हैं। तब अतिमुक्त कुमार माता-पिता के वचन का अनुवर्तन करके मौन रहे। तब महाबल के समान उनका राज्याभिषेक हुआ फिर भगवान् के पास दीक्षा लेकर सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमण-चारित्र का पालन किया। गुणरत्नसंवत्सर तप का आराधन किया, यावत् विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध हुए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा उनके माता-पिता के मध्य में हुए प्रश्नोत्तरों का सुन्दर विवरण प्राप्त होता है। अतिमुक्त कुमार ने जब अपने माता-पिता से एक ही विषय को जानने और न जानने की बात कही तो माता-पिता आश्चर्यचकित हो गये। इसी कारण माता-पिता ने अपने पुत्र को उसका स्पष्टीकरण करने को कहा। तब उसने अपने माता-पिता के सन्मुख दो बातें रखीं—

१—मैं जिसे जानता हूँ, उसे नहीं जानता हूँ।

२—जिसे नहीं जानता हूँ, उसे जानता हूँ।

राजकुमार अतिमुक्त की ये बातें सुनकर माता-पिता को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—"जिसे जान लिया गया है, उसे न जानने का क्या मतलब ? और जिसे नहीं जाना, उसे जानने का क्या अर्थ ? जब ज्ञान अज्ञान और अज्ञान ज्ञान नहीं कहलाता तो अतिमुक्त कुमार के ऐसा कहने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? अन्त में उन्होंने अतिमुक्त कुमार से कहा—"पुत्र ! अपने वक्तव्य को कुछ स्पष्ट करो। तुम्हारी यह प्रहेलिका हमारी समझ में नहीं आई।"

अतिमुक्त कुमार ने अपनी वात स्पष्ट करते हुआ कहा कि धर्म के संवंध में मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ ऐसी वात नहीं है। धर्म की पूर्ण परिभाषा मैं नहीं जानता तथापि कुछ न कुछ जानता अवश्य हूँ। मुझे नन्हा वालक समझकर ऐसा न मान लें कि धर्म-तत्त्व से मैं सर्वथा अपरिचित हूँ। मुझे इस बात का बोध है कि जो पैदा हुआ है, उसे एक दिन मरना है, जन्म के साथ मृत्यु का अनादि कालीन संवंध है। जन्म लेने वाले को एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ता है। यह मैं जानता हूँ, पर मुझे यह नहीं पता कि कव? कहाँ और कैसे? कितने समय के अनन्तर मृत्यु का प्रहार सहन करना पड़ेगा? मैं यह नहीं समझता कि जीव किन कर्मवन्ध के कारणों से चारों गतियों में जन्म लेते हैं परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ कि अपने किए हुए कर्मों के कारण ही जीव नरकादि गतियों में उत्पन्न होते हैं।

अतिमुक्त कुमार के प्रस्तुत कथानक में अल्पज्ञ और सर्वज्ञ का स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त "कम्माययणेहिं" शब्द का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—"कम्माययणेहिं त्ति, कर्मणां ज्ञानावरणीयादीनामायतनानि आदानानि बंधहेतव इत्यर्थः। पाठान्तरेण "कम्मावयणेहिं त्ति' तत्र कर्मापतनानि यैः कर्मापतति-आत्मनि संभवति, तानि तथा"—अर्थात् "कर्म" शब्द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मों का संसूचक है और "आयतन" शब्द बंध के कारणों का परिचायक है। कहीं-कहीं "कम्माययणेहिं" के स्थान पर "कम्मावयणेहिं" ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। जिन कारणों से कर्म आत्म-सरोवर में गिरते हैं, आत्म-प्रदेशों से संबंधित होते हैं, उन्हें कर्मापतन कहते हैं। दोनों का आशय एक ही है।

अतिमुक्त कुमार के जीवन संवंधी अंतगडसूत्र के इस वर्णन के अतिरिक्त भगवतीसूत्र के चतुर्थ उद्देशक में मुनि अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बड़ा सुन्दर विवेचन मिलता है। यहाँ आवश्यक होने से उसका उल्लेख किया जा रहा है—

'तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए। तए णं से अइमुत्ते कुमारसमणे अण्णया कयाइं महावुट्ठिकायंसि णिवयमाणंसि कक्खपडिग्गह-रयहरणमायाए वहिया संपट्ठिए विहाराए। तए णं अइमुत्ते कुमारसमणे वाहयं वहमाणं पासइ, पासित्ता मट्टियाए पालिं वंधई, बंधित्ता 'णाविया मे णाविया मे' णाविओ विव णावमयं पडिग्गहं उदगंसि कट्टु पव्वाहमाणे पव्वाहमाणे अभिरमई, तं च थेरा अदक्खु, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे भगवं, से णं भंते! अइमुत्ते कुमारसमणे कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिहिइ, जाव अंतं करेहिइ?

अज्जो! त्ति समणे भगवं महावीरे ते थेरे एवं वयासी—एवं खलु अज्जो! ममं अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए, से णं अइमुत्ते कुमारसमणे इमेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झिहिइ जाव अंतं करिहिइ; तं मा णं अज्जो! तुब्भे अइमुत्तं कुमारसमणं हीलेह, निंदह, खिसह, गरहह, अवमण्णह, तुब्भे णं देवाणुप्पिया! अइमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हह, अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेणं पाणेणं विणएणं वेयावडियं करेह। अइमुत्ते णं कुमारसमणे अंतकरे चेव,

अंतिमसरीरिए चेव; तए णं ते थेरा भगवंतो समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ; अइमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हंति, जाव वेयावडियं करेंति ।

अर्थात्—उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य अतिमुक्त नाम कुमार श्रमण थे । वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे । वे अतिमुक्त कुमार श्रमण किसी दिन महावर्षा बरसने पर अपना रजोहरण काँख-बगल में लेकर तथा पात्र लेकर बाहर स्थंडिल-हेतु गये । जाते हुए अतिमुक्त कुमार श्रमण ने मार्ग में बहते हुए पानी के एक छोटे नाले को देखा । उसे देखकर उन्होंने उस नाले की मिट्टी की पाल बांधी । इसके बाद जिस प्रकार नाविक अपनी नाव को पानी में छोड़ता है, उसी तरह उन्होंने भी अपने पात्र को उस पानी में छोड़ा, और "यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है"—ऐसा कह कर पात्र को पानी में तिराते हुए क्रीडा करने लगे । अतिमुक्त कुमार श्रमण को ऐसा करते हुए देखकर स्थविर मुनि उन्हें कुछ कहे विना ही चले आए, और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से उन्होंने पूछा—

भगवन् ! आपका शिष्य अतिमुक्त कुमार श्रमण कितने भव करने के बाद सिद्ध होगा ? यावत् सब दुखों का अन्त करेगा ?

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उन स्थविर मुनियों को संबोधित करके कहने लगे—हे आर्यो ! प्रकृति से भद्र यावत् प्रकृति से विनीत मेरा अंतेवासी अतिमुक्त कुमार, इसी भव में सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा । अतः हे आर्यो ! तुम अतिमुक्त कुमार श्रमण की हीलना, निन्दा, खिंसना, गर्हा और अपमान मत करो । किन्तु तुम अग्लान भाव से अतिमुक्त कुमार श्रमण को ग्रहण करो । उसकी सहायता करो और आहार पानी के द्वारा विनयपूर्वक वैयावृत्य करो । अतिमुक्त कुमार श्रमण चरमशरीरी है और इसी भव में सब कर्मों का क्षय करने वाला है । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा यह वृत्तान्त सुनकर उन स्थविर मुनियों ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार किया । फिर वे स्थविर मुनि अतिमुक्त कुमारश्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर यावत् उनकी वैयावृत्य करने लगे ।

सोलहवां अध्ययन

अलक्ष

२०—तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नयरी, काममहावणे चेइए । तत्थ णं वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव[1] विहरइ । परिसा निग्गया । तए णं अलक्के राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठतुट्ठे जहा कोणिए जाव[2] धम्मकहा ।

तए णं से अलक्के राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा निक्खंते, नवरं जेट्ठपुत्तं रज्जे अभिसिंचइ । एक्कारस अंगाइं । बहू वासा परियाओ जाव[3] विपुले सिद्धे ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

---

१. वर्ग ६, सूत्र १५　　　　२. उववाई
३. वर्ग १, सूत्र ९

उस काल और उस समय वाणारसी नगरी में काममहावन नामक उद्यान था। उस वाणारसी नगरी में अलक्ष नामक राजा था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर यावत् महावन उद्यान में पधारे। जन-परिषद् प्रभु-वन्दन को निकली, राजा अलक्ष भी प्रभु महावीर के पधारने की बात सुनकर प्रसन्न हुआ और कोणिक राजा के समान वह भी यावत् प्रभु की सेवा में उपासना करने लगा। प्रभु ने धर्मकथा कही।

तब अलक्ष राजा ने श्रमण भगवान महावीर के पास 'उदायन' की तरह श्रमणदीक्षा ग्रहण की। विशेषता यह कि उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सिंहासन पर बिठाया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमणचारित्र का पालन किया यावत् विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

इस प्रकार "हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के छट्ठे वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

विवेचन—प्रस्तुत सोलहवें अध्ययन में वाराणसी नगरी के अलक्ष नरेश के जीवन का उल्लेख किया गया है। अलक्ष नरेश भगवान् महावीर के चरणों में परम श्रद्धालु भक्त थे। इनकी प्रभु चरणों में निष्ठा एवं आस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये सूत्रकार ने चंपा-नरेश कूणिक की ओर संकेत किया है, जिसका वर्णन औपपातिक सूत्र में है।

"जहा उदायणे तहा निक्खंते" का अर्थ है—जिस प्रकार महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए।

उदायन राजा का वर्णन भगवतीसूत्र के शतक १३ उ. ६ में आया है। उसके अनुसार उदायन सिन्धु-सौवीर आदि सोलह देशों का स्वामी था।

एक दिन वह पौषधशाला में पौषध करके बैठा हुआ था। धर्म-जागरण करते हुए उसे भगवान् महावीर की स्मृति आ गई। वह सोचने लगा—वह नगर, कानन धन्य हैं जहां भगवान् विहार करते हैं। वे राजा, आदि धन्य हैं जो भगवान की वाणी सुनते हैं, उनकी उपासना करते हैं, अपने हाथ से उन्हें निर्दोष भोजन, वस्त्र, पात्र आदि देते हैं। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ ? मुझे तो उन महाप्रभु के दर्शन करने का भी अवसर नहीं मिलता। चिन्तन की धारा ऊर्ध्वमुखी होने लगी। उसने सोचा—यदि भगवान् मेरी नगरी में पधार आएँ तो मैं उनकी सेवा करूं, और साथ ही इस असार संसार को छोड़कर दीक्षित हो जाऊं।

उस समय भगवान् चम्पा के पूर्णभद्र उद्यान में विराजमान थे। वीतभयपुर और चम्पा में सात सौ कोस का अन्तर था, पर करुणासागर भक्तवत्सल भगवान् महावीर ने अपने भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये चम्पा से प्रस्थान कर दिया और धीरे-धीरे यात्रा करते हुए वे उदायन की नगरी में पधार गये। भगवान् के पधारने के शुभ समाचार पाकर उदायन आनन्द-विभोर हो उठे। बड़े समारोह के साथ राजा, रानी और कुमार सब भगवान् के चरणों में उपस्थित हुए। धर्म-कथा सुनी, भगवान् की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर उदायन को वैराग्य हो गया। अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिये वह वापस महलों में आया। शासन का सारा दायित्व अभीच कुमार को

संभला देना चाहिये था, पर उदायन ने सोचा--राज्य को वन्धन का कारण समझ कर मैं त्याग रहा हूँ, फिर अपने पुत्र अभीच कुमार को इस वन्धन में क्यों फंसाऊं ? अपना वन्धन कुमार के गले में डालूं यह तो उसके साथ अन्याय होगा। अन्त में राजा ने सारे राज्य में घोषणा कर दी—कि मेरा उत्तराधिकारी मेरा भागिनेय केशी कुमार है, उसका राज्याभिषेक करके मैं दीक्षित हो जाऊंगा। इस घोषणा से उत्तराधिकारी राजकुमार को महान् दुःख हुआ और वह रुष्ट होकर अपने राज्य से बाहर चला गया। इधर उदायन भानजे को राजा वनाकर दीक्षित हो गये।

एक बार मुनि उदायन अस्वस्थ हो गये। वे भ्रमण करते हुए अपनी नगरी वीतभयपुर में आए पर केशीकुमार वदल चुका था। उसको भय हो गया कि कहीं उदायन पुनः राज्य न लेना चाहते हों ! अतः उसने नगर में सवको आदेश दे दिया कि—'कोई व्यक्ति उदायन को आहार न दे और न विश्राम करने का स्थान ही दे। जो इस आदेश की अवहेलना करेगा उसे राजा परिवार सहित मौत के घाट उतार देगा।' मृत्यु के भय से किसी भी नागरिक ने उन्हें आश्रय नहीं दिया। उदायन सारे नगर में घूमे, तव कहीं एक कुम्हार को दया आ गई। उसने उन्हें स्थान दिया। अपने गुप्तचरों से यह सूचना पाकर राजा ने उदायन को मरवाने के लिए एक वैद्य को भेजा। वैद्य ने उपचार के निमित्त उदायन को विष खिला दिया। शरीर में अपार वेदना हुई पर उदायन मुनि ने विष-वेदना को शान्तिपूर्वक सहन किया। भावना की निर्विकारता से उदायन मुनि को अवधिज्ञान हो गया। ज्ञान-प्रकाश होते ही स्थिति समझने में देर न लगी, पर उन्होंने अपने मन को विक्षुब्ध नहीं होने दिया। धर्म-ध्यान और शुक्लध्यान की सीढियां पार करके अन्त में केवलज्ञान प्राप्त किया और मुक्त हो गए।

सत्तमो वग्गो

१-१३ अध्ययन

नंदा आदि

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. नंदा तह २. नंदवई, ३. नंदुत्तर ४. नंदिसेणिया चेव।
५. मरुता ६. सुमरुता ७. महमरुता ८. मरुदेवा य अट्ठमा ।। १ ।।
९. भद्दा य १०. सुभद्दा य, ११. सुजाया १२. सुमणाइया।
१३. भूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणिय भज्जाण नामाइं ।। २ ।।

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नाम देवी होत्था-वण्णओ। सामी समोसढे, परिसा निग्गया। तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाणं दुरुहइ। जहा पउमावई जाव[1] एकारस अंगाइ अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ जाव[2] सिद्धा।

एवं तेरस वि देवीओ नंदा-गमेण नेयव्वाओ।

छठ्ठे वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जंबू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगडदशा के छठ्ठे वर्ग का जो अर्थ बताया है, उसका मैंने श्रवण कर लिया है, अब श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के सातवें वर्ग का जो अर्थ कहा है उसे सुनाने की कृपा करें।

उसके उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा—सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१)नन्दा, (२) नन्दवती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दश्रेणिका, (५) मरुता, (६) सुमरुता, (७) महामरुता, (८) मरुद्देवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमनायिका, (१३) भूतदत्ता। ये सब श्रेणिक राजा की रानियाँ थीं।" ये सब श्रेणिक राजा की पत्नियों के नाम हैं।

---

१. वर्ग—५, सूत्र ४.६

२. वर्ग—५, सूत्र ६

आर्य जंबू ने सुधर्मा स्वामी से पूछा—"भगवन् ! प्रभु ने सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का हे पूज्य ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। उसके बाहर गुणशीलनामक उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। यहाँ राजवर्णन जान लेना चाहिए। श्रेणिक राजा की नन्दा नाम की रानी थी, उसका भी वर्णन औपपातिक सूत्र के राज्ञीवर्णन के समान समझ लेना चाहिए। प्रभु महावीर राजगृह नगर के उद्यान में पधारे। परिषद् वन्दन करने को निकली। नन्दा देवी भगवान् के आने का समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और आज्ञाकारी सेवक को बुलाकर धार्मिक-रथ लाने की आज्ञा दी। पद्मावती की तरह इसने भी दीक्षा ली यावत् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक चारित्र का पालन किया, अंत में सिद्ध हुई।

नन्दवती आदि शेष बारह अध्ययन नन्दा के समान हैं।



अट्ठमो वग्गो

प्रथम अध्ययन

काली

उत्क्षेप

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा—

संगहणी गाहा

(१) काली (२) सुकाली (३) महाकाली, (४) कण्हा (५) सुकण्हा (६) महाकण्हा।
(७) वीरकण्हा य बोधव्वा, (८) रामकण्हा तहेव य।
(९) पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी (१०) महासेणकण्हा य ॥१॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए राया, वण्णओ। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लकमाउया, काली नामं देवी होत्था, वण्णओ। जहा नंदा जाव[1] सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूहिं चउत्थ जाव[2] अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

श्रीजंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा के आठवें वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?"

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा के आठवें वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१) काली, (२) सुकाली, (६) महाकाली, (४) कृष्णा, (५) सुकृष्णा, (६) महाकृष्णा, (७) वीरकृष्णा, (८) रामकृष्णा, (९) पितुसेनकृष्णा और (१०) महासेनकृष्णा।

श्री जंबूस्वामी ने पुनः प्रश्न किया—"भगवन् ! यदि आठवें वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी

---

१. वर्ग ५, सूत्र ४, ६ २. वर्ग १, सूत्र ९

थी। वहाँ पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। वहाँ कोणिक राजा राज्य करता था। उस चम्पानगरी में श्रेणिक राजा की रानी और महाराजा कोणिक की छोटी माता काली नाम की देवी थी। औपपातिकसूत्र के अनुसार उसका वर्णन कहना चाहिए। नन्दा देवी के समान काली रानी ने भी प्रभु महावीर के समीप श्रमणीदीक्षा ग्रहण करके सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया एवं बहुत से उपवास, बेले, तेले आदि तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

काली आर्या का रत्नावली तप

तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।"

अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेहि।

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउवीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउवीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ,

करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव [अहाअत्थं अहात्तच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया] आराहिया भवइ।

एक दिन वह काली आर्या, आर्या चन्दना के समीप आयी और आकर हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो मैं रत्नावली तप को अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ।"

आर्या चन्दना ने कहा—"देवानुप्रिये! जैसे सुख हो वैसा करो, प्रमाद मत करो।"

तब काली आर्या, आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली तप को अंगीकार करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ बेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दशम-चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, द्वादशम-पंचोला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, छह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दश उपवास किये, करके, सर्वगुणकामयुक्त पारणा किया, पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेरह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौदह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सोलह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौंतीस बेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सोलह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौदह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेरह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दस उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त

पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, छह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, पंचोला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, वेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, आठ वेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, वेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार इस रत्नावली तपश्चरण की प्रथम परिपाटी की काली आर्या ने आराधना की। सूत्रानुसार रत्नावली तप की इस आराधना की प्रथम परिपाटी (लडी) एक वर्ष तीन



रत्नावली तप का स्थापना-यन्त्र

मास और वाईस अहोरात्र में, [यथासूत्र, अर्थानुसार, तदुभयानुसार, मार्गानुसार, कल्पानुसार सम्यक्प्रकार से, काया द्वारा स्पर्श कर, पालकर शोधित कर, पार कर प्रशंसनीय] आराधना पूर्ण की।

विवेचन—रयणावली का अर्थ वृत्तिकार[1] के शब्दों में इस प्रकार है—रयणावलिं त्ति, रत्नावली आभरणविशेषः, रत्नावलीतपः रत्नावली। यथाहि रत्नावली उभयतः आदौ सूक्ष्म-स्थूल-स्थूलतर-विभाग-काहलिकाख्य-सौवर्णावयवद्वययुक्ता भवति, पुनर्मध्यदेशे स्थूलविशिष्टमण्यलंकृता च भवति, एवं यत्तपः पट्टादावुपदर्श्यमानमिममाकारं धारयति तद्ररत्नावलीत्युच्यते-अर्थात् रत्नावली एक आभूषण विशेष होता है। उसकी रचना के समान जिस तप का आराधन किया जाये उसको रत्नावली तप कहते हैं। जैसे रत्नावली भूषण दोनों ओर से आरंभ में सूक्ष्म फिर स्थूल, फिर उस से अधिक स्थूल, मध्य में विशेष स्थूल मणियों से युक्त होता है, वैसे ही जो तप आरंभ में स्वल्प फिर अधिक, फिर विशेष अधिक होता चला जाता है वह रत्नावली है। जिस प्रकार रत्नावली से शरीर की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार रत्नावली तप आत्मा को सद्गुणों से विभूषित करता है। रत्नावली तप में पाँच वर्ष दो मास और अट्ठाईस दिन लगते हैं।

इस तप का यन्त्र पूर्व पृष्ठ पर दिया गया है।

३—तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करेत्ता विगइवज्जं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता विगइवज्जं पारेइ। एवं जहा पढमाए परिवाडीए तहा बीयाए वि, नवरं—सव्वपारणए विगइवज्जं पारेइ जाव [एवं खलु एसा रयणावलीए तवोक्कम्मस्स बिइया परिवाडी एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं जाव[2] आराहिया भवइ।

तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करेत्ता अलेवाडं पारेइ। सेसं तहेव। नवरं अलेवाडं पारेइ।

एवं चउत्था परिवाडी। नवरं सव्वपारणए आयंबिलं पारेइ। सेसं तं चेव।

संगहणी गाहा

पढमंमि सव्वकामं, पारणयं बिइयए विगइवज्जं।
तइयंमि अलेवाडं, आयंबिलमो चउत्थम्मि॥१॥

तए णं सा काली अज्जा रयणावलीतवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठवीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव[3] आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

इस एक परिपाटी में तीन सौ चोरासी दिन तपस्या के एवं अठासी दिन पारणा के होते हैं। इस प्रकार कुल चार सौ बहत्तर दिन होते हैं। इसके पश्चात् दूसरी परिपाटी में काली आर्या ने उपवास किया और विकृति (विगय) रहित पारणा किया, बेला किया और विगय रहित पारणा किया। इस प्रकार यह भी पहली परिपाटी के समान है। इसमें केवल यह विशेष (अन्तर) है कि पारणा विगयरहित होता है। इस प्रकार सूत्रानुसार इस दूसरी परिपाटी का आराधन किया जाता है।

---

१. अन्तगडसूत्र—सवृत्ति-पत्र-२५.   २.-३. वर्ग ८, सूत्र २.

इसके पश्चात् तीसरी परिपाटी में वह काली आर्या उपवास करती है और लेपरहित पारणा करती है। शेष पहले की तरह है।

ऐसे ही काली आर्या ने चौथी परिपाटी की आराधना की। इसमें विशेषता यह है कि सब पारणे आयंबिल से करती हैं। शेष उसी प्रकार है।

गाथार्थ—

प्रथम परिपाटी में सर्वकामगुण, दूसरी में विगयरहित पारणा किया। तीसरी में लेप रहित और चौथी परिपाटी में आयंबिल से पारणा किया।

इस भांति काली आर्या ने रत्नावली तप की पांच वर्ष दो मास और अट्ठाईस दिनों में सूत्रानुसार यावत् आराधना पूर्ण करके जहाँ आर्या चन्दना थीं वहाँ आई और आर्या चंदना को वंदना-नमस्कार किया। तदनन्तर बहुत से उपवास, बेला, तेला, चार, पाँच आदि अनशन तप से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

विवेचन—"अलेवाडं" अर्थात् जिस भोजन में विकृति का लेप भी न हो, जो भोजन घृतादि ा चुपड़ा हुआ भी न हो, एकदम रूखा हो, उसे अलेपकृत कहते हैं।

'आयंबिल'—शब्द प्राकृतभाषा का है। संस्कृत में इसके आचाम्ल, आचामाम्ल तथा आयामाम्ल, ये तीन रूप बनते हैं। इसमें एक ही बार घृत-दूध-दधि-तेल-गुड़-शक्कर आदि से रहित नीरस भोजन करना होता है। यथा—चावल, उड़द, सत्तू भुने हुए चने आदि।

रत्नावली तप की चारों परिपाटियों में पाँच वर्ष, दो मास और २८ दिन लगते हैं।

काली आर्या की अन्तिम साधना : मि:—

विहरइ। तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता, जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[1] चरिमुस्सासेहिं सिद्धा। निक्खेवओ।

तत्पश्चात् काली आर्या, उस उराल-प्रधान, [विपुल, दीर्घकालीन, विस्तीर्ण, सश्रीक-शोभा-सम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, वहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी, नीरोगता-जनक, शिव-मुक्ति के कारण, धन्य मांगल्य-पापविनाशक, उदग्र-तीव्र, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम-अज्ञान अन्धकार से रहित और महान् प्रभाववाले, तप:कर्म से शुष्क-नीरस शरीरवाली, भूखी, रूक्ष, मांसरहित] और नसों से व्याप्त हो गयी थी। जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी हो, सूखी लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, पत्तों से भरी गाड़ी हो, धूप में डालकर सुखाई हो अर्थात् कोयला, लकड़ी पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हों और फिर गाड़ी में भरे गये हों, तो वह गाड़ी खड़खड़ आवाज करती हुई चलती है और ठहरती है, उसी प्रकार काली आर्या हाड़ों की खड़खड़ाहट के साथ चलती थी और खड़खड़ाहट के साथ खड़ी रहती थी। वह तपस्या से तो उपचित-वृद्धि को प्राप्त थी, मगर मांस और रुधिर से अपचित—ह्रास को प्राप्त हो गई थी।] भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रही थी।

एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में काली आर्या के हृदय में स्कन्दकमुनि के समान विचार उत्पन्न हुआ—"इस कठोर तप-साधना के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। तथापि जब तक मेरे इस शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम है, मन में श्रद्धा, धैर्य एवं वैराग्य है तब तक मेरे लिये उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् आर्या चंदना से पूछकर, उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर, संलेखना झूषणा का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके मृत्यु के प्रति निष्काम हो कर विचरण करूँ।" ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्या चंदना थी वहाँ आई और आर्या चन्दना को वंदना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं संलेखना झूषणा करती हुई विचरना चाहती हूँ। आर्या चन्दना ने कहा—"हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो। सत्कार्य में विलम्ब न करो।" तब आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर काली आर्या संलेखना झूषणा ग्रहण करके यावत् विचरने लगी। काली आर्या ने आर्य-चन्दना आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन करके एक मास की संलेखना से आत्मा को झूषित कर साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर, जिस हेतु से संयम ग्रहण किया था यावत् उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण किया और सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

विवेचन—आर्या काली ने अपनी गुरुणी से ग्यारह अंगशास्त्रों का अध्ययन किया, इस कथन से यह बात भली भांति प्रमाणित हो जाती है कि जिस प्रकार साधु को अंगशास्त्र पढ़ने का अधिकार है उसी प्रकार साध्वी को भी है। इसके अतिरिक्त काली देवी की जीवनी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि परम-कल्याणरूप निर्वाणपद की प्राप्ति में साधु और साध्वी दोनों का समान अधिकार है।

व्यवहारसूत्र के दसवें उद्देशक में साधु-साध्वी के पाठ्य-क्रम का वर्णन किया गया है। वहाँ लिखा है कि दस वर्ष की दीक्षावाला साधु व्याख्याप्रज्ञप्ति—(भगवती) सूत्र पढ़ सकता है, इससे पहले

---

१. वर्ग ५, सूत्र ६.

नहीं। परन्तु काली देवी की दीक्षा आठ वर्ष की थी, उसने ग्यारह अंग पढ़े। ऐसी दशा में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि व्यवहारसूत्रानुसार काली देवी ने अंगशास्त्र पढ़ने की अधिकारिणी न होते हुए भी अंगशास्त्रों का अध्ययन क्यों किया ?

उत्तर में निवेदन है कि स्थानांग भगवती आदि सूत्रों में पांच प्रकार के व्यवहार बतलाए गये हैं। मोक्षाभिलाषी आत्माओं की प्रवृत्ति और निवृत्ति एवं तत्कारणक ज्ञान विशेष को व्यवहार कहते हैं। पांच व्यवहार इस प्रकार हैं—

१. **आगमव्यवहार**—केवलज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, अवधिज्ञान, चौदहपूर्व, दश पूर्व और नव पूर्व का अध्ययन आगम कहलाता है। आगम से प्रवृत्ति एवं निवृत्तिरूप व्यवहार को आगम-व्यवहार कहते हैं।

२. **श्रुतव्यवहार**—आचारप्रकल्पादि ज्ञान श्रुत है, इससे किया जानेवाला व्यवहार श्रुत-व्यवहार है। नव, दश और चौदह पूर्व का ज्ञान भी श्रुतरूप है, परन्तु अतीन्द्रिय अर्थविषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण होने से उक्त ज्ञान अतिशय वाला है, अतः वह आगम रूप माना गया है।

३. **आज्ञा-व्यवहार**—दो गीतार्थ साधु एक दूसरे से अलग भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहे हों और शरीर क्षीण हो जाने से वे विहार में असमर्थ हों। उनमें से किसी एक को प्रायश्चित्त आने पर वह मुनि योग्य गीतार्थ शिष्य के अभाव में अकुशल शिष्यों को गीतार्थ मुनि के पास भेजता है और उस के द्वारा आलोचना करता है। गूढ भाषा में कही हुई आलोचना सुनकर वे गीतार्थ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, संहनन, धैर्य और बलादि का विचार कर स्वयं वहां आते हैं अथवा योग्य गीतार्थ शिष्य को समझाकर भेजते हैं। यदि वैसे शिष्य का भी उनके पास योग न हो तो आलोचना का संदेश लानेवाले के द्वारा ही गूढ अर्थ में अतिचार की शुद्धि अर्थात् प्रायश्चित्त देते हैं। यह आज्ञा-व्यवहार है।

४. **धारणा-व्यवहार**—किसी गीतार्थ संविग्न मुनि के द्रव्य-क्षेत्र-काल एवं भाव की अपेक्षा जिस अपराध में जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसकी धारणा से वैसे अपराध में वैसे ही प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणा व्यवहार है।

५. **जीत-व्यवहार**—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-पुरुष प्रतिसेवना का और संहनन, धृति आदि की हानि का विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत-व्यवहार है।

व्यवहारसूत्र में दस वर्ष के दीक्षित मुनि को भगवतीसूत्र पढ़ाने का जो विधान किया गया है वह प्रायश्चित्त-सूत्र-व्यवहार को लेकर लिखा गया है। आगम-व्यवहार को लेकर चलने वाले महापुरुषों पर यह विधान लागू नहीं होता। आगम-व्यवहारी जो कहते हैं उसे उचित ही माना जाता है। उनके किसी व्यवहार में अनौचित्य के लिये कोई स्थान नहीं होता।

काली देवी के संबंध में आठ वर्षों की दीक्षा-पर्याय में अंग-शास्त्र पढ़ने का उल्लेख मिलता है, परंतु धन्य अनगार के संबंध में तो लिखा है कि उन्होंने नौ मास की दीक्षा-पर्याय में अंग-शास्त्र पढ़े। इससे स्पष्ट है कि आगम-व्यवहार के सामने सूत्र व्यवहार नगण्य है। इसी दृष्टि से व्याख्या-प्रज्ञप्ति, स्थानांग सूत्र और व्यवहार सूत्र में लिखा है—"आगमबलिया समणा निग्गंथा।"

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि—व्यवहार सूत्र के अनुसार "दशवर्षीय" दीक्षित साधु को अंग पढ़ाए जाते हैं, पर यह विधान आगम-व्यवहार वाले मुनियों पर लागू नहीं होता। □

द्वितीय अध्ययन

सुकाली

सुकाली का कनकावली तप

५—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि निक्खंता जाव[1] बहूहिं जाव[2] तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव[3] इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली-तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवरं—तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहिं रयणावलीए छट्ठाइं। एक्काए परिवाडीए संवच्छरो, पंच मासा, बारस य अहोरत्ता। चउण्हं पंच वरिसा नव मासा अट्ठारस दिवसा। सेसं तहेव। नव वासा परियाओ जाव[4] सिद्धा।

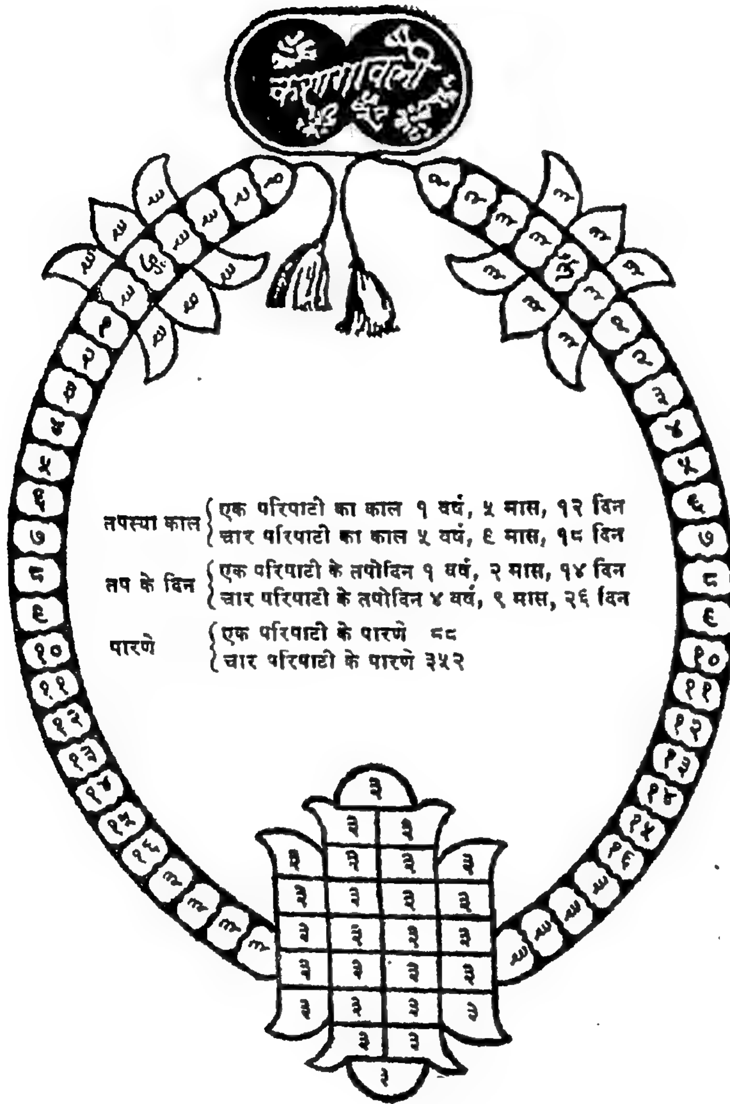
उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र उद्यान था और कोणिक राजा वहां राज्य करता था। उस नगरी में श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता सुकाली नाम की रानी थी। काली की तरह सुकाली भी प्रव्रजित हुई और बहुत से उपवास आदि तपों से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

फिर वह सुकाली आर्या अन्यदा किसी दिन आर्य-चन्दना आर्या के पास आकर इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं कनकावली तप अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ।" आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली के समान सुकाली ने कनकावली तप का आराधन किया। विशेषता इसमें यह थी कि तीनों स्थानों पर अष्टम-तेले किये जब कि रत्नावली में षष्ठ-बेले किये जाते हैं। एक परिपाटी में एक वर्ष, पाँच मास और बारह अहोरात्रियां लगती हैं। इस एक परिपाटी में ८८ दिन का पारणा और १ वर्ष, २ मास १४ दिन का तप होता है। चारों परिपाटी का काल पांच वर्ष, नव मास और अठारह दिन होते हैं। शेष वर्णन काली आर्या के समान है। नव वर्ष तक चारित्र का पालन कर यावत् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।

विवेचन—कनकावली तप और रत्नावली तप में इतना ही भेद है कि रत्नावली में जहाँ आठ बेले तथा ३४ बेले किये जाते हैं, वहाँ कनकावली तप में आठ तेले और ३४ तेले किये जाते हैं। शेष तप के दिन बराबर हैं। पारणे में भी समानता है। कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष पाँच मास और १२ दिन लगते हैं। इस प्रकार चारों परिपाटियों के ५ वर्ष ६ मास और १८ दिन होते हैं। कनकावली की प्रथम परिपाटी की रूपरेखा अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित यंत्र द्वारा स्पष्ट होती है।

---

१. वर्ग ५, सूत्र ५-६ २. वर्ग ५, सूत्र ६
३. वर्ग ८, सूत्र ४ ४. वर्ग ५, सूत्र ६



कनकावली
स्थापना-यन्त्र

तृतीय अध्ययन

महाकाली

महाकाली का क्षुल्लकसिंहनिष्क्रीडित तप

६—एवं महाकाली वि । नवरं—खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव[1] सिद्धा।

काली की तरह महाकाली ने भी दीक्षा अंगीकार की। विशेष यह कि उसने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप किया जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा

---

१. वर्ग ८, सूत्र २.

किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छः उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पांच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुक्तयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इसी प्रकार चारों परिपाटियां समझनी चाहिये। एक परिपाटी में छह मास और सात दिन लगे। चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष और अट्ठाईस दिन होते हैं यावत् महाकाली आर्या सिद्ध हुई।

विवेचन—आर्या महाकाली ने 'लघुसिंहनिष्क्रीडित तप' की आराधना की थी। प्रस्तुत सूत्र में इसे "खुड्डागं सीहनिक्कीलियं" कहा है, जिसका अर्थ है—जिस प्रकार गमन करता हुआ सिंह अपने अतिक्रान्त मार्ग को पीछे लौटकर फिर देखता है, उसी प्रकार जिस तप में अतिक्रमण किए हुए उपवास के दिनों को फिर से सेवन करके आगे बढ़ा जाए।[1]

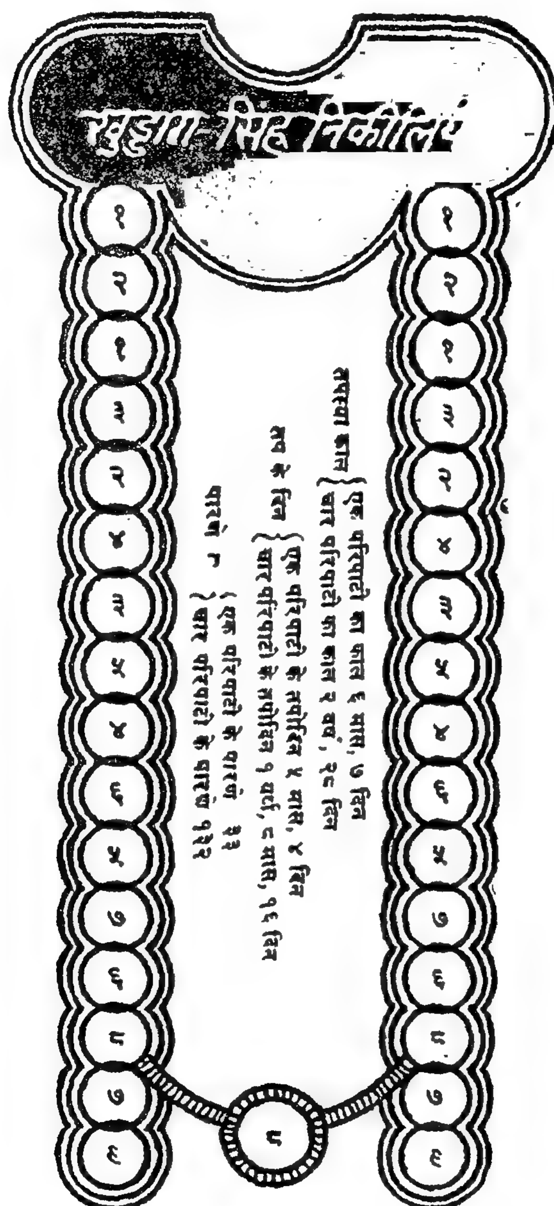
सिंहनिष्क्रीडित तप दो प्रकार का होता है, एक "लघुसिंहनिष्क्रीडित और दूसरा महासिंह-निष्क्रीडित तप"। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित आर्या महाकाली ने लघुसिंह निष्क्रीडित तप की आराधना की। इस तप की भी चार परिपाटियाँ होती हैं। एक परिपाटी में छह मास और सात दिन लगते हैं। ३३ दिन पारणे में जाते हैं। इस तरह प्रथम परिपाटी ६ मास ७ दिन में सम्पन्न होती है। चारों परिपाटियों में दो वर्ष और अट्ठाईस दिन होते हैं।

अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित स्थापना यन्त्र से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

जैसे कालीदेवी ने रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध घृतादि सभी पदार्थों को गृहण किया, दूसरी परिपाटी के पारणे में इन रसों को छोड़ दिया, तीसरी परिपाटी में लेपमात्र का भी त्याग कर दिया तथा चतुर्थ परिपाटी में उपवासों का पारणा आयंबिलों से किया, वैसे ही महाकाली देवी ने लघुसिंह-निष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी में विगयों को ग्रहण किया, दूसरी में

१. अन्तकृतदशांगसूत्र—पत्र-२८/१

त्याग किया, तीसरी में लेपमात्र का भी त्याग किया, चौथी में उपवासों का पारणा आयंबिल तप से किया।



चतुर्थ अध्ययन

कृष्णा

कृष्णा देवी का महासिंहनिष्क्रीडित तप

७—एवं कण्हा वि। नवरं—महालयं सीहणिक्कीलियं तवोकम्मं, जहेव खुड्डागं। नवरं—चोत्तीसइमं जाव नेयव्वं। 'तहेव ओसारेयव्वं'। एक्काए वरिसं छम्मासा अट्ठारस य दिवसा। चउण्हं छव्वरिसा दो मासा बारस य अहोरत्ता। सेसं जहा कालीए जाव[1] सिद्धा।

इसी प्रकार कृष्णा रानी के विषय में भी समझना। विशेष यह कि कृष्णा ने महासिंहनिष्क्रीडित तप किया। लघुसिंहनिष्क्रीडित तप से इसमें इतनी विशेषता है कि इसमें एक से लेकर १६ तक अनशन तप किया जाता है और उसी प्रकार उतारा जाता है। एक परिपाटी में एक वर्ष, छह मास और अठारह दिन लगते हैं। चारों परिपाटियों में छह वर्ष, दो मास और बारह अहोरात्र लगते हैं।

विवेचन—विशेष जानकारी प्रस्तुत यंत्र से स्पष्ट होती है—

महालिंय सिंहनिकीलिय

१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११ १३ १२ १४ १३ १५ १४ १६

१५

१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११ १३ १२ १४ १३ १५ १४ १६

तपस्या काल { एक परिपाटी का काल १ वर्ष, ६ मास, १८ दिन
चार परिपाटी का काल ६ वर्ष, २ मास, १२ दिन

तप के दिन { एक परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष, ४ मास, १७ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ५ वर्ष, ६ मास, ८ दिन

पारणे, { एक परिपाटी के पारणे, ६१
चार परिपाटी के पारणे, २४४

---

१. वर्ग-५, सूत्र-६

पञ्चम अध्ययन

सुकृष्णा

सुकृष्णा का भिक्षुप्रतिमा आराधन

८—एवं सुकण्हा वि, नवरं—सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स।

दोच्चे सत्तए दो-दो भोयणस्स दो-दो पाणयस्स पडिगाहेइ।

तच्चे सत्तए तिण्णि-तिण्णि दत्तीओ भोयणस्स, तिण्णि-तिण्णि दत्तीओ पाणयस्स।

चउत्थे सत्तए चत्तारि-चत्तारि दत्तीओ भोयणस्स, चत्तारि-चत्तारि दत्तीओ पाणयस्स।

पंचमे सत्तए पंच-पंच दत्तीओ भोयणस्स, पंच-पंच दत्तीओ पाणयस्स।

छट्ठे सत्तए छ-छ दत्तीओ भोयणस्स, छ-छ दत्तीओ पाणयस्स।
सत्तमे सत्तए सत्त-सत्त दत्तीओ भोयणस्स, सत्त-सत्त दत्तीओ पाणयस्स पडिगाहेइ।

एवं खलु एयं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए रातिंदिएहिं एगेण य छण्णउएण भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेहि।

काली आर्या की तरह आर्या सुकृष्णा ने भी दीक्षा ग्रहण की। विशेष यह कि वह सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा ग्रहण करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

प्रथम सप्तक में एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। द्वितीय सप्तक में दो दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की। तृतीय सप्तक में तीन दत्ति भोजन की और तीन दत्ति पानी की ग्रहण की। चतुर्थ सप्तक में चार दत्ति भोजन की और चार दत्ति पानी की ग्रहण की। पांचवें सप्तक में पांच दत्ति भोजन की और पांच दत्ति पानी की ग्रहण की। छट्ठे सप्तक में छह दत्ति भोजन की और छह दत्ति पानी की ग्रहण की। सातवें सप्तक में सात दत्ति भोजन की और सात दत्ति पानी की ग्रहण की।

इस प्रकार उनपचास (४९) रात-दिन में एक सौ छियानवे (१९६) भिक्षा की दत्तियां होती हैं। सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि के अनुसार इसी 'सप्तसप्तमिका' भिक्षुप्रतिमा तप की सम्यग्

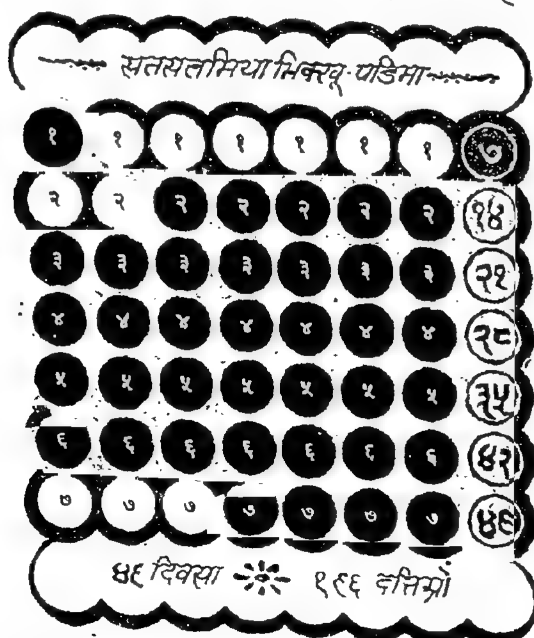
---

१. वर्ग ८, सूत्र २.

आराधना की। इसमें आहार-पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह में सात दत्तियां हुई, दूसरे सप्ताह में चौदह, तीसरे सप्ताह में इक्कीस, चौथे में अट्ठाईस, पांचवें में पैंतीस, छट्ठे में बयालीस और सातवें सप्ताह में उनपचास दत्तियां होती हैं। इस प्रकार सभी मिलाकर कुल एक सौ छियानवे (१९६) दत्तियां हुईं। इस तरह सूत्रानुसार इस प्रतिमा का आराधन करके सुकृष्णा आर्या आर्य चन्दना आर्या के पास आई और उन्हें वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं 'अष्ट-अष्टमिका' भिक्षु-प्रतिमा तप अंगीकार करके विचरूं।"

आर्या चन्दना ने कहा—हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो। धर्मकार्य में प्रमाद मत करो।

विवेचन—तीसरे वर्ग के १९ वें सूत्र में वर्णित भिक्षुप्रतिमा से यह सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा अलग है। उससे इसका कोई संबंध नहीं है। सातवीं भिक्षुप्रतिमा का समय एक मास है और उसमें सात दत्तियाँ भोजन की और सात दत्तियां पानी की ग्रहण की जाती हैं परन्तु प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा का समय ४९ दिन-रात्रि का है। यह सात सप्ताहों में पूर्ण होती है (७×७=४९)। प्रथम सप्ताह में एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है, दूसरे में दो-दो, तीसरे में तीन-तीन, चौथे, पांचवें, छट्ठे, सातवें में एक-एक की वृद्धि क्रमशः करते हुए सातवें तक सात-सात दत्तियां अन्न पानी की ग्रहण की जाती हैं। इस सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा में समस्त दत्तियों की संख्या १९६ होती है। अतः इस भिक्षु-प्रतिमा का उक्त बारह भिक्षु-प्रतिमाओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका स्थापनायंत्र इस प्रकार है—



९—तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्तिं पडिगाहेइ], अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स पडिगाहेइ, अट्ठट्ठ पाणयस्स ।

एवं खलु एयं अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राँतिदिएँहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[1] आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्तिं पडिगाहेइ] नवमे नवए नव-नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, नव-नव पाणयस्स ।

एवं खलु एयं नवनवमियं भिक्खुपडिमं एक्कासीतिए राइंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खा-सएहिं अहासुत्तं जाव[2] आराहेत्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्तिं पडिगाहेइ]।

दसमे दसए दस-दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, दस-दस पाणयस्स ।

एवं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[3] आराहेइ, आराहेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

तए णं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं जाव[4] सिद्धा । निक्खेवओ ।

आर्यचन्दना आर्या से आज्ञा प्राप्त होने पर आर्या सुकृष्णा देवी अष्ट-अष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा को धारण कर के विचरने लगी । अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

पहले आठ दिनों में आर्या सुकृष्णा ने एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की । दूसरे अष्टक में अन्न-पानी की दो-दो दत्तियां लीं । इसी प्रकार क्रम से तीसरे में तीन-तीन, चौथे में चार-चार, पांचवें में पांच-पांच, छट्ठे में छह-छह, सातवें में सात-सात और आठवें में आठ-आठ अन्न-जल की दत्तियां ग्रहण कीं ।

इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना में ६४ दिन लगे और २८८ भिक्षाएं ग्रहण की गईं । इस भिक्षु-प्रतिमा की सूत्रोक्त पद्धति से आराधना करने के अनन्तर आर्या सुकृष्णा ने नव-नवमिकानामक भिक्षु-प्रतिमा की आराधना आरम्भ कर दी ।

नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करते समय आर्या सुकृष्णा ने प्रथम नवक में प्रतिदिन एक एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की । इसी प्रकार आगे क्रमशः एक-एक दत्ति बढाते हुए नौवें नवक में अन्न जल की नौ-नौ दत्तियां ग्रहण कीं ।

इस प्रकार यह नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा इक्यासी (८१) दिनों में पूर्ण हुई । इसमें भिक्षाओं की संख्या ४०५ तथा दिनों की संख्या ८१ होती है । सूत्रोक्त विधि के अनुसार नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर आर्या सुकृष्णा ने दश-दशमिकानामक भिक्षु प्रतिमा की आराधना आरंभ की ।

१-२-३ वर्ग ८, सूत्र २

४. वर्ग ८, सूत्र ४

दश-दशमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करते समय आर्या सुकृष्णा प्रथम दशक में एक-एक दत्ति भोजन और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण करती है।

इसी प्रकार एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए दसवें दशक में दस-दस दत्तियां भोजन की और पानी की स्वीकार करती हैं।

दश-दशमिका भिक्षु-प्रतिमा में एक सौ रात्रि-दिन लग जाते हैं। इसमें साढ़े पांच सौ (५५०) भिक्षाएँ और ११ सौ दत्तियां ग्रहण करनी होती हैं। सूत्रोक्त विधि के अनुसार दश-दशमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर आर्या सुकृष्णा ने उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, छह, सात, आठ, से लेकर १५ तथा मासखमण तक की तपस्या के अतिरिक्त अन्य अनेकविध तपों से अपनी आत्मा को भावित किया।

इस कठिन तप के कारण आर्या सुकृष्णा अत्यधिक दुर्बल हो गई यावत् संपूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्षगति हो प्राप्त हुई।

विवेचन—सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा की तरह इस सूत्र में कथित अष्टअष्टमिका, नव-नवमिका तथा दश-दशमिका भिक्षुप्रतिमाएँ होती हैं। तीनों का अन्तर यंत्रों से स्पष्ट होता है।

अट्ठअट्ठमिया भिक्खू-पडिमा

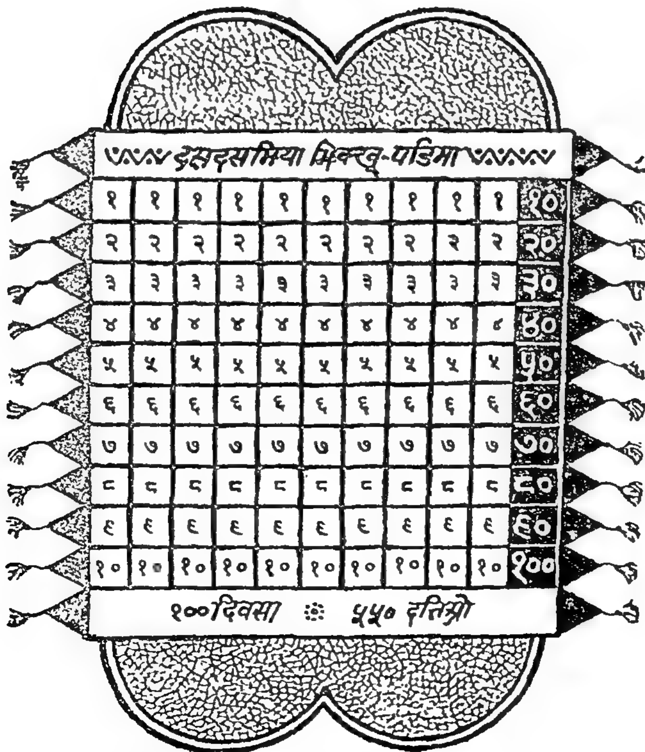
१	१	१	१	१	१	१	१	८
२	२	२	२	२	२	२	२	१६
३	३	३	३	३	३	३	३	२४
४	४	४	४	४	४	४	४	३२
५	५	५	५	५	५	५	५	४०
६	६	६	६	६	६	६	६	४८
७	७	७	७	७	७	७	७	५६
८	८	८	८	८	८	८	८	६४

६४ दिवसा ❀ २८८ दत्तिओ

नवनवमिया भिक्खु पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

८१ दिवस ❁ ४०५ दत्तिओ



दसदसमिया भिक्खु-पडिमा

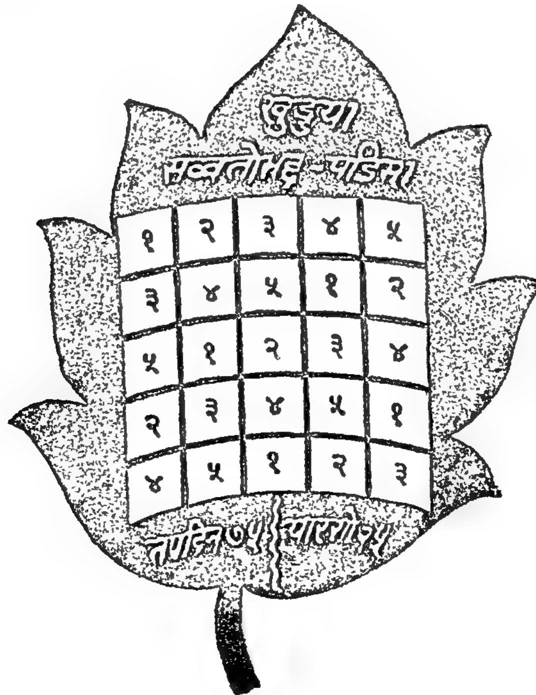
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

१०० दिवसा ❁ ५५० दत्तिओ

पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार यह लघु (क्षुद्र-क्षुल्लक) सर्वतोभद्र तप-कर्म की प्रथम परिपाटी तीन माह और दस दिनों में पूर्ण होती है। इसकी सूत्रानुसार सम्यग् रीति (विधि) से आराधना करके आर्या महा-कृष्णा ने इसकी दूसरी परिपाटी में उपवास किया और विगय रहित पारणा किया। जैसे रत्नावली तप में चार परिपाटियां बताई गई वैसे ही इस में भी होती हैं। पारणा भी उसी प्रकार समझना चाहिये। इस की प्रथम परिपाटी में पूरे सौ दिन लगे, जिसमें पच्चीस दिन पारणा के और ७५ दिन उपवास के होते हैं। चारों परिपाटियों का सम्मिलित काल एक वर्ष, एक मास और दस दिन हुआ।

विवेचन—"खुड्डिय सव्वओभद्दं पडिमं" में क्षुल्लक शब्द महद् की अपेक्षा से है। सर्वतोभद्र तप दो प्रकार का है, एक महद् एक लघु। यह लघु है, इस बात को प्रकट करने के लिये क्षुल्लक शब्द का प्रयोग किया गया है। गणना करने पर जिसके अंक सम अर्थात् बराबर हों, विषम न हों, जिधर से गणना की जाए उधर से ही समान हों, उसे सर्वतोभद्र कहते हैं। इसमें एक से लेकर पांच अंक दिये जाते हैं, चारों ओर जिधर से चाहें गिन लें, सभी ओर १५ ही संख्या होती है। एक से पांच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी संख्या होने से इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है। यह प्रस्तुत यंत्र से स्पष्ट होती है—



सप्तम अध्ययन

वीरकृष्णा

वीरकृष्णा का महत्सर्वतोभद्र तप

११—एवं—वीरकण्हा वि, नवरं—महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो अट्ठ मासा पंच य दिवसा। चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।[1]

---

१. वर्ग ८, सूत्र ३४.

नवनवमिया भिक्खु पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

८१ दिवस ✲ ४०५ दत्तिओ

दसदसमिया भिक्खु-पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

१०० दिवसा ✲ ५५० दत्तिओ

षष्ठ अध्ययन

महाकृष्णा

महाकृष्णा का लघु सर्वतोभद्र तप

१०—एवं महाकण्हा वि, नवरं-खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं खलु एयं खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहिं मासेहिं दसहि य अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करेत्ता विगइवज्जं पारेइ, पारेत्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ। पारणा तहेव। चउण्हं कालो संवच्छरो मासो दस य दिवसा। सेसं तहेव जाव[2] सिद्धा। निक्खेवओ।

इसी प्रकार महाकृष्णा ने भी दीक्षा ग्रहण की, विशेष—वह लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके वेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके वेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त

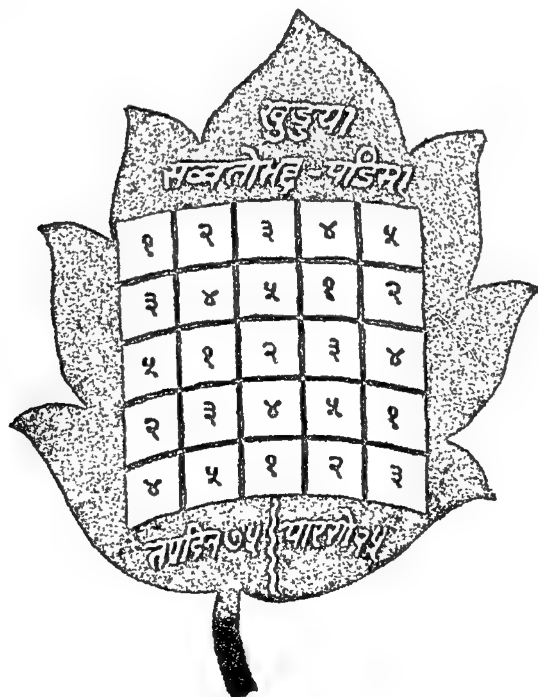
१. वर्ग ८, सूत्र २.

२. वर्ग ८, सूत्र ३४.

पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार यह लघु (क्षुद्र-क्षुल्लक) सर्वतोभद्र तप-कर्म की प्रथम परिपाटी तीन माह और दस दिनों में पूर्ण होती है। इसको सूत्रानुसार सम्यग् रीति (विधि) से आराधना करके आर्या महाकृष्णा ने इसकी दूसरी परिपाटी में उपवास किया और विगय रहित पारणा किया। जैसे रत्नावली तप में चार परिपाटियां बताई गई वैसे ही इस में भी होती हैं। पारणा भी उसी प्रकार समझना चाहिये। इस की प्रथम परिपाटी में पूरे सौ दिन लगे, जिसमें पच्चीस दिन पारणा के और ७५ दिन उपवास के होते हैं। चारों परिपाटियों का सम्मिलित काल एक वर्ष, एक मास और दस दिन हुआ।

विवेचन—"खुड्डिय सव्वओभद्दं पडिमं" में क्षुल्लक शब्द महद् की अपेक्षा से है। सर्वतोभद्र तप दो प्रकार का है, एक महद् एक लघु। यह लघु है, इस बात को प्रकट करने के लिये क्षुल्लक शब्द का प्रयोग किया गया है। गणना करने पर जिसके अंक सम अर्थात् बराबर हों, विषम न हों, जिधर से गणना की जाए उधर से ही समान हों, उसे सर्वतोभद्र कहते हैं। इसमें एक से लेकर पांच अंक दिये जाते हैं, चारों ओर जिधर से चाहें गिन लें, सभी ओर १५ ही संख्या होती है। एक से पांच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी संख्या होने से इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है। यह प्रस्तुत यंत्र से स्पष्ट होती है—



सप्तम अध्ययन

वीरकृष्णा

वीरकृष्णा का महत्सर्वतोभद्र तप

११—एवं—वीरकण्हा वि, नवरं—महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो अट्ठ मासा पंच य दिवसा। चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

१. वर्ग ८, सूत्र ३ ४.

आर्या काली की तरह आर्या वीरकृष्णा ने भी दीक्षा अंगीकार की। विशेष यह कि उसने महत्सर्वतो भद्र तप कर्म अंगीकार किया, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह प्रथम लता हुई।

चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुण-युक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया।

यह दूसरी लता हुई।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह तीसरी लता हुई।

तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया। बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह चौथी लता हुई।

छः उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह पांचवीं लता हुई।

बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके

सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुण-युक्त पारणा किया।

इस तरह छठी लता पूर्ण हुई।

पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छः उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह सातवीं लता पूर्ण हुई।

इस प्रकार सात लताओं की परिपाटी का काल आठ मास और पांच दिन हुआ। चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष आठ मास और बीस दिन होता है। शेष पूर्ववत्। पूर्ण आराधना करके अन्त में संलेखना करके वीरकृष्णा भी सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गई।

विवेचन—महत्सर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी में तप के १९६ होते हैं और पारणे के दिन ४९। इस प्रकार एक परिपाटी के कुल दिन २४५ होते हैं। इनको चार गुणा करने पर चारों परिपाटियों के ९८० दिन होते हैं। प्रस्तुत यंत्र में कहीं से भी गिनने पर संख्या २८ ही होती है। स्पष्टता के लिए देखें यंत्र।



अष्टम अध्ययन

रामकृष्णा

रामकृष्णा का भद्रोत्तरप्रतिमा तप

१२—एवं रामकण्हा वि, नवरं—भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं तहा—

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ; करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा। चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा। सेसं तहेव जहा काली जाव[1] सिद्धा।

आर्या काली की तरह आर्या रामकृष्णा का भी वृत्तान्त समझना चाहिए। विशेष यह कि रामकृष्णा आर्या भद्रोत्तर प्रतिमा अंगीकार करके विचरण करने लगी, जो इस प्रकार है—

पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया।

यह प्रथम लता हुई।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया।

यह दूसरी लता हुई।

नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पांच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया।

यह तीसरी लता पूर्ण हुई।

---

१. वर्ग ८, सूत्र ३, ४.

छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पांच उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया।

यह चौथी लता हुई।

आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह पांचवीं लता पूर्ण हुई।

इस तरह पांच लताओं की एक परिपाटी हुई। ऐसी चार परिपाटियां इस तप में होती हैं। एक परिपाटी का काल छह माह और बीस दिन है। चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष, दो माह और बीस दिन होता है। शेष पूर्व वर्णन के अनुसार समझना चाहिये।

काली के समान आर्या रामकृष्णा भी संलेखना करके यावत् सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गई।

विवेचन—भद्रोत्तर प्रतिमा का अर्थ है—भद्रा-कल्याण की प्रदाता, उत्तर-प्रधान। यह प्रतिमा परम कल्याणप्रद होने से भद्रोत्तरप्रतिमा कही जाती है। यह पांच उपवास से प्रारम्भ होकर नौ उपवास तक जाती है।



अष्टम अध्ययन

रामकृष्णा

रामकृष्णा का भद्रोत्तरप्रतिमा तप

१२—एवं रामकण्हा वि. नवरं—भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं तहा—

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ; करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा। चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा। सेसं तहेव जहा काली जाव[1] सिद्धा।

आर्या काली की तरह आर्या रामकृष्णा का भी वृत्तान्त समझना चाहिए। विशेष यह कि रामकृष्णा आर्या भद्रोत्तर प्रतिमा अंगीकार करके विचरण करने लगी, जो इस प्रकार है—

पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया।

यह प्रथम लता हुई।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया।

यह दूसरी लता हुई।

नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पांच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया।

यह तीसरी लता पूर्ण हुई।

---

१. वर्ग ८, सूत्र ३, ४.

करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त दारणा किया, पारणा करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके दस उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके ग्यारह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बारह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया, करके तेरह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौदह उपवास किये, करके सर्वकामगुण-युक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पन्द्रह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सोलह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पन्द्रह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार जिस क्रम से उपवास बढ़ाए जाते हैं उसी क्रम से उतारते जाते हैं यावत् अन्त में उपवास करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया जाता है।

इस तरह यह एक परिपाटी हुई। एक परिपाटी का काल ग्यारह माह और पन्द्रह दिन होते हैं। ऐसी चार परिपाटियां इस तप में होती हैं। इन चारों परिपाटियों में तीन वर्ष और दस मास का समय लगता है। शेष वर्णन पूर्व की तरह समझना चाहिये।

विवेचन—मुक्तावली शब्द का अर्थ है—मोतियों का हार। जिस प्रकार मोतियों का हार बनाते समय उन मोतियों की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप में उपवासों की स्थापना की जाए उस तप को मुक्तावली तप कहते हैं। स्पष्टता हेतु (अगले पृष्ठ पर) देखिए यंत्र।

नवम अध्ययन

पितृसेनकृष्णा

पितृसेनकृष्णा का मुक्तावली तप

१३—एवं-पिउसेणकण्हा वि, नवरं—मुत्तावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउवीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठावीसइमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं तहेव ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा। सेस जाव सिद्धा।

पितृसेनकृष्णा का चरित भी आर्या काली की तरह समझना। विशेष यह कि पितृसेनकृष्णा ने मुक्तावली तप अंगीकार किया, जो इस प्रकार है—[1]

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया,

---

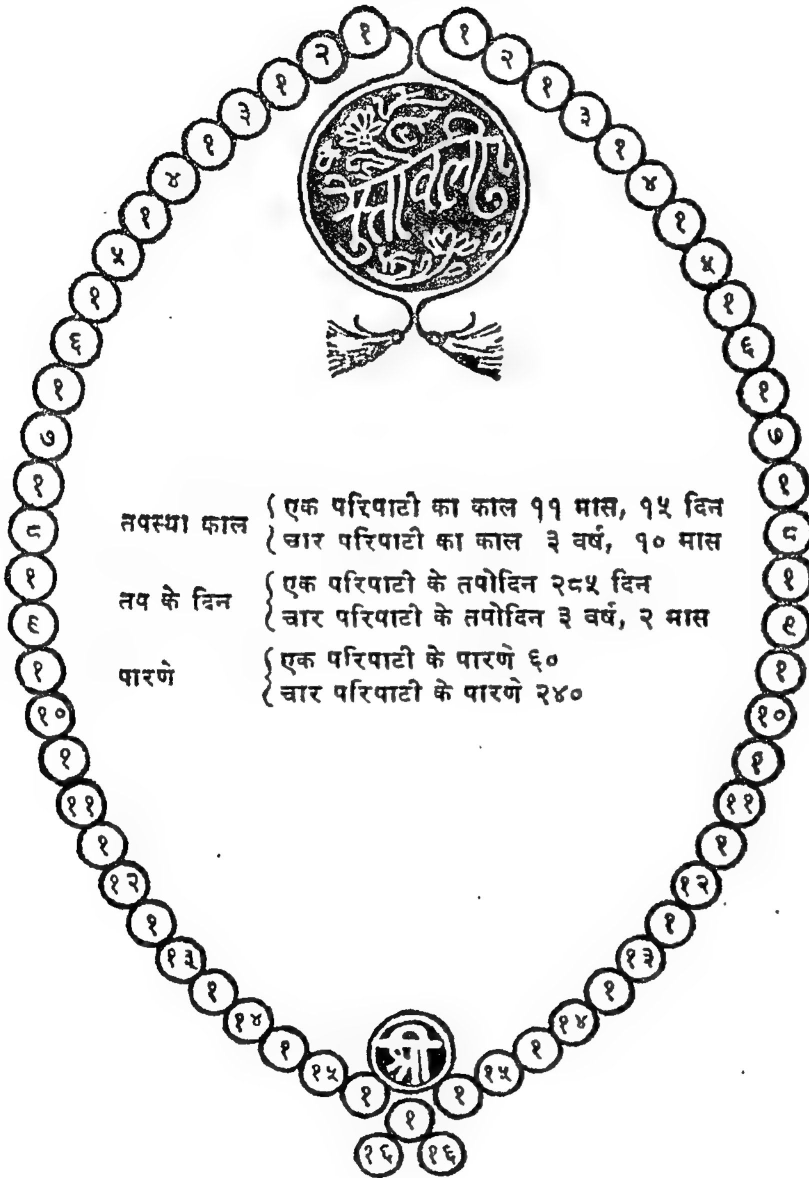
१. वर्ग ८, सूत्र ३-४

करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त दारणा किया, पारणा करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके दस उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके ग्यारह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बारह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया, करके तेरह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौदह उपवास किये, करके सर्वकामगुण-युक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पन्द्रह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सोलह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पन्द्रह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार जिस क्रम से उपवास बढ़ाए जाते हैं उसी क्रम से उतारते जाते हैं यावत् अन्त में उपवास करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया जाता है।

इस तरह यह एक परिपाटी हुई। एक परिपाटी का काल ग्यारह माह और पन्द्रह दिन होते हैं। ऐसी चार परिपाटियां इस तप में होती हैं। इन चारों परिपाटियों में तीन वर्ष और दस मास का समय लगता है। शेष वर्णन पूर्व की तरह समझना चाहिये।

विवेचन—मुक्तावली शब्द का अर्थ है—मोतियों का हार। जिस प्रकार मोतियों का हार बनाते समय उन मोतियों की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप में उपवासों की स्थापना की जाए उस तप को मुक्तावली तप कहते हैं। स्पष्टता हेतु (अगले पृष्ठ पर) देखिए यंत्र।



मुक्तावली तप
का
स्थापना-यन्त्र

दशम अध्ययन

महासेनकृष्णा

महासेनकृष्णा का आयंबिल-वर्धमान तप

१४—एवं-महासेणकण्हा वि, नवरं-आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

आयंबिलं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। बे आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। पंच आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। छ आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ।

एक्कुत्तरियाए वड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंति चउत्थंतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं वीसहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थं जाव भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव[2] तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोहेमाणी चिट्ठइ।

तए णं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंता जहा खंदयस्स, जाव[4] अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ। जाव[5] संलेहणा कालं अणवकंखमाणी विहरइ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[6] तमट्ठं आराहेइ, आराहित्ता चरिमउस्सास-निस्सासेहिं सिद्धा।

संगहणी-गाहा

अट्ठ य वासा आई, एक्कोत्तरियाए जाव सत्तरस।
एसो खलु परियाओ, सेणियभज्जाण नायव्वो ॥१॥

इसी प्रकार महासेनकृष्णा का वृत्तान्त भी समझना। विशेष यह कि इन्होंने वर्द्धमान-आयंबिल तप अंगीकार किया जो इस प्रकार है—

---

१. वर्ग ८, सूत्र २.
२. वर्ग ५, सूत्र ६.
३-४-५. वर्ग ८, सूत्र ४.
६. वर्ग ५, सूत्र ६.

एक आयंबिल किया, करके उपवास किया, करके दो आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके तीन आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके चार आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके पाँच आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके छह आयंबिल किये, करके उपवास किया।

ऐसे एक एक की वृद्धि से आयंबिल बढ़ाए। बीच-बीच में उपवास किया, इस प्रकार सौ आयंबिल तक करके उपवास किया।

इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने इस 'वर्द्धमान-आयंबिल' तप की आराधना चौदह वर्ष, तीन माह और बीस अहोरात्र की अवधि में सूत्रानुसार विधिपूर्वक पूर्ण की। आराधना पूर्ण करके आर्या महासेनकृष्णा जहाँ अपनी गुरुणी आर्या चन्दनबाला थीं, वहाँ आई और चंदनबाला को वंदना-नमस्कार करके, उनकी आज्ञा प्राप्त करके, बहुत से उपवास आदि से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस महान् तपतेज से महासेनकृष्णा आर्या शरीर से दुर्बल हो जाने पर भी अत्यन्त देदीप्यमान लगने लगी। एकदा महासेनकृष्णा आर्या को स्कंदक के समान धर्म-चिन्तन उत्पन्न हुआ। आर्यचन्दना आर्या से पूछकर यावत् संलेखना की और जीवन-मरण की आकाँक्षा से रहित होकर विचरने लगी।

महासेनकृष्णा आर्या ने आर्यचन्दना आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, पूरे सत्रह वर्ष तक संयमधर्म का पालन करके, एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित करके साठ भक्त अनशन को पूर्णकर यावत् जिस कार्य के लिये संयम लिया था उसकी पूर्ण आराधना करके अन्तिम श्वास-उच्छ्वास से सिद्ध बुद्ध हुई।

गाथार्थ—एवं श्रेणिक राजा की भार्याओं में से पहली काली देवी का दीक्षाकाल आठ वर्ष का, तत्पश्चात् क्रमशः एक-एक वर्ष की वृद्धि करते-करते दसवीं महासेनकृष्णा का दीक्षाकाल सत्तरह वर्ष का जानना चाहिए।

विवेचन—"आयंबिलवड्ढमाण"—आयंबिल-वर्धमान—वह तप है जिसमें आयंबिल क्रमशः बढाया जाता है। इस तप की आराधना में १४ वर्ष ३ मास और २० दिन लगते हैं।

पिछले तपों का परिशीलन करने से पता चलता है कि सूत्रकार ने तपों की जो दिन-संख्या लिखी है, उसमें तपस्या के दिन और पारणे के दिन, इस प्रकार सभी दिन संकलित किए जाते हैं। यदि उसी पद्धति का अनुसरण किया जाए तो इसका काल-मान १४ वर्ष ३ माह और २० दिन कैसे हो सकता है? समाधान यही है कि इसमें पारणे का कोई दिन नहीं आता। इसके दो कारण हैं—प्रथम तो सूत्रकार जैसे पीछे पारणे का निर्देश करते चले आ रहे हैं, वैसे यहां पर सूत्रकार ने निर्देश नहीं किया, दूसरा यदि पारणे के सब दिन भी साथ में सम्मिलित कर दिए जाएं तो इस तप की दिनसंख्या १४ वर्ष ३ मास २० दिन न रहकर १४ वर्ष १० दिन हो जाती है। अतः यही समझना ठीक है कि आर्या महासेनकृष्णा ने १४ वर्ष ३ मास और २० दिन तक तप किया, बीच में कोई पारणा नहीं किया। आयंबिल-वर्धमान-तप का स्थापनायंत्र इस प्रकार है—

आयम्बिल-वर्धमान स्थापना-यन्त्र

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

निक्षेप : उपसंहार

१५—एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेण जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते ।

अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयखंधो । अट्ठ वग्गा । अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति । तत्थ पढमबिइयवग्गे दस-दस उद्देसगा । तइयवग्गे तेरस उद्देसगा । चउत्थ-पंचमवग्गे दस-दस उद्देसगा । छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा । सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा । अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा । सेसं जहा नायाधम्म-कहाणं ।

इस प्रकार हे जंबू ! यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा का यह अर्थ कहा है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

अंतगडदशा अंग में एक श्रुतस्कंध है । आठ वर्ग हैं । आठ ही दिनों में इनका वाचन होता है । इसमें प्रथम और द्वितीय वर्ग में दस दस उद्देशक हैं, तीसरे वर्ग में तेरह उद्देशक हैं, चौथे और पांचवें वर्ग में दस-दस उद्देशक हैं, छठे वर्ग में सोलह उद्देशक हैं । सातवें वर्ग में तेरह उद्देशक हैं और आठवें वर्ग में दस उद्देशक हैं । शेष वर्णन ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार जानना चाहिए । □□

१. वर्ग १, सूत्र २.

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

आगम में वर्णित विशेषनाम

१. तीर्थंकर विशेष
२. आगम में वर्णित "जहा" शब्द से गृहीत व्यक्तिविशेष
३. आगमविशेष
४. व्यक्तिविशेष—मुनि आदि
५. देवविशेष
६. क्षत्रियवर्ण के व्यक्ति
७. वैश्यवर्ण के व्यक्ति– गाथापति आदि
८. ब्राह्मणवर्ण के व्यक्ति
९. शूद्रवर्ण के व्यक्ति
१०. मंडलीविशेष
११. पशुविशेष
१२. तपविशेष
१३. स्वप्नविशेष
१४. नगरीविशेष
१५. द्वीपविशेष
१६. यक्षायतन
१७. उद्यान
१८. पर्वत
१९. वृक्षविशेष
२०. पुष्पलतादि
२१. धातुविशेष
२२. भवनविशेष
२३. वन्धनविशेष
२४. वस्तुविशेष
२५. यानविशेष
२६. अलंकारविशेष
२७. पक्वान्नविशेष
२८. ग्रहविशेष
२९. मणिरत्नादि
३०. क्षेत्रविशेष

परिशिष्ट—२

व्यक्ति और भौगोलिक परिचय

१. विशिष्ट व्यक्ति-परिचय

१. इन्द्रभूति गौतम गणधर
२. कृष्ण
३. कोणिक
४. चेलणा
५. जम्बूस्वामी
६. जमालि
७. जितशत्रुराजा
८. धारिणी देवी
९. महावल कुमार
१०. मेघकुमार
११. स्कन्दक मुनि
१२. सुधर्मा स्वामी
१३. श्रेणिक राजा

२. भौगोलिक परिचय

१. काकन्दी
२. गुणशील
३. चम्पा
४. जम्बूद्वीप
५. द्वारका (द्वारवती)
६. दूतिपलाश चैत्य
७. पूर्णभद्र चैत्य
८. भद्दिलपुर
९. भरतक्षेत्र
१०. राजगृह
११. रैवतक
१२. विपुलगिरि पर्वत
१३. सहस्राम्रवन उद्यान
१४. साकेत
१५. श्रावस्ती

परिशिष्ट—१

आगम में वर्णित विशेषनाम

संकेत— वर्ग / सूत्र

१७. भद्रा ७/१
१८. मरुतदेवी ७/१
१९. मरुतादेवी ७/१
२०. महाकाली ८/६
२१. महाकृष्णा ८/१०
२२. महामरुता ७/१
२३. महासेनकृष्णा ८/१४
२४. मूलदत्ता ५/१
२५. मूलश्री ५/१
२६. रामकृष्णा ८/१२
२७. रुक्मिणी ४/१
२८. लक्ष्मणा ५/१
२९. वसुदेव-पत्नी ४/१
३०. वीरकृष्णा ८/११
३१. वैदर्भी ४/१
३२. सत्यभामा ५/१
३३. सुकालिका ८/५
३४. सुकृष्णा ८/६
३५. सुजाता ७/१
३६. सुभद्रा ७/१
३७. सुमनतिका ७/१
३८. सुमरुता ७/१
३९. सुसीमा ५/१
४०. श्रीदेवी ६/१५

राजकुमार

१. अचलकुमार १/१०
२. अतिमुक्तकुमार ६/१५
३. अनंतसेन कुमार ३/१-५
४. अनादृष्टि कुमार ३/४
५. अनियस कुमार ३/१
६. अनिरुद्धकुमार ४/१
७. अनिहतकुमार ३/१
८. अभिचन्द्रकुमार २/१
९. अक्षोभकुमार १/१०
१०. उवयालिकुमार ४/१
११. कांपिल्यकुमार १/१०
१२. कूपककुमार ३/४
१३. गजसुकुमार ३/४
१४. गंभीरकुमार १/१०
१५. गौतमकुमार १/७
१६. जालिकुमार ४/१
१७. दृढनेमि कुमार ४/१
१८. दारुककुमार ३/४
१९. दुर्मुखकुमार ३/४
२०. देवयश कुमार ३/१
२१. धरणकुमार २/१
२२. प्रद्युम्नकुमार ४/१
२३. प्रसेनजित १/१०
२४. पुरुषषेण ४/१
२५. पूर्णकुमार २/१
२६. मयालिकुमार ४/१
२७. वारिषेणकुमार ४/१
२८. विदुकुमार ३/१
२९. विष्णुकुमार १/१०
३०. सत्यनेमिकुमार ४/१
३१. समुद्रकुमार १/१०
३२. सागरकुमार १/१०
३३. सारणकुमार ३/४
३४. स्तिमितकुमार १/१०
३५. सुमुखकुमार ३/४
३६. शत्रुसेनकुमार ३/१
३७. शाम्बकुमार ४/१
३८. हैमवन्तकुमार १/१०

७. वैश्य वर्ण के व्यक्ति-गाथापति आदि—

१. काश्यप गाथापति ६/१४
२. किंकर्मा गाथापति ६/१
३. कैलाशजी ६/१४
४. द्वैपायनऋषि ५/२
५. धृतिधरजी ६/१४
६. नागगाथापति ३/१

१५. द्वीपविशेष—

१. जंबूद्वीप　३/१३, ५/३

१६. यक्षायतन—

१. पूर्णभद्र　१/५
२. सुरप्रिय　१/५

१७. उद्यान—

१. काममहावन　६/१६
२. गुणशीलक　६/२
३. दूतिपलाश　६/१४
४. नन्दनवन उद्यान　१/५
५. सहस्राम्रवन　३/६
६. श्रीवन उद्यान　३/१, ३/६, ६/१५

१८. पर्वत—

१. रैवतक　१/५
२. विपुलाचल　६/१, ६/१४, ६/१८-१६
३. शत्रुंजय　१/६, २/१, ३/३-४, ३/२८
४. हिमवान्　१/७

१६. वृक्षविशेष—

१. अशोकवृक्ष　१/५
२. कोरंट वृक्ष　३/१७
३. कोशाम्र वृक्ष　५/३
४. न्यग्रोधवट वृक्ष　५/३

२०. पुष्पलतादि—

१. कदंवक पुष्प　३/११
२. किंशुक (पलाश) के फूल　३/२०
३. कोरंट पुष्प　३/२२
४. चंपकलता　३/२
५. जासू के फूल　३/१५
६. पारिजात　३/१५
७. रत्नवंधुजीवक वीर वहूटी　३/१५

:. धातुविशेष—

१. सुवर्ण

२२. भवनविशेष—

१. इन्द्रस्थान (जहाँ वच्चे खेलते हैं)　६/१५
२. अन्तःपुर (कन्याओं का महल)　३/१७
३. उपस्थानशाला　३/११
४. पौषधशाला　३/१३
५. वासगृह　३/११

२३. बन्धनविशेष—

१. अवकोटक बन्धन　६/४
२. कंचुक वंधन　३/११

२४. वस्तु विशेष—

१. अनेकविध टोकरियाँ　६/२
२. कोरंट वृक्ष के फूलों का छत्र　३/१७
३. सुवर्ण कन्दूक　३/१६
४. श्वेत चंवर　३/१७
५. लोह मुद्गर (हजार पल भारवाला)　६/२

२५. यानविशेष—

१. वृषभरथ
२. हस्तिस्कंध

२६. अलंकारविशेष—

१. वलयबाहू (हाथ के कंकण)　३/११

२७. पक्वान्न विशेष—

१. सिंहकेशर-मोदक　३/७

२८. ग्रहविशेष—

१. चंद्र　३/१३
२. मंगल　३/१३
३. शनि　३/१३
४. सूर्य　३/२६

२६. मणिरत्नादि—

१. अंकरत्न　३/१३
२. अंजनरत्न　३/१३
३. अंजनपुलक रत्न　३/१३
४. इन्द्रनील　१/५

३०. क्षेत्रविशेष—

परिशिष्ट—२

व्यक्ति और भौगोलिक परिचय

विशिष्ट व्यक्ति परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ में अनेक तीर्थंकरों, गणधरों, राजाओं, राजकुमारों एवं रानियों आदि का उल्लेख हुआ है। आगम और इतिहास की दृष्टि से उनके विशेष परिचय को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। भगवान् अरिष्टनेमि तथा तीर्थंकर महावीर, जो सिद्धि प्राप्त आत्माओं के प्राणाधार हैं, के प्रसिद्ध होने से उनका परिचय नहीं दिया गया है।

(१) इन्द्रभूति गौतम गणधर

इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के प्रधान शिष्य थे। मगध की राजधानी राजगृह के पास गोबरगांव उनकी जन्मभूमि थी[१], जो आज नालन्दा का ही एक विभाग माना जाता है। उनके पिता का नाम वसुभूति और माता का नाम पृथ्वी था। उनका गोत्र गौतम था।[२]

गौतम का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ करते हुए जैनाचार्यों ने लिखा है—बुद्धि के द्वारा जिसका अंधकार नष्ट हो गया है, वह गौतम।[३] यों तो गौतम शब्द कुल और वंश का वाचक रहा है। स्थानांग में सात प्रकार के गौतम बताए गये हैं—गौतम, गार्ग्य, भारद्वाज, आंगिरस, शर्कराभ, भास्कराभ, उदकात्माभ,।[४] वैदिक साहित्य में गौतम नाम कुल से भी सम्बद्ध रहा है और ऋषियों से भी। ऋग्वेद में गौतम के नाम से अनेक सूक्त मिलते हैं, जिनका गौतम राहूगण नामक ऋषि से सम्बन्ध है।[५]

वैसे गौतम नाम से अनेक ऋषि, धर्मसूत्रकार, न्यायशास्त्रकार, धर्मशास्त्रकार प्रभृति व्यक्ति हो चुके हैं। अरुणउद्दालक, आरुणि आदि ऋषियों का भी पैतृक नाम गौतम था।[६] यह कहना कठिन है कि इन्द्रभूति गौतम का गोत्र क्या था, वे किस ऋषि के वंश से सम्बद्ध थे ? किन्तु इतना तो

---

१. मगहा गुब्बरगामे जाया तिन्नेव गोयमसगुत्ता। आवश्यक निर्युक्ति, गा. ६४३.
२. (क) आवश्यक निर्युक्ति, गा. ६४७-४८
 (ख) आद्यानां त्रयाणां गणभृतां पिता वसुभूतिः।
 आद्यानां त्रयाणां गणभृतां माता पृथिवी। —आवश्यक मलय. ३३८.
३. गोभिस्तमो ध्वस्तं यस्य—अभिधानराजेन्द्रकोष भा. ३
४. जे गोयमा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा ते गोयमा, ते गग्गा, ते भारद्दा, ते अंगिरसा, ते सक्कराभा, ते भक्खराभा, ते उदगत्ताभा। स्थानांग ७।५५१.
५. ऋग्वेद १।६२।१३, वैदिक कोश, पृ. १३४.
६. भारतीय प्राचीन-चरित्र कोश, पृ. १९३-१९५

स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व विराट् व प्रभावशाली था।

एक बार इन्द्रभूति सोमिल आर्य के निमन्त्रण पर पावापुरी में होने वाले यज्ञोत्सव में गए थे। उसी अवसर पर भगवान् महावीर भी पावापुरी के बाहर महासेन उद्यान में पधारे हुए थे। भगवान् की महिमा को देखकर इन्द्रभूति उन्हें पराजित करने की भावना से भगवान् के समवसरण में आये, किन्तु वह स्वयं ही पराजित हो गये। अपने मन का संशय दूर हो जाने पर वह अपने पाँच-सौ शिष्यों सहित भगवान् के शिष्य हो गये। गौतम प्रथम गणधर हुए।

आगमों में व आगमेत्तर साहित्य में गौतम के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा मिलता है।

इन्द्रभूति गौतम दीक्षा के समय ५० वर्ष के थे। ३० वर्ष साधु-पर्याय में और १२ वर्ष केवली-पर्याय में रहे। अपने निर्वाण के समय अपना गण सुधर्मा को सौंपकर गुण-शिलक चैत्य में मासिक अनशन करके भगवान् के निर्वाण से १२ वर्ष बाद ९२ वर्ष की अवस्था में निर्वाण को प्राप्त हुए।

शास्त्रों में गणधर गौतम का परिचय इस प्रकार का दिया गया है—वे भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य थे। सात हाथ ऊँचे थे। उनके शरीर का संस्थान और संहनन उत्कृष्ट प्रकार का था। सुवर्ण रेखा के समान गौर थे। उग्र तपस्वी, महा तपस्वी, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचारी और संक्षिप्त विपुल-तेजोलेश्या सम्पन्न थे। शरीर में अनासक्त थे। चौदह पूर्वधर थे। मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्याय—चार ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षरसन्निपाती थे, वे भगवान् महावीर के समीप में उक्कुड आसन से नीचा सिर कर के बैठते थे। ध्यान-मुद्रा में स्थिर रहते हुए संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

(२) कृष्ण

कृष्ण वासुदेव। माता का नाम देवकी, पिता का नाम वासुदेव था। कृष्ण का जन्म अपने मामा कंस की कारा में मथुरा में हुआ था।

जरासन्ध के उपद्रवों के कारण श्रीकृष्ण ने ब्रज-भूमि को छोड़ कर सुदूर सौराष्ट्र में जाकर द्वारका की रचना की।

श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ के परम भक्त थे। भविष्य में वह अमम नाम के तीर्थंकर होंगे। जैन साहित्य में, संस्कृत और प्राकृत उभय भाषाओं में श्रीकृष्ण का जीवन विस्तृत रूप में मिलता है।

द्वारका का विनाश हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथों से हुई। श्रीकृष्ण का जीवन महान् था।

(३) कोणिक

राजा श्रेणिक की रानी चेल्लणा का पुत्र, अंगदेश की राजधानी चम्पा नगरी का अधिपति। भगवान् महावीर का परम भक्त।

कोणिक राजा एक प्रसिद्ध राजा है। जैनागमों में अनेक स्थानों पर उसका अनेक प्रकार से वर्णन आता है।

भगवती, औपपातिक और निरयावलिका में कोणिक का विस्तृत वर्णन है।

राज्य-लोभ के कारण इसने अपने पिता श्रेणिक को कैद में डाल दिया था। श्रेणिक की मृत्यु के बाद कोणिक ने अंगदेश में चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाया था।

अपने सहोदर भाई हल्ल और विहल्ल से हार और सेचनक हाथी को छीनने के लिए इसने नाना चेटक से भयंकर युद्ध भी किया था। कोणिक-चेटकयुद्ध प्रसिद्ध है।

(४) चेल्लणा

राजा श्रेणिक की रानी और वैशाली के अधिपति चेटक राजा की पुत्री।

चेल्लणा सुन्दरी, गुणवती, बुद्धिमती, धर्म-प्राणा नारी थी। श्रेणिक राजा को धार्मिक बनाने में, जैनधर्म के प्रति अनुरक्त करने में चेल्लणा का बहुत बड़ा योग था।

चेल्लणा का राजा श्रेणिक के प्रति कितना प्रगाढ़ अनुराग था, इसका प्रमाण "निरयावलिका" में मिलता है। कोणिक, हल्ल और विहल्ल ये तीनों चेल्लणा के पुत्र थे।

(५) जम्बूस्वामी

आर्य सुधर्मा के शिष्य जम्बू एक परम जिज्ञासु के रूप में आगमों में सर्वत्र दीख पड़ते हैं।

जम्बू राजगृह नगर के समृद्ध, वैभवशाली-इभ्य-सेठ के पुत्र थे। पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। जम्बूकुमार की माता ने जम्बूकुमार के जन्म से पूर्व स्वप्न में जम्बू वृक्ष देखा था, इसी कारण पुत्र का नाम जम्बूकुमार रखा।

सुधर्मा की वाणी से जम्बूकुमार के मन में वैराग्य जागा। परन्तु माता-पिता के अत्यन्त आग्रह से विवाह की स्वीकृति दी। आठ इभ्य-वर सेठों की कन्याओं के साथ जम्बूकुमार का विवाह हो गया।

जिस समय जम्बूकुमार अपनी आठ नवविवाहिता पत्नियों को प्रतिबोध दे रहे थे, उस समय एक चोर चोरी करने को आया। उसका नाम प्रभव था। जम्बूकुमार की वैराग्यपूर्ण वाणी सुनकर वह भी प्रतिबुद्ध हो गया।

५०१ चोर, ८ पत्नियाँ, पत्नियों के १६ माता-पिता, स्वयं के २ माता-पिता और स्वयं जम्बूकुमार इस प्रकार ५२८ ने एक साथ सुधर्मा के पास दीक्षा ग्रहण की।

जम्बूकुमार १६ वर्ष गृहस्थ में रहे, २० वर्ष छद्मस्थ रहे, ४४ वर्ष केवली पर्याय में रहे। ८० वर्ष की आयु भोग कर जम्बू स्वामी अपने पाट पर प्रभव को छोड़कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

(६) जमालि

वैशाली के क्षत्रियकुण्ड का एक राजकुमार था। एक बार भगवान् क्षत्रियकुण्ड ग्राम में पधारे। जमालि भी उपदेश सुनने को आया।

वापिस घर लौट कर जमालि ने अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मांगी। माता ...बरा उठी, वह मूर्च्छित हो गई।

स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व विराट् व प्रभावशाली था।

एक बार इन्द्रभूति सोमिल आर्य के निमन्त्रण पर पावापुरी में होने वाले यज्ञोत्सव में गए थे। उसी अवसर पर भगवान् महावीर भी पावापुरी के बाहर महासेन उद्यान में पधारे हुए थे। भगवान् की महिमा को देखकर इन्द्रभूति उन्हें पराजित करने की भावना से भगवान् के समवसरण में आये, किन्तु वह स्वयं ही पराजित हो गये। अपने मन का संशय दूर हो जाने पर वह अपने पाँच-सौ शिष्यों सहित भगवान् के शिष्य हो गये। गौतम प्रथम गणधर हुए।

आगमों में व आगमेत्तर साहित्य में गौतम के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा मिलता है।

इन्द्रभूति गौतम दीक्षा के समय ५० वर्ष के थे। ३० वर्ष साधु-पर्याय में और १२ वर्ष केवली-पर्याय में रहे। अपने निर्वाण के समय अपना गण सुधर्मा को सौंपकर गुण-शिलक चैत्य में मासिक अनशन करके भगवान् के निर्वाण से १२ वर्ष बाद ६२ वर्ष की अवस्था में निर्वाण को प्राप्त हुए।

शास्त्रों में गणधर गौतम का परिचय इस प्रकार का दिया गया है—वे भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य थे। सात हाथ ऊँचे थे। उनके शरीर का संस्थान और संहनन उत्कृष्ट प्रकार का था। सुवर्ण रेखा के समान गौर थे। उग्र तपस्वी, महा तपस्वी, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचारी और संक्षिप्त विपुल-तेजोलेश्या सम्पन्न थे। शरीर में अनासक्त थे। चौदह पूर्वधर थे। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्याय—चार ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षरसन्निपाती थे, वे भगवान् महावीर के समीप में उक्कुड आसन से नीचा सिर कर के बैठते थे। ध्यान-मुद्रा में स्थिर रहते हुए संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

(२) कृष्ण

कृष्ण वासुदेव। माता का नाम देवकी, पिता का नाम वासुदेव था। कृष्ण का जन्म अपने मामा कंस की कारा में मथुरा में हुआ था।

जरासन्ध के उपद्रवों के कारण श्रीकृष्ण ने ब्रज-भूमि को छोड़ कर सुदूर सौराष्ट्र में जाकर द्वारका की रचना की।

श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ के परम भक्त थे। भविष्य में वह अमम नाम के तीर्थंकर होंगे। जैन साहित्य में, संस्कृत और प्राकृत उभय भाषाओं में श्रीकृष्ण का जीवन विस्तृत रूप में मिलता है।

द्वारका का विनाश हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथों से हुई। श्रीकृष्ण का जीवन महान् था।

(३) कोणिक

राजा श्रेणिक की रानी चेल्लणा का पुत्र, अंगदेश की राजधानी चम्पा नगरी का अधिपति। भगवान् महावीर का परम भक्त।

कोणिक राजा एक प्रसिद्ध राजा है। जैनागमों में अनेक स्थानों पर उसका अनेक प्रकार से वर्णन आता है।

भगवती, औपपातिक और निरयावलिका में कोणिक का विस्तृत वर्णन है।

राज्य-लोभ के कारण इसने अपने पिता श्रेणिक को कैद में डाल दिया था। श्रेणिक की मृत्यु के बाद कोणिक ने अंगदेश में चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाया था।

अपने सहोदर भाई हल्ल और विहल्ल से हार और सेचनक हाथी को छीनने के लिए इसने नाना चेटक से भयंकर युद्ध भी किया था। कोणिक-चेटकयुद्ध प्रसिद्ध है।

(४) चेल्लणा

राजा श्रेणिक की रानी और वैशाली के अधिपति चेटक राजा की पुत्री।

चेल्लणा सुन्दरी, गुणवती, बुद्धिमती, धर्म-प्राणा नारी थी। श्रेणिक राजा को धार्मिक बनाने में, जैनधर्म के प्रति अनुरक्त करने में चेल्लणा का बहुत बड़ा योग था।

चेल्लणा का राजा श्रेणिक के प्रति कितना प्रगाढ़ अनुराग था, इसका प्रमाण "निरयावलिका" में मिलता है। कोणिक, हल्ल और विहल्ल ये तीनों चेल्लणा के पुत्र थे।

(५) जम्बूस्वामी

आर्य सुधर्मा के शिष्य जम्बू एक परम जिज्ञासु के रूप में आगमों में सर्वत्र दीख पड़ते हैं।

जम्बू राजगृह नगर के समृद्ध, वैभवशाली-इभ्य-सेठ के पुत्र थे। पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। जम्बूकुमार की माता ने जम्बूकुमार के जन्म से पूर्व स्वप्न में जम्बू वृक्ष देखा था, इसी कारण पुत्र का नाम जम्बूकुमार रखा।

सुधर्मा की वाणी से जम्बूकुमार के मन में वैराग्य जागा। परन्तु माता-पिता के अत्यन्त आग्रह से विवाह की स्वीकृति दी। आठ इभ्य-वर सेठों की कन्याओं के साथ जम्बूकुमार का विवाह हो गया।

जिस समय जम्बूकुमार अपनी आठ नवविवाहिता पत्नियों को प्रतिबोध दे रहे थे, उस समय एक चोर चोरी करने को आया। उसका नाम प्रभव था। जम्बूकुमार की वैराग्यपूर्ण वाणी सुनकर वह भी प्रतिबुद्ध हो गया।

५०१ चोर, ८ पत्नियाँ, पत्नियों के १६ माता-पिता, स्वयं के २ माता-पिता और स्वयं जम्बूकुमार इस प्रकार ५२८ ने एक साथ सुधर्मा के पास दीक्षा ग्रहण की।

जम्बूकुमार १६ वर्ष गृहस्थ में रहे, २० वर्ष छद्मस्थ रहे, ४४ वर्ष केवली पर्याय में रहे। ८० वर्ष की आयु भोग कर जम्बू स्वामी अपने पाट पर प्रभव को छोड़कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

(६) जमालि

वैशाली के क्षत्रियकुण्ड का एक राजकुमार था। एक बार भगवान् क्षत्रियकुण्ड ग्राम में पधारे। जमालि भी उपदेश सुनने को आया।

वापिस घर लौट कर जमालि ने अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मांगी। माता घबरा उठी, वह मूर्च्छित हो गई।

जमालि के माता-पिता उसको उसके संकल्प से हटा नहीं सके। अपनी आठ पत्नियों का त्याग करके उसने पाँच-सौ क्षत्रिय कुमारों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली।

जमालि ने भगवान् के सिद्धान्त-विरुद्ध प्ररूपणा की थी।

(७) जितशत्रु राजा

शत्रु को जीतने वाला। जिस प्रकार बौद्ध जातकों में प्रायः ब्रह्मदत्त राजा का नाम आता है, उसी प्रकार जैन-ग्रन्थों में प्रायः जितशत्रु राजा का नाम आता है। जितशत्रु के साथ प्रायः धारिणी का भी नाम आता है। किसी भी कथा के प्रारम्भ में किसी न किसी राजा का नाम बतलाना, कथाकारों की पुरातन पद्धति रही है।

इस नाम का भले ही कोई राजा न भी हो, तथापि कथाकार अपनी कथा के प्रारम्भ में इस नाम का उपयोग करता है। वैसे जैन-साहित्य के कथा-ग्रन्थों ने जितशत्रु राजा का उल्लेख बहुत आता है। निम्नलिखित नगरों के राजा का नाम जितशत्रु बताया गया है—

नगर	राजा
१. वाणिज्य ग्राम	जितशत्रु
२. चम्पा नगरी	"
३. उज्जयनी	"
४. सर्वतोभद्र नगर	"
५. मिथिला नगरी	"
६. पांचाल देश	"
७. आमलकल्पा नगरी	"
८. सावत्थी नगरी	"
९. वाणारसी नगरी	"
१०. आलभिया नगरी	"
११. पोलासपुर	"

(८) धारिणी देवी

श्रेणिक राजा की पटरानी थी। धारिणी का उल्लेख आगमों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

संस्कृत साहित्य के नाटकों में प्रायः राजा की सबसे बड़ी रानी के नाम के आगे 'देवी' विशेषण लगाया जाता है, जिसका अर्थ होता है रानियों में सबसे बड़ी अभिषिक्त रानी, अर्थात्—पटरानी।

राजा श्रेणिक के अनेक रानियां थीं, उनमें धारिणी मुख्य थी। इसीलिए धारिणी के आगे 'देवी' विशेषण लगाया गया है। देवी का अर्थ है—पूज्या।

मेघकुमार इसी धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

(९) महाबलकुमार

बल राजा का पुत्र। सुदर्शन सेठ का जीव महाबलकुमार। हस्तिनापुर नामक नगर था। वहाँ का राजा बल और रानी प्रभावती थी। एक बार रात में अर्धनिद्रा में रानी ने देखा—

"एक सिंह आकाश से उतर कर मुख में प्रवेश कर रहा है।" सिंह का स्वप्न देखकर रानी जाग उठी, और राजा बल के शयन-कक्ष में जाकर स्वप्न सुनाया। राजा ने मधुर स्वर में कहा—

"स्वप्न बहुत अच्छा है। तेजस्वी पुत्र की माता बनोगी।"

प्रात: राजसभा में राजा ने स्वप्न-पाठकों से भी स्वप्न का फल पूछा। स्वप्नपाठकों ने कहा— "राजन्! स्वप्नशास्त्र में ४२ सामान्य और ३० महास्वप्न हैं, इस प्रकार कुल ७२ स्वप्न कहे हैं।

तीर्थंकरमाता और चक्रवर्तीमाता ३० महास्वप्नों में से इन १४ स्पप्नों को देखती हैं :—

१. गज
२. वृषभ
३. सिंह
४. लक्ष्मी
५. पुष्पमाला
६. चन्द्र
७. सूर्य
८. ध्वजा
९. कुम्भ
१०. पद्मसरोवर
११. समुद्र
१२. विमान
१३. रत्नराशि
१४. निर्धूम अग्नि

राजन्! प्रभावती देवी ने यह महास्वप्न देखा है। अत: इसका फल अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा।

कालान्तर में पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम महाबलकुमार रखा गया। कलाचार्य के पास ७२ कलाओं का अभ्यास करके महाबल कुशल हो गया।

आठ राजकन्याओं के साथ महाबलकुमार का विवाह किया गया। महाबलकुमार भौतिक सुखों में लीन हो गया।

एक बार तीर्थंकर विमलनाथ के प्रशिष्य धर्मघोष मुनि हस्तिनापुर पधारे। उपदेश सुनकर महाबल को वैराग्य हो गया। धर्मघोष मुनि के पास दीक्षा लेकर वह श्रमण बन गया, भिक्षु बन गया।

महाबल मुनि ने १४ पूर्व का अध्ययन किया। अनेक प्रकार का तप किया। १२ वर्ष का श्रमण-पर्याय पालकर, काल के समय काल करके ब्रह्मलोक कल्प में देव बना।

(१०) मेघकुमार

मगध सम्राट श्रेणिक और धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

एक बार भगवान् महावीर राजगृह के गुणशीलक उद्यान में पधारे। मेघकुमार ने भी उपदेश सुना। माता-पिता से अनुमति लेकर भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

जिस दिन दीक्षा ग्रहण की, उसी रात को मुनियों के यातायात से, पैरों की रज और ठोकर लगने से मेघ मुनि व्याकुल हो गया, अशान्त बन गया।

भगवान् ने पूर्वभवों का स्मरण करते हुए संयम में धृति रखने का उपदेश दिया, जिससे मेघ मुनि संयम में स्थिर हो गया।

एक मास की संलेखना की। सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। महाविदेहवास से सिद्ध होगा।

(११) स्कन्दक मुनि

स्कन्दक संन्यासी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले गर्दभालि परिव्राजक का शिष्य था और गौतम स्वामी का पूर्व मित्र था। भगवान् महावीर के शिष्य पिङ्गलक निर्ग्रन्थ के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका; फलतः श्रावस्ती के लोगों से जब सुना कि भगवान् महावीर कृतंगला नगर के बाहर छत्र-पलाश उद्यान में पधारे हैं, तो स्कन्दक भी भगवान् के पास जा पहुंचा। अपना समाधान मिलने पर वह वहीं पर भगवान् का शिष्य हो गया।

स्कन्दक मुनि ने स्थविरों के पास रहकर ११ अंगों का अध्ययन किया।

भिक्षु की १२ प्रतिमाओं की क्रम से साधना की, आराधना की।

गुणरत्नसंवत्सर तप किया। शरीर दुर्बल, क्षीण और अशक्त हो गया। अन्त में राजगृह के समीप विपुल-गिरि पर जाकर एक मास की संलेखना की। काल करके १२ वें देवलोक में गया। वहाँ से महाविदेहवास से सिद्ध होगा।

स्कन्दक मुनि की दीक्षा-पर्याय १२ वर्ष की थी।

(१२) सुधर्मा स्वामी

ये कोल्लाग संनिवेश के निवासी अग्निवैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता धम्मिल थे और माता भद्दिला थीं। पांच सौ छात्र इनके पास अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था में शिष्यों के साथ प्रव्रज्या ली। बयालीस वर्ष पर्यन्त छद्मावस्था में रहे। महावीर के निर्वाण के बाद बारह वर्ष व्यतीत होने पर केवली हुए और आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे।

श्रमण भगवान के सर्व गणधरों में सुधर्मा दीर्घजीवी थे, अतः अन्यान्य गणधरों ने अपने-अपने निर्वाण के समय अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित कर दिये थे।[1]

महावीर-निर्वाण के १२ वर्ष बाद सुधर्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और बीस वर्ष के पश्चात् सौ वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन-पूर्वक राजगृह के गुणशीलचैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।[2]

(१३) श्रेणिक राजा

मगध देश का सम्राट् था। अनाथी मुनि से प्रतिबोधित होकर भगवान् महावीर का परम भक्त हो गया था। ऐसी एक जन-श्रुति है।

१. (क) जीवंते चेव भट्टारए णवहिं जणेहिं अज्ज सुधम्मस्स गणो णिक्खित्तो दीहाउग्गेत्ति णातुं।
—कल्पसूत्र चूर्णि २०१.

(ख) परिनिव्वुया गणहरा जीवंते नायए नव जणा उ, इंदभूई सुहम्मो अ, रायगिहे निव्वुए वीरे।
—आवश्यक निर्युक्ति गा. ६५८.

२. आवश्यक निर्युक्ति, ६५५.

राजा श्रेणिक का वर्णन जैन ग्रन्थों तथा बौद्ध ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इतिहासकार कहते हैं, कि श्रेणिक राजा हैहय कुल और शिशुनाग वंश का था।

बौद्ध ग्रन्थों में 'सेनिय' और 'बिंबिसार' ये दो नाम मिलते हैं। जैन ग्रन्थों में 'सेणिय, भिंभिसार और भंभासार'—ये नाम उपलब्ध हैं।

भिंभसार और भंभासार नाम कैसे पड़ा? इस सम्बन्ध में श्रेणिक के जीवन का एक सुन्दर प्रसंग है—

श्रेणिक के पिता राजा प्रसेनजित कुशाग्रपुर में राज्य करते थे।

एक दिन की बात है, राजप्रासाद में सहसा आग लग गई। हरेक राजकुमार अपनी-अपनी प्रिय वस्तु को लेकर बाहर भागा। कोई गज लेकर, तो कोई अश्व लेकर, कोई रत्न-मणि लेकर। परन्तु श्रेणिक मात्र एक "भंभा"[१] लेकर ही बाहर निकला था।

श्रेणिक को देखकर दूसरे भाई हंस रहे थे, पर पिता प्रसनेजित प्रसन्न थे; क्योंकि श्रेणिक ने अन्य सब कुछ छोड़कर एकमात्र राज्य-चिह्न की रक्षा की थी।

इस पर राजा प्रसेनजित ने उसका नाम भिंभिसार रखा। भिंभिसार ही संभवत: आगे चलकर उच्चारण-भेद से बिंबिसार बन गया।

भौगोलिक परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक देशों, नगरों, पर्वतों व नदियों का उल्लेख हुआ है। भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर के युग में जिन देशों व नगरों के जो नाम थे आज उनके नामों में अत्यधिक परिवर्तन हो चुका है। उस समय वे समृद्ध थे तो आज वे खण्डहर मात्र रह गये हैं, और कितने ही पूर्ण रूप से नष्ट भी हो चुके हैं। कितने ही नगरों के सम्बन्ध में पुरातत्त्ववेत्ताओं ने काफी खोज की है। हम यहां पर प्रमुख-प्रमुख स्थलों का संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं।

(१) काकंदी

भगवान् महावीर के समय यह उत्तर भारत की बहुत ही प्रसिद्ध नगरी थी। उस समय वहाँ का अधिपति जितशत्रु था। नगर के बाहर सहस्राम्रवन था, भगवान् जब कभी वहाँ पर पधारते तब वहाँ पर विराजते थे। भद्रा सार्थवाही के पुत्र धन्य, सुनक्षत्र तथा क्षेमक और धृतिधर आदि अनेक साधकों ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

पण्डित मुनिश्री कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार वर्तमान में लछुआड से पूर्व में काकन्दी तीर्थ है, वह प्राचीन काकन्दी का स्थान नहीं है। काकन्दी उत्तर भारत में थी। नूनखार स्टेशन से दो मील और गोरखपुर से दक्षिण-पूर्व तीस मील पर दिगम्बर जैन जिस स्थल को किष्किंधा अथवा खुखुंदोजी नामक तीर्थ मानते हैं वही प्राचीन काकन्दी होनी चाहिए।

---

१. भेरी, संग्राम-विजय-सूचक वाद्य-विशेष।

(२) गुणशील

राजगृह के बाहर गुणशील नामक एक प्रसिद्ध बगीचा था। भगवान महावीर के शताधिक बार यहाँ समवसरण लगे थे। शताधिक व्यक्तियों ने यहाँ पर श्रमणधर्म व चारित्रधर्म ग्रहण किया था। भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधरों ने यहीं पर अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया था वर्तमान का गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, वही महावीर के समय का गुणशील है।

(३) चम्पा

चम्पा अंग देश की राजधानी थी। कनिंघम ने लिखा है—भागलपुर से ठीक २४ मील पर पत्थरघाट है। यहीं इसके आस-पास चम्पा की उपस्थिति होनी चाहिए। इसके पास ही पश्चिम की ओर एक बड़ा गांव है, जिसे चम्पानगर कहते हैं और एक छोटा-सा गांव है, जिसे चम्पापुर कहते हैं। संभव है, ये दोनों प्राचीन राजधानी चम्पा की सही स्थिति के द्योतक हों।[1]

फाहियान ने चम्पा को पाटिलपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित माना है।[2]

महाभारत की दृष्टि से चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' था। महाराजा चम्प ने उसका नाम चम्पा रखा।[3]

स्थानांग[4] में जिन दस राजधानियों का उल्लेख हुआ है और दीघनिकाय में जिन छह महानगरियों का वर्णन किया गया है, उनमें एक चम्पा भी है। औपपातिक सूत्र में इसका विस्तार से निरूपण है।[5] दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यंभव ने यहीं पर की थी।[6]

सम्राट् श्रेणिक के निधन के पश्चात् कूणिक (अजातशत्रु) को राजगृह में रहना अच्छा न लगा और एक स्थान पर चम्पा के सुन्दर उद्यान को देखकर चम्पानगर बसाया।[7] गणि कल्याण-विजयजी के अभिमतानुसार चम्पा पटना से पूर्व (कुछ दक्षिण में) लगभग सौ कोस पर थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते हैं। यह स्थान भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम में है।[8]

चम्पा के उत्तर-पूर्व में पूर्णभद्र नाम का रमणीय चैत्य था, जहाँ पर भगवान महावीर ठहरते थे।

---

१. दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ. ५४६-५४७
२. ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान, पृ. ६५.
३. महाभारत १२/५/१३४
४. स्थानांग १०/७१७
५. औपपातिक, चम्पा वर्णन
६. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. ४६४
७. विविध तीर्थकल्प, पृ. ६५
८. श्रमण भगवान महावीर, पृ. ३६९

चम्पा उस युग में व्यापार का प्रमुख केन्द्र था, जहां पर माल लेने के लिए दूर-दूर से व्यापारी आते थे और चम्पा के व्यापारी भी माल लेकर मिथिला, अहिच्छत्रा और पिहुंड (चिकाकोट और कलिंगपट्टम का एक प्रदेश) आदि में व्यापारार्थ जाते थे।[1] चम्पा और मिथिला में साठ योजन का अन्तर था।

(४) जम्बूद्वीप

जैनागमों की दृष्टि से इस विशाल भूमण्डल के मध्य में जम्बूद्वीप है।[2] इसका विस्तार एक लक्ष योजन है और यह सबसे लघु है। इसके चारों ओर लवणसमुद्र है। लवणसमुद्र के चारों ओर धातकीखण्ड द्वीप है। इसी प्रकार आगे भी एक द्वीप और एक समुद्र है और उन सब द्वीपों और समुद्रों की संख्या असंख्यात है।[3] अन्तिम समुद्र का नाम स्वयंभूरमण समुद्र है।[4] जम्बूद्वीप से दूना विस्तार वाला लवणसमुद्र है और लवणसमुद्र से दुगुना विस्तृत धातकीखण्ड है। इस प्रकार द्वीप और समुद्र एक दूसरे से दूने होते चले गये हैं।[5]

इसमें शाश्वत जम्बूवृक्ष होने के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा।[6] जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु नामक पर्वत है[7] जो एक लाख योजन ऊंचा है।[8]

जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन है।[9] इसकी परिधि ३,१६,२२७ योजन, ३ कोस १२८ धनुष, १३॥ अंगुल, ५ यव और १ यूका है।[10] इसका क्षेत्रफल ७,९०,५६,९४,१५० योजन १॥। कोस, १५ धनुष और २॥ हाथ है।[11]

श्रीमद्भागवत में सात द्वीपों का वर्णन है। उसमें जम्बूद्वीप प्रथम है।[12]

---

१. (क) ज्ञाताधर्मकथा ८, पृ ९७, ९, पृ. १२१-१५ पृ. १५७
   (ख) उत्तराध्ययन २१/२
२. लोकप्रकाश सर्ग १५, श्लोक ६
३. वही. श्लोक १८
४. वही. श्लोक २६
५. वही. श्लोक २८
६. वही. १५/३१-३२
७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार ४, सू. १०३, पत्र ३५९-३६०
८. वही. ४/११३. पत्र ३५९/२
९. (क) समवायांग सूत्र १२४, पत्र २०७/२, प्र. जैन धर्म प्रचारक सभा, भावनगर
   (ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार १/१०/६७
   (ग) हरिवंशपुराण ५/४-५.
१०. (क) लोकप्रकाश १५/३४-३४.
   (ख) हरिवंशपुराण ५/४-५.
११. (क) लोकप्रकाश १५/३६-३७
   (ख) हरिवंशपुराण ५/६-७
१२. श्रीमद्भागवत प्र. खण्ड, स्कंध ४, अ. १, पृ. ५४६

बौद्ध दृष्टि से चार महाद्वीप हैं, उन चारों के केन्द्र में सुमेरु है। सुमेरु के पूर्व में पुव्व विदेह[1] पश्चिम में अपरगोयान अथवा अपर गोदान[2] उत्तर में उत्तर कुरु[3] और दक्षिण में जम्बूद्वीप है।[4]

बौद्ध परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप दस हजार योजन बड़ा है।[5] इसमें चार योजन जल से भरा होने के कारण समुद्र कहा जाता है और तीन हजार योजन में मानव रहते हैं। शेष तीन हजार योजन में चौरासी हजार कूटों (चोटियों) से सुशोभित चारों ओर बहती ५०० नदियों से ऊँचा हिमवान पर्वत है।[6]

उल्लिखित वर्णन से स्पष्ट है कि जिसे हमें भारत के नाम से जानते हैं वही बौद्धों में जम्बूद्वीप के नाम से विख्यात है।[7]

(५) द्वारका (द्वारवती) :—

भारत की प्राचीन प्रसिद्ध नगरियों में द्वारका का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। श्रमण और वैदिक दोनों ही संस्कृतियों के वाङ्मय में द्वारका की विस्तार से चर्चा है।

(१) ज्ञाताधर्मकथा व अन्तगडदसाओ के अनुसार द्वारका सौराष्ट्र में थी।[8] वह पूर्व-पश्चिम में बारह योजन लम्बी, और उत्तर-दक्षिण में नव योजन विस्तीर्ण थी। वह स्वयं कुबेर द्वारा निर्मित सोने के प्राकार वाली थी, जिस पर पांच वर्णों के नाना मणियों से सुसज्जित कपिशीर्षक- कंगूरे थे। वह बड़ी सुरम्य, अलकापुरी-तुल्य और प्रत्यक्ष देवलोक-सदृश थी। वह प्रासादिक, दर्शनीय अभिरूप तथा प्रतिरूप थी। उसके उत्तर-पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था। उसके पास समस्त ऋतुओं में फल-फूलों से लदा रहनेवाला नन्दनवन नामक सुरम्य उद्यान था। उस उद्यान में सुरप्रिय यक्षायतन था। उस द्वारका में श्रीकृष्ण वासुदेव अपने सम्पूर्ण राजपरिवार के साथ रहते थे।[9]

---

१. डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, खण्ड २, पृ. २३६
२. वही. खण्ड १, पृ. ११७
३. वही. खण्ड १, पृ. ३५५
४. वही. खण्ड १ पृ. ९४१
५. वही. खण्ड १, पृ. ९४१
६. वही. खण्ड २, पृ. १३२५-१३२६
७. (क) इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स आव बुद्धिज्म ऐंड जैनिज्म पृ १, विमलचरण लॉ लिखित,
   (ख) जातक प्रथम खण्ड, पृ २८२, ईशानचन्द्र घोष
   (ग) भारतीय इतिहास की रूपरेखा भा. १, पृ. ४, लेखक-जयचन्द्र विद्यालंकार
   (घ) पाली इंगलिश डिक्शनरी पृ. ११२, टी. डब्ल्यू रीस डेविस तथा विलियम स्टेड
   (ङ) सुत्तनिपात की भूमिका-धर्मरक्षित पृ. १
   (च) जातक-मानचित्र—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
८. (क) ज्ञाताधर्म कथा १।१६, सूत्र ११३.
   (ख) अन्तगडदशाओ
९. ज्ञाताधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

बृहत्कल्प के अनुसार द्वारका के चारों ओर पत्थर का प्राकार था।[1] वण्हिदसाओ में भी यही द्वारका का वर्णन मिलता है।[2]

आचार्य हेमचन्द्र ने द्वारका का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह बारह योजन आयाम वाली और नव योजन विस्तृत थी। वह रत्नमयी थी। उसके आसपास १८ हाथ ऊंचा, ६ हाथ भूमिगत और १२ हाथ चौड़ा सब ओर से खाई से घिरा हुआ किला था। चारों दिशाओं में अनेक प्रासाद और किले थे। राम-कृष्ण के प्रासाद के पास प्रभासा नामक सभा थी। उसके समीप पूर्व में रैवतक गिरि, दक्षिण में माल्यवान शैल, पश्चिम में सौमनस पर्वत और उत्तर में गंधमादन गिरि थे।[3]

आचार्य हेमचन्द्र[4], आचार्य शीलाङ्क[5], देवप्रभसूरि[6], आचार्य जिनसेन[7], आचार्य गुणभद्र[8] आदि श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रन्थकारों ने तथा वैदिक हरिवंशपुराण[9], विष्णुपुराण[10] और श्रीमद्-भागवत[11] आदि में द्वारका को समुद्र के किनारे माना है और कितने ही ग्रन्थकारों ने समुद्र से बारह

---

१. बृहत्कल्प भाग २, पृ. २५१

२. वण्हिदसाओ

३. शक्राज्ञया वैश्रमणश्चक्रे रत्नमयीं पुरीम्।
द्वादशयोजनायामं नवयोजनविस्तृताम् ॥३९९॥
तुंगमष्टादशहस्तान्नवहस्तांश्च भूगतम्।
विस्तीर्णं द्वादशहस्तांश्चक्रे वप्रं सुखातिकम् ॥४००॥
—त्रिषष्टि. पर्व ८, सर्ग ५, पृ. ९२

४. त्रिषष्टि, पर्व ८, सर्ग ५, पृ. ९२

५. चउप्पन्नमहापुरिसचरियं

६. पाण्डवचरित्र

७. सद्यो द्वारवतीं चक्रे कुबेरः परमां पुरीम्।
नगरी द्वादशायामा, नवयोजनविस्तृतिः।
वज्रप्राकार-वलया, समुद्र-परिखावृता ॥
—हरिवंशपुराण ४१।१८-१९.

८. अश्वाकृतिधरं देवं समारुह्य पयोनिधेः।
गच्छतस्तेऽभवेन्मध्ये, पुरं द्वादशयोजनम् ॥२०॥
इत्युक्तो नैगमाख्येन स्वरेण मधुसूदनः।
चक्रे तथैव निश्चित्य सति पुण्ये न कः सखा ॥२१॥
द्वेधा भेदमयात् वार्धिर्भयादिव हरे स्यात् ॥
—उत्तरपुराण ७१।२०-२३, पृ. ३७६

९. हरिवंशपुराण २।५४

१०. विष्णुपुराण ५।२३।१३.

११. इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादश-योजनम्।
अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥
—श्रीमद्भागवत १०, अ ५०।५०

(क) ता जह पुव्वि दिन्नं ठाणं नयरीए आइमचउण्हं।
तुमए तिविट्ठपमुहाणं वासुदेवाणं सिंधुतडे ॥
—भव-भावना २५३७

योजन धरती लेकर द्वारका का निर्माण किया बताया है।

महाभारत में श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के बारे में युधिष्ठिर से कहा—मथुरा को छोड़कर हम कुशस्थली नामक नगरी में आये जो रैवतक पर्वत से उपशोभित थी। वहां दुर्गम दुर्ग का निर्माण किया, अधिक द्वारों वाली होने के कारण द्वारवती अथवा द्वारका कहलाई।[1]

महाभारत जन-पर्व में नीलकंठ ने कुशावर्त का अर्थ द्वारका किया है।[2]

'व्रज का सांस्कृतिक इतिहास' में प्रभुदयाल मित्तल ने लिखा है[3] शूरसेन जनपद से यादवों के आ जाने के कारण द्वारका के उस छोटे से राज्य की बड़ी उन्नति हुई थी। वहां पर दुर्भेद्य दुर्ग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और उसे अंधक-वृष्णि संघ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप में संगठित किया गया। भारत के समुद्र-तट का वह सुदृढ़ राज्य विदेशी अनार्यों के आक्रमण के लिए देश का एक सजग प्रहरी भी बन गया था। गुजराती भाषा में 'द्वार' का अर्थ बंदरगाह है। इस प्रकार द्वारका या द्वारवती का अर्थ हुआ 'बंदरगाहों की नगरी।' उन बंदरगाहों से यादवों ने सुदूर-समुद्र की यात्रा कर विपुल सम्पत्ति अर्जित की थी। द्वारका में निर्धन, भाग्यहीन, निर्बल तन और मलिन मन का कोई भी व्यक्ति नहीं था।[4]

(१) रायस डेविड्स ने कम्बोज को द्वारका की राजधानी लिखा है।[5]

(२) पेतवत्थु में द्वारका को कम्बोज का एक नगर माना है।[6] डाक्टर मलशेखर ने प्रस्तुत कथन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है संभव है—यह कम्बोज ही 'कंसभोज' हो, जो कि अंधकवृष्णि के दस पुत्रों का देश था।[7]

(२) डा. मोतीचन्द्र कम्बोज को पामीर प्रदेश मानते हैं और द्वारका को बदरवंशा से उत्तर में अवस्थित 'दरवाज' नामक नगर कहते हैं।[8]

---

१. कुशस्थलीं पुरीं रम्यां रैवतेनोपशोभिताम्।
ततो निवेशं तस्यां च कृतवन्तो वयं नृप ! ॥५०॥
तथैव दुर्ग-संस्कारं देवैरपि दुरासदम्।
स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयुः किमु वृष्णि महारथाः ॥५१॥
....मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारवतीपुरीम् ॥६७।
—महाभारतसभापर्व, अ. १४

२, (क) महाभारत जन पर्व, अ. १६० श्लोक ५०
(ख) अतीत का अनावरण, पृ. १६३.

३. द्वितीय खण्ड व्रज का इतिहास, पृ. ४७.

४. हरिवंशपुराण २।५८।६५.

५. Buddhist India, P. 28
Kamboja was the adjoining country in the extreme North-West, with Dvaraka as its Capital.

६. पेतवत्थु भाग २, पृ. ९

७. दि डिक्शनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स, भाग १, पृ. ११२६

८. ज्योग्राफिकल एण्ड इकोनॉमिक स्टडीज इन दी महाभारत, पृष्ठ ३२-४०

(४) घट जातक का अभिमत है कि द्वारका के एक ओर विराट् समुद्र अठखेलियां कर रहा था तो दूसरी ओर गगनचुम्बी पर्वत था ।[1] डा. मलशेखर का भी यही अभिमत रहा है ।[2]

(५) उपाध्याय भरतसिंह के मन्तव्यानुसार द्वारका सौराष्ट्र का एक नगर था । सम्प्रति द्वारका कस्बे से आगे बीस मील की दूरी पर कच्छ की खाड़ी में एक छोटा-सा टापू है । वहां एक दूसरी द्वारका है जो 'बेट द्वारका' कही जाती है । माना जाता है कि यहां पर श्रीकृष्ण परिभ्रमणार्थ आते थे । द्वारका और बेट द्वारका दोनों ही स्थलों में राधा, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि के मन्दिर हैं ।[3]

(६) बॉम्बे गेजेटीअर में कितने ही विद्वानों ने द्वारका की अवस्थिति पंजाब में मानने की संभावना की है ।[4]

(७) डॉ. अनन्तसदाशिव अल्तेकर ने लिखा है—प्राचीन द्वारका समुद्र में डूब गई, अतः द्वारका की अवस्थिति का निर्णय करना संशयास्पद है ।[5]

(६) दूतिपलाश चैत्यः—

दूतिपलाश नामक उद्यान वाणिज्यग्राम के बाहर था । जहाँ पर भगवान महावीर ने आनन्द गाथापति, सुदर्शन श्रेष्ठी आदि को श्रावक धर्म में दीक्षित किया था ।

(७) पूर्णभद्रचैत्यः—

चम्पा का यह प्रसिद्ध उद्यान था । जहां पर भगवान महावीर ने शताधिक व्यक्तियों को श्रमण व श्रावक धर्म में दीक्षित किया था । राजा कूणिक भगवान् को बड़े ठाट-बाट से वन्दन के लिये गया था ।

(८) भद्दिलपुरः—

भद्दिलपुर मलयदेश की राजधानी थी । इसकी परिगणना अतिशय क्षेत्रों में की गई है । मुनि कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार पटना से दक्षिण में लगभग एक सौ मील और गया से नैऋत्य दक्षिण में अट्ठाईस मील की दूरी पर गया जिले में अवस्थित हररिया और दन्तारा गांवों के पास प्राचीन भद्दिलनगरी थी, जो पिछले समय में भद्दिलपुर नाम से जैनों का एक पवित्र तीर्थ रहा है ।[6]

आवश्यक सूत्र के निर्देशानुसार श्रमण भगवान् महावीर ने एक चातुर्मास भद्दिलपुर में किया था ।

डा. जगदीशचन्द्र जैन का मन्तव्य है कि हजारीबाग जिले में भदिया नामक जो गाँव है, वही भद्दिलपुर था । यह स्थान हंटरगंज से छह मील के फासले पर कुलुहा पहाड़ी के पास है ।[7]

१. जातक (चतुर्थ खण्ड) पृ. २८४
२. दि डिक्शनरी ऑफ पाली प्रॉमर नेम्स, भाग १, पृ. ११२५.
३. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ ४८७
४. बॉम्बे गेजेटीअर भाग १ पार्ट १, पृ. ११ का टिप्पण १
५. इण्डियन एन्टिक्वेरी, सन् १९२५, सप्लिमेण्ट पृ. २५.
६. श्रमण भगवान महावीर, पृ ३८०
७. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. ४७७

(९) भरतक्षेत्र:—

जम्बूद्वीप का दक्षिणी छोर का भूखण्ड भरतक्षेत्र के नाम से विश्रुत है। यह अर्धचन्द्राकार है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार इसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में लवण समुद्र हैं।[1] उत्तर दिशा में चूलहिमवंत पर्वत है।[2] उत्तर से दक्षिण तक भरतक्षेत्र की लम्बाई ५२६ योजन ६ कला है और पूर्व से पश्चिम की लम्बाई १४४७१ योजन और कुछ कम ६ कला है।[3] इसका क्षेत्रफल ५३,८०,६८१ योजन, १७ कला और १७ विकला है।[4]

भरतक्षेत्र की सीमा में उत्तर में चूलहिमवंत नामक पर्वतसे पूर्व में गंगा और पश्चिम में सिन्धु नामक नदियां बहती हैं। भरतक्षेत्र के मध्य भाग में ५० योजन विस्तारवाला वैताढ्य पर्वत है।[5] जिसके पूर्व और पश्चिम में लवणसमुद्र है। इस वैताढ्य से भरत-क्षेत्र दो भागों में विभक्त हो गया है[6] जिन्हें उत्तर भरत और दक्षिण भरत कहते हैं। जो गंगा और सिन्धु नदियाँ चूलहिमवंत पर्वत से निकलती हैं वे वैताढ्य पर्वत में से होकर लवणसमुद्र में गिरती हैं। इस प्रकार इन नदियों के कारण, उत्तर भरत खण्ड तीन भागों में और दक्षिण भरत खण्ड भी तीन भागों में विभक्त होता है।[7]

इन छह खण्डों में उत्तरार्द्ध के तीन खण्ड अनार्य कहे जाते हैं। दक्षिण के अगल-बगल के खण्डों में भी अनार्य रहते हैं। जो मध्यखण्ड है उसमें २५।। देश आर्य माने गये हैं।[8] उत्तरार्द्ध भरत उत्तर से दक्षिण तक २३८ योजन ३ कला है और दक्षिणार्द्ध भरत भी २३८ योजन ३ कला है।

जिनसेन के अनुसार भरत क्षेत्र में सुकोशल, अवन्ती, पूण्ड्र, अश्मक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाटक, कौशल, चोल, केरल दास, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय आदि देशों की रचना मानी गई हैं।[9]

बौद्ध साहित्य में अंग, मगध, काशी, कौशल, वज्ज, मल्ल, चेति, वत्स, कुरु, पंचाल मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ती, गंधार और कम्बोज इन सोलह जनपदों के नाम मिलते है।[10]

---

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सटीक, वक्षस्कार १, सूत्र १०, पृ ६५।२
२. वही. १।१०।६५-२
३. लोकप्रकाश, सर्ग १६, श्लोक ३०-३१
४. लोकप्रकाश, सर्ग १६, श्लोक ३३-३४
५. वही. १६।४८
६. वही. १६।३५
७. वही. १६।३६
९. (क) वही. १६, श्लोक ४४
(ख) बृहत्कल्पभाष्य १, ३२६३ वृत्ति, तथा १, ३२७५-३२८९.
८. आदिपुराण १६।१५२-१५६
१०. अंगुत्तरनिकाय; पालिटैक्स्ट सोसायटी संस्करण : जिल्द १, पृ. २१३, जिल्द ४, पृ. २५२

(१०) राजगृहः—

मगध की राजधानी राजगृह थी, जिसे मगधपुर, क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर और कुशाग्रपुर आदि अनेक नामों से पुकारा जाता रहा है।

आवश्यक चूर्णि के अनुसार कुशाग्रपुर में प्रायः आग लग जाती थी। अतः राजा श्रेणिक ने राजगृह बसाया।[1] महाभारत युग में राजगृह में जरासंघ राज्य करता था।[2] रामायण काल में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म राजगृह में हुआ था।[3]

दिगम्बर जैन ग्रन्थों के अनुसार भगवान् महावीर का प्रथम उपदेश और संघ की संस्थापना राजगृह में हुई थी।[4] अन्तिम केवली जम्बू की जन्मस्थली निर्वाणस्थली भी राजगृह रही है।[5] धन्ना और शालिभद्र जैसे धन कुबेर राजगृह के निवासी थे।[6] परम साहसी महान भक्त सेठ सुदर्शन भी राजगृह का रहने वाला था।[7] प्रतिभामूर्ति अभयकुमार आदि अनेक महान् आत्माओं को जन्म देने का श्रेय राजगृह को था।[8]

पांच पहाड़ियों से घिरे होने के कारण उसे गिरिव्रज भी कहते थे। उन पहाड़ियों के नाम जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं में पृथक्-पृथक् रहे हैं।[9] ये पहाड़ियां आज भी राजगृह में हैं। वैभार और विपुल पहाड़ियों का वर्णन जैन ग्रन्थों में विशेष रूप से आया है। वृक्षादि से वे खूब हरी-भरी थीं। वहां अनेक जैन-क्षमणों ने निर्वाण प्राप्त किया था। वैभार पहाड़ी के

---

१. आवश्यक चूर्णि २, पृ. १५८

२. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन्,

३. (क) राजगिहे मुणिसुव्वयदेवा पउमा सुमित्त राएहिं।
—तिलोय पण्णति।

(ख) हरिवंशपुराण, सर्ग ६०

(ग) उत्तरपुराण, पर्व ६७

४. (क) हरिवंशपुराण, सर्ग २, श्लोक ६१-६२

(ख) पद्मपुराण, पर्व २, श्लोक ११३

(ग) महापुराण, पर्व १, श्लोक १९६

५. उत्तरपुराण, पर्व ७६
जम्बूसामी चरियं, पर्व ५-१३.

६ त्रिषष्टि. १०।१०।१३६-१४८

७. अन्तकृत्दशांग

८. त्रिषष्टि.

९. जैन—विपुल, रत्न, उदय, स्वर्ग और वैभार
वैदिक—वैहार, वाराह, वृषभ, ऋषिगिरि, और चैत्यक
बौद्ध—चन्दन, गिज्झकूट, वेभार, इसगिलि और वेपुल्ल।
—सुत्तनिपात की अट्ठकथा २, पृ. ३८२

नीचे ही तपोदा, और महातपोपनीरप्रभ नामक उष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था।[१] वर्तमान में भी वह राजगिर में तपोवन नाम से प्रसिद्ध है।

भगवान् महावीर ने अनेक चातुर्मास वहां व्यतीत किये।[२] दो सौ से भी अधिक बार उनके समवसरण होने के उल्लेख आगम साहित्य में मिलते हैं। वहाँ पर गुणशील[३] मंडिकुच्छ[४] और मोग्गरपाणि[५] आदि उद्यान थे। भगवान् महावीर प्रायः गुणशील (वर्तमान में जिसे गुणावा कहते हैं) उद्यान में ठहरा करते थे।

राजगृह व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहां पर दूर-दूर से व्यापारी आया करते थे। वहां से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा, प्रभृति भारत के प्रसिद्ध नगरों में जाने के मार्ग थे।[६] बौद्ध ग्रन्थों में वहां के सुन्दर धान के खेतों का वर्णन है।

आगम साहित्य में राजगृह को प्रत्यक्ष देवलोकभूत एवं अलकापुरी सदृश कहा है।[७] महाकवि पुष्पदन्त ने लिखा है—सोने, चांदी से निर्मित राजगृही ऐसी प्रतिभासित होती थी कि स्वर्ग से अलकापुरी ही पृथ्वी पर आ गई है।[८] रविषेणाचार्य ने राजगृह को धरती का यौवन कहा है।[९] अन्य अनेक कवियों ने राजगृह के महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

जैनियों का ही नहीं अपितु बौद्धों का भी राजगृह के साथ मधुर संबंध रहा है। विनयपिटक से स्पष्ट है कि बुद्ध गृहत्याग कर राजगृह आए। तब राजा श्रेणिक ने उनको अपने साथ राजगृह में रहने की प्रेरणा दी थी। पर बुद्ध ने वह बात नहीं मानी। बुद्ध अपने मत का प्रचार करने के लिए

---

१. (क) व्याख्याप्रज्ञप्ति, २।५, पृ. १४१
 (ख) बृहत्कल्पभाष्य, वृत्ति २।३४२९
 (ग) वायुपुराण, १।४।५
२. (क) कल्पसूत्र, ४।१२३.
 (ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति, ७।४, ५।९, २।५
 (ग) आवश्यक निर्युक्ति, ४७३।४९२।५१८
३. (क) ज्ञातृधर्मकथा, पृ. ४७
 (ख) दशाश्रुतस्कंध, १०९। पृ. ३६४
 (ग) उपासकदशा, ८, पृ. ५१
४. व्याख्याप्रज्ञप्ति, १५.
५. अन्तकृद्दशांग ६, पृ. ३१
६. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. ४६२
७. पच्चक्खं देवलोगभूया एवं अलकापुरीसंकासा।
८. तहिं पउवरु णामे रायगिहु कणयरयण कोडिहिं घडिउ।
 बलिवंड घरं तहो सुखइहिं सुरणयरु गयणपडिउ॥
 —णायकुमार चरिउ, ६
९. तत्रास्ति सर्वतः कांतं नाम्ना राजगृहं पुरम्।
 कुसुमामोदसुभगं भुवनस्येव यौवनम्। पद्मपुराण ३३।२

कई बार राजगृह आये थे। वे प्रायः गृद्धकूट पर्वत, कलन्दकनिवाप और वेणुवन में ठहरते थे।[1] एक बार बुद्ध जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन में थे तब अभयकुमार ने उनसे हिंसा-अहिंसा के सम्बन्ध में चर्चा की थी।

जब वे वेणुवन में थे तब अभयकुमार ने उनसे विचार-चर्चा की थी।[2] साधु सकलोदायि ने भी बुद्ध से यहां पर वार्तालाप किया।[3] एक बार बुद्ध ने तपोदाराम जहां गर्म पानी के कुंड थे वहाँ पर विहार किया था। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् राजगृह की अवनति होने लगी। जब चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ पर आया था तब राजगृह पूर्व जैसा नहीं था। आज वहाँ के निवासी दरिद्र और अभावग्रस्त हैं। आजकल राजगृह 'राजगिर' के नाम से विश्रुत है। राजगिर विहार प्रान्त में पटना से पूर्व और गया से पूर्वोत्तर में अवस्थित है।

(११) रैवतक :—

पार्जिटर रैवतक की पहचान काठियावाड के पश्चिम भाग में वरदा की पहाड़ी से करते हैं।[4] ज्ञातासूत्र के अनुसार द्वारका के उत्तर-पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था।[5] अन्तकृत्दशा में भी यही वर्णन है।[6] त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र के अनुसार द्वारका के समीप पूर्व में रैवतक गिरि, दक्षिण में माल्यवान शैल, पश्चिम में सौमनस पर्वत और उत्तर में गंधमादन गिरि हैं।[7] महाभारत की दृष्टि से रैवतक कुशस्थली के सन्निकट था।[8] वैदिक हरिवंशपुराण के अनुसार यादव मथुरा छोड़कर सिन्धु में गये और समुद्र किनारे रैवतक पर्वत से न अतिदूर और न अधिक निकट द्वारका बसाई।[9] आगम साहित्य में रैवतक पर्वत का सर्वथा स्वाभाविक वर्णन मिलता है।[10]

भगवान् अरिष्टनेमि अभिनिष्क्रमण के लिए निकले, वे देव और मनुष्यों से परिवृत शिविका-रत्न में आरूढ़ हुए और रैवतक पर्वत पर अवस्थित हुए।[11] राजीमती भी संयम लेकर द्वारका से

---

१. मज्झिमनिकाय, (सारनाथ १९३३)

२. मज्झिमनिकाय, अभयराजकुमार सुत्तन्त, पृ, २३४

३. मज्झिमनिकाय, चलसकलोदायी सुत्तन्त, पृ, ३०५.

४. हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, जिल्द ४, पृ. ७९४-९५

५. ज्ञाताधर्मकथा, १।५, सू. ५८

६. अन्तकृद्दशांग

७. तस्याः पुरो रैवतकोऽपाच्यामसीत्तु माल्यवान्
सौमनसोऽद्रिः प्रतीच्यामुदीच्यां गंधमादनः ॥
—त्रिषष्टि, पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक ४१८

८. कुशस्थलीं पुरीं रम्यां रैवतेनोपशोभिताम्
—महाभारत, सभापर्व, अ. १४, श्लोक ५०

९. हरिवंशपुराण २।५५.

१०. ज्ञाताधर्मकथा १।५, सूत्र ५८

११. देव-मणुस्स-परिवुडो, सीयारयणं तओ समारूढो ।
निक्खमिय बारगाओ, रेवयम्मि ठिओ भगवं ॥
—उत्तराध्ययन २२।२२

रैवतक पर्वत पर जा रही थी। बीच में वह वर्षा से भीग गई और कपड़े सुखाने के लिए वहीं एक गुफा में ठहरी,[१] जिसकी पहचान आज भी राजीमती गुफा से की जाती है।[२] रैवतक पर्वत सौराष्ट्र में आज भी विद्यमान है। संभव है प्राचीन द्वारका इसी की तलहटी में वसी हो।

रैवतक पर्वत का नाम ऊर्जयन्त भी है।[3] रुद्रदाम और स्कंधगुप्त के गिरनार शिला-लेखों में इसका उल्लेख है। वहां पर एक नन्दनवन था, जिसमें सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। यह पर्वत अनेक पक्षियों एवं लताओं से सुशोभित था। यहां पर पानी के झरने भी वहा करते थे[४] और प्रतिवर्ष हजारों लोग संखडि (भोज, जीमनवार) करने के लिए एकत्रित होते थे। यहां भगवान् अरिष्टनेमि ने निर्वाण प्राप्त किया था।[५]

दिगम्बर परम्परा के अनुसार रैवतक पर्वत की चन्द्रगुफा में आचार्य धरसेन ने तप किया था, और यहीं पर भूतवलि और पुष्पदन्त आचार्यों ने अवशिष्ट श्रुतज्ञान को लिपिवद्ध करने का आदेश दिया था।[६]

महाभारत में पाण्डवों और यादवों का रैवतक पर युद्ध होने का वर्णन आया है।[७]

जैन ग्रन्थों में रैवतक, उज्जयंत, उज्ज्वल, गिरिणाल और गिरनार आदि नाम इस पर्वत के आये हैं। महाभारत में भी इस पर्वत का दूसरा नाम उज्जयंत आया है।[८]

(१२) विपुल-गिरि पर्वत :—

राजगृह नगर के समीप का एक पर्वत। आगमों में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख मिलता है। स्थविरों की देख-रेख में घोर तपस्वी यहां आकर संलेखना करते थे।

जैन ग्रन्थों में इन पांच पर्वतों का उल्लेख मिलता है—

१. वैभारगिरि
२. विपुल गिरि

---

१. गिरिं रेवययं जन्ती, वासेणुल्ला उ अन्तरा।
   वासन्ते अन्धयारंमि अन्तो लयणस्स सा ठिया॥
२. विविध तीर्थकल्प, ३।१९
३. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. ४७२
४. वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति, १।२९२२
५. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, ३०७
   (ख) कल्पसूत्र, ६।१७४, पृ. १८२
   (ग) ज्ञातृधर्म कथा, ५, पृ. ६८
   (घ) अन्तकृत्दशा, ५, पृ. २८
   (ङ) उत्तराध्ययन टीका, २२, पृ २८०
६. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. ४७३.
७. आदिपुराण में भारत, पृ. १०९.
८. भ. महावीर नी धर्मकथाओ, पृ. २१६, पं. वेचरदासज

३. उदय गिरि
४. सुवर्ण गिरि
५. रत्न गिरि

महाभारत में पांच पर्वतों के नाम ये हैं—वैभार, वाराह, वृषभ, ऋषि गिरि और चैत्यक।

वायुपुराण में भी पांच पर्वतों का उल्लेख मिलता है। जैसे—वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज और रत्नाचल।

भगवती सूत्र के शतक २ उद्देश ५ में राजगृह के वैभार पर्वत के नीचे महातपोपतीरप्रभव नाम के उष्णजलमय प्रस्रवण-निर्झर का उल्लेख है। यह निर्झर आज भी विद्यमान है।

बौद्ध ग्रन्थों में इस निर्झर का नाम 'तपादे' मिलता है जो सम्भवतः 'तप्तोदक' से बना होगा।

चीनी यात्री फाहियान ने भी इसको देखा था।

(१३) सहस्राम्रवन उद्यान :—

आगमों में इस उद्यान का प्रचुर उल्लेख मिलता है। काकन्दी नगरी के बाहर भी इसी नाम का एक सुन्दर उद्यान था, जहां पर धन्यकुमार और सुनक्षत्रकुमार की दीक्षा हुई थी।

सहस्राम्रवन का उल्लेख निम्नलिखित नगरों के बाहर भी आता है—

१. काकन्दी के बाहर
२. गिरनार पर्वत पर
३. काम्पिल्य नगर के बाहर
४. पाण्डु मथुरा के बाहर
५. मिथिला नगरी के बाहर
६. हस्तिनापुर के बाहर-आदि।

(१४) साकेत :—

भारत का एक प्राचीन नगर। यह कोशल देश की राजधानी था। आचार्य हेमचन्द्र ने साकेत, कोशल और अयोध्या-इन तीनों को एक ही कहा है।

साकेत के समीप ही "उत्तरकुरु" नाम का एक सुन्दर उद्यान था, उसमें "पाशामृग" नाम का एक यक्षायतन था।

साकेत नगर के राजा का नाम मित्रनन्दी और रानी का नाम श्रीकान्ता था।

"वर्तमान में फेजावाद जिला में फैजावाद से पूर्वोत्तर छह मील पर सरयू नदी के दक्षिणी तट पर स्थित वर्तमान अयोध्या के समीप ही प्राचीन साकेत होगा।"

(१५) श्रावस्ती :—

यह कौशल राज्य की राजधानी थी। आधुनिक विद्वानों ने इसकी पहचान सहेर-महेर से की है। सहेर गोंडा जिले में है और महेर बहराईच जिले में। महेर उत्तर में है और सहेर दक्षिण

में ।[१] यह स्थान उत्तर-पूर्वीय रेलवे के बलरामपुर स्टेशन से जो सड़क जाती है, उससे दस मील दूर है। वहराईच से वह २९ मील पर अवस्थित है।

विद्वान वी० स्मिथ के अभिमतानुसार श्रावस्ती नेपाल देश के खजूरा प्रान्त में है और वह बालपुर की उत्तर दिशा में तथा नेपालगंज के सन्निकट उत्तर पूर्वीय दिशा में है ।[२] युआन चुआङ्ग ने श्रावस्ती को जनपद माना है और उसका विस्तार छह हजार ली, उसकी राजधानी को 'प्रासाद-नगर' कहा है, जिसका विस्तार वीस ली माना है ।[३]

जैन दृष्टि से यह नगरी अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे बसी थी। जिसमें बहुत कम पानी रहता था, जिसे पार कर जैन श्रमण भिक्षा के लिए जाते थे ।[४] कभी-कभी उसमें बहुत तेज बाढ़ भी आ जाती थी ।[५] श्रावस्ती बौद्ध और जैन संस्कृति का केन्द्रस्थान रहा है। केशी और गौतम का ऐतिहासिक संवाद वहीं हुआ ।[६] अनेक ऐतिहासिक प्रसंग उस भूमि से जुड़े हुए हैं ।[७] भगवान् महावीर ने छद्मस्थावस्था में दसवाँ चातुर्मास वहां पर किया था। केवलज्ञान होने पर भी वे अनेक बार वहाँ पर पधारे थे और सैकड़ों व्यक्तियों को प्रव्रज्या प्रदान की थी और हजारों को उपासक बनाया था। श्रावस्ती के कोष्ठकोद्यान में गोशलक ने तेजोलेश्या से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियों को मारा था और भगवान् महावीर पर भी तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी। गोशलक का परम उपासक अयंपुल व हालाहला कुंभारिन यहीं के रहने वाले थे।

---

१. दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृ, ४६९-४७४
२. जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १, जन. १९००
३. युआन चुआङ्गस् ट्रेवेल्स इन इंडिया, भाग १ पृ, ३७७
४. (क) कल्पसूत्र
   (ख) बृहत्कल्प सूत्र, ४।३३.
   (ग) बृहत्कल्प भाष्य, ४।५६३९, ५६५३,
५. (क) आवश्यक चूर्णि, पृ. ६०१
   (ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ४३५.
   (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. ५६७
   (घ) टौनी का कथाकोश, पृ. ६.
६. उत्तराध्ययन
७. देखिए-प्रस्तुत ग्रन्थ.

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया, मद्रास
३. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, मद्रास
४. श्री एस. किशनचन्द्रजी चोरड़िया, मद्रास
५. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री कंवरलालजी बेताला, गोहाटी
७. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
८. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
९. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद

स्तम्भ

१. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
२. श्री अमरचंदजी फतेचंदजी पारख, जोधपुर
३. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, बालाघाट
४. श्री मूलचंदजी चोरड़िया, कटंगी
५. श्री तिलोकचंदजी सागरमलजी संचेती, मद्रास
६. श्री जे. दुलीचंदजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री हीराचंदजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
९. श्री वर्द्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
१०. श्री एस. सायरचंदजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री एस. बादलचंदजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रिखबचंदजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री आर. परसनचंदजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री दीपचंदजी बोकड़िया, मद्रास
१६. श्री मिश्रीलालजी तिलोकचंदजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, ब्यावर
२. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
३. श्री ज्ञानराजजी मूथा, पाली
४. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
५. श्री रतनचंदजी उमत्तचंदजी मोदी, ब्यावर
६. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
७. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
८. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता
९. श्री जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K. G. F.) एवं जाड़न
११. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तालेरा, पाली
१२. श्री नेमीचंदजी ललवाणी, चांगाटोला
१३. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
१४. श्री सिरेकँवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुमनचंदजी झामड़, मदुरान्तकम
१५. श्री थानचंदजी मेहता, जोधपुर
१६. श्री मूलचंदजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
१७. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८. श्री भेरुदानजी लाभचंदजी सुराणा, धोबड़ी तथा नागौर
१९. श्री रावतमलजी भीकमचंदजी पगारिया, बालाघाट
२०. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२१. श्री धर्मीचंदजी भागचंदजी बोहरा, झूंठा

२२. श्री मोहनराजजी वालिया, अहमदाबाद
२३. श्री चेतनमलजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री गणेशमलजी धर्मीचंदजी कांकरिया, नागौर
२५. श्री वादलचंदजी मेहता, इन्दौर
२६. श्री हरकचंदजी सागरचंदजी वेताला, इन्दौर
२७. श्री सुगनचन्दजी वोकड़िया, इन्दौर
२८. श्री इन्दरचंदजी वैद, राजनांदगांव
२९. श्री मांगीलालजी धर्मीचंदजी चोरड़िया, चांगाटोला
३०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचंदजी लोढ़ा, चांगाटोला
३१. श्री भंवरलालजी मूलचंदजी सुराणा मद्रास
३२. श्री सिद्धकरणजी वैद, चांगाटोला
३३. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी वाफना, आगरा
३४. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
३६. श्री घेवरचंदजी पुखराज जी, गोहाटी
३७. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, आगरा
३८. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३९. श्री गुणचंदजी दल्लीचंदजी कटारिया, वेल्लारी
४०. श्री अमरचंदजी वोथरा, मद्रास
४१. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
४२. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, वैंगलोर
४३. श्री जड़ावमलजी सुगनचंदजी, मद्रास
४४. श्री पुखराजजी विजयराज जी, मद्रास
४५. श्री जबरचंदजी गेलड़ा, मद्रास
४६. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कुप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री पूनमचंदजी नाहटा, जोधपुर
२. श्री अमरचंदजी वालचंदजी मोदी, व्यावर
३. श्री चम्पालालजी मीठालालजी सकलेचा, जालना
४. श्री छगनीवाई विनायकिया, व्यावर
५. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, व्यावर
६. श्री रतनलालजी चतर, व्यावर
७. श्री जंवरीलालजी अमरचंदजी कोठारी, व्यावर
८. श्री मोहनलालजी गुलावचंदजी चतर, व्यावर
९. श्री वादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
१०. श्री के. पुखराजजी वाफना, मद्रास
११. श्री पुखराजजी वुधराजजी वोहरा, पीपलिया
१२. श्री चम्पालालजी वुधराजजी वाफणा, व्यावर
१३. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१४. श्री मांगीलालजी प्रकाशचंदजी रुणवाल, वर
१५. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१६. श्री भंवरलालजी गौतमचंदजी पगारिया, कुशालपुरा
१७. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८. श्री फूलचंदजी गौतमचंदजी कांठेड, पाली
१९. श्री रूपचंदजी जोधराजजी मूथा, पाली
२०. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१. श्री देवकरणजी श्रीचंदजी डोसी, मेडतासिटी
२२, श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेड़तासिटी
२३. श्री अमृतराजजो जसवन्तराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
२४. श्री वी. गजराजजी वोकड़िया, सलेम
२५. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
२६. श्री कनकराज जी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
२७. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२८. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
२९, श्री घेवरचंदजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३०. श्री गणेशमलजी नेमीचंदजी टांटिया, जोधपुर
३१. श्री चम्पालालजी हीरालालजी वागरेचा, जोधपुर
३२. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
३३. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
३४. श्री मूलचंदजी पारख, जोधपुर
३५. श्री आसुमल एण्ड क., जोधपुर

३६. श्री देवराजजी लालचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
३८. श्री पुखराजजी बोहरा, जोधपुर
३९. श्री वच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
४०. श्री लालचंदजी सिरेमलजी बाला, जोधपुर
४१. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
४२. श्री मिश्रीलालजी लिखमीचंदजी सांड, जोधपुर
४३. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
४४. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
४५. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
४६. श्री सरदारमल एन्ड क., जोधपुर
४७. श्री रायचंद मोहनलालजी, जोधपुर
४८. श्री नेमीचंदजी डाकलिया, जोधपुर
४९. श्री घेवरचंदजी रूपराजजी, जोधपुर
५०. श्री मुन्नीलालजी, मूलचंदजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
५१. श्री सुन्दरबाई गोठी, महामन्दिर
५२. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा
५३. श्री पुखराजजी लोढ़ा, जोधपुर
५४. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
५५. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
५६. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
५७. श्री भीकमचंदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
५८. श्री सुगनचंदजी संचेती, राजनांदगाँव
५९. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गोलेच्छा, राज-नांदगाँव
६०. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
६१. श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
६२. श्री ओखचंदजी हेमराज जी पारख, दुर्ग
६३. श्री भंवरलालजी मूथा, जयपुर
६४. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
६५. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६६. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई
६९. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुड्डी
७०. श्री प्रेमराजजी मिट्ठालालजी कामदार, चांवडिया
७१. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
७२. श्री भंवरलालजी नवरतनमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
७३. श्री सूरजकरणजी सुराणा, लाम्बा
७४. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
७५. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
७६. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
७७. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७८. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
७९. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढ़ा, ब्यावर
८०. श्री अखेचंदजी भण्डारी, कलकत्ता
८१. श्री बालचंदजी धानमलजी भूरट (कुचेरा), कलकत्ता
८२. श्री चन्दनमलजी प्रेमराजजी मोदी, भिलाई
८३. श्री तिलोकचंद जी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
८४. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
८५. श्री जीवराज जी भंवरलालजी, भैंरुदा
८६. श्री मोतीलाल जी मदनलालजी, भैंरुदा
८७. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
८८. श्री भींवराजजी बागमार, कुचेरा
८९. श्री गंगारामजी इन्दरचंदजी बोहरा, कुचेरा
९०. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
९१. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
९२. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर
९३. श्री भंवरलालजी रिखवचंदजी नाहटा, नागौर
९४. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
९५. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
९६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
९७. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
९८. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया

९९. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन, श्रावकसंघ, दिल्ली-राजहरा
१००. श्री जंवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बुलारम
१०१. श्री फतेराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
१०२. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
१०३. श्री जुगराजजी बरमेचा, मद्रास
१०४. श्री कुशालचंदजी रिखबचंदजी सुराणा, बुलारम
१०५. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, नागौर
१०६. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०७. श्री कुन्दनमलजी पासमलजी भण्डारी, बैंगलोर
१०८. श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
१०९. श्री तेजराज जी कोठारी, मांगलियावास
११०. श्री अमरचंदजी चम्पालालजी छाजेड़, पादू बड़ी
१११. श्री माँगीलालजी शांतिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
११२. श्री कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
११३. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
११४. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी वेताला, डेह
११५. श्री कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
११६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
११७ श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११८. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफना, बैंगलोर
११९. श्री इन्दरचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
१२०. श्री चम्पालालजी माणकचंदजी सिंघी, कुचेरा
१२१. श्री संचालालजी बाफना, औरंगाबाद
१२२. श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता सिटी
१२३. श्री पुखराजजी किशनराजजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२४. श्रीमती रामकुंवर धर्मपत्नी श्रीचांदमलजी लोढ़ा, बम्बई
१२५. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते, असज्झातिते, तं जहा—अट्ठि, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहि महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहापाडिवए कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्र पाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं। जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

गर्जन और विद्यु त प्राय: ऋतु स्वभाव से ही होता है। अत: आर्द्रा में स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. **निर्घात**—विना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. **यूपक**—शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, को सन्ध्या चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. **यक्षादीप्त**—कभी किसी दिशा में विजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत: आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. **धूमिका कृष्ण**—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. **मिहिकाश्वेत**—शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. **रज उद्घात**—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है। स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. **हड्डी, मांस और रुधिर**—पंचेद्रिय तिर्यच की हड्डी मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्वन्धी अस्थि मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश: सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४, **अशुचि**—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. **श्मशान**—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. **चन्द्रग्रहण**—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह, और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. **सूर्यग्रहण**—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश: आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।